वर्ष 39, अंक-6, नवम्बर-दिसम्बर, 2016

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

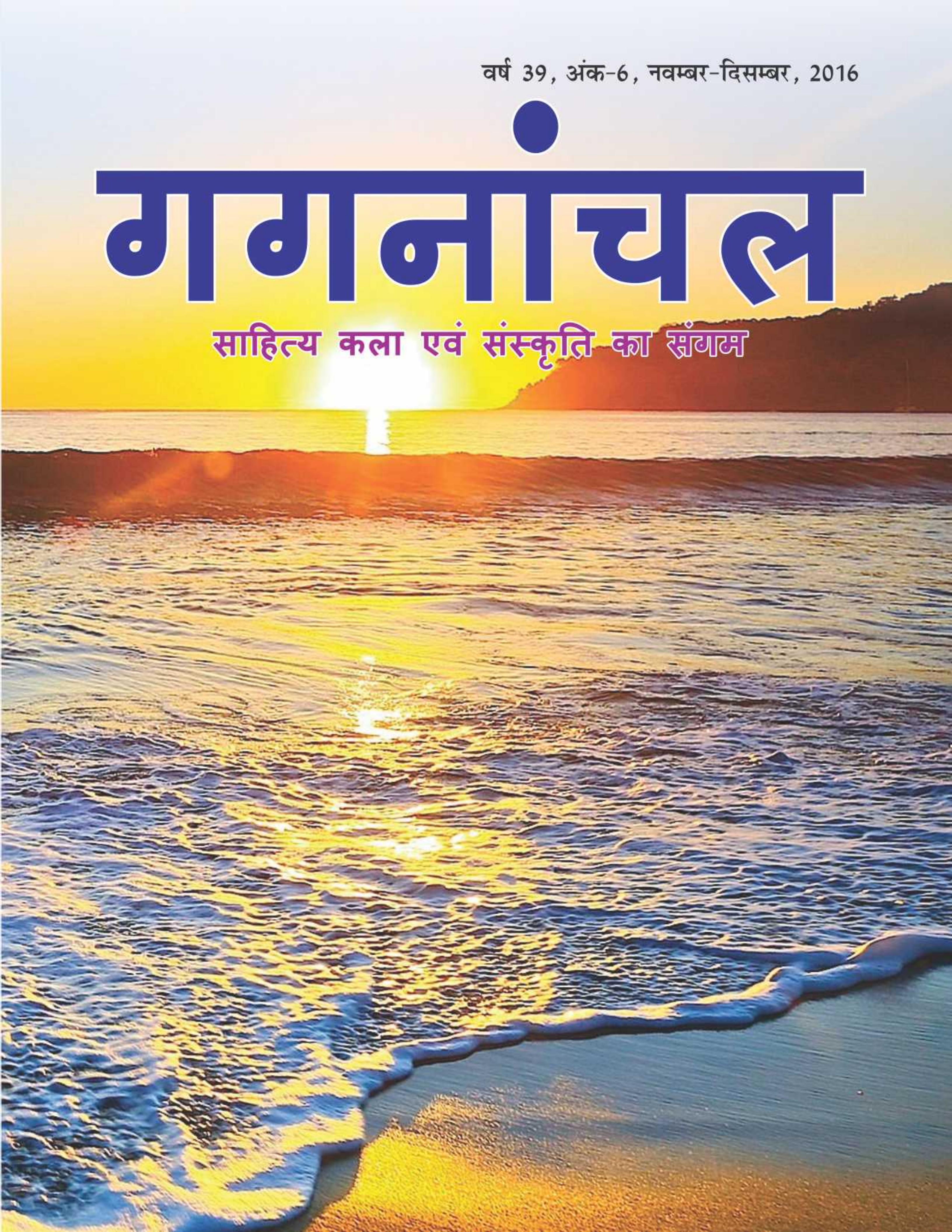

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान--शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	23378616 23370698
महानिदेशक	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (एन.के.)	23370228 23378662
प्रशासन अनुभाग	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	23379638
भारतीय सांस्कृति केन्द्र अनुभाग	23379274
अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1	23370391
अन्तरराष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	23370633
अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	23379371
हिंदी अनुभाग	23379309-10 एक्स. 3388, 3347

गगनांचल

नवम्बर-दिसम्बर, 2016

प्रकाशक
अमरेंद्र खटुआ
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली

संपादक
नम्रता कुमार
उप-महानिदेशक

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002
ई-मेल: ddgnk.iccr@nic.in, pohindi.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है। किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
		यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
		यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक: सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि. नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

हमारे अभिलेखागार से.....
बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की
गतिविधियों की एक झलक 5

भा.सां.सं.प. द्वारा भारतीय अध्ययन करने वाले
विदेशी विद्वानों को मान्यता 11

लेख

सत्ता, साहित्य और संस्कृति 16
प्रो. गिरीश्वर मिश्र

महादेवी का काव्य दर्शन 20
दानबहादुर सिंह

प्रसाद का मूल्यपरक जीवन दर्शन 23
डॉ. मिथिलेश दीक्षित

राग दरबारी: अन्तर्वस्तु, भाषा और रूपबंध
की संश्लिष्टता 30
डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

कश्मीर की काँगड़ी संस्कृति 35
अवतारकृष्ण राजदान

मानवीय संवेदनाओं के सहज चितेरे: भीष्म साहनी 40
राजेश हजेला

नलिन विलोचन शर्मा 50
प्रो. गोपेश्वर सिंह

नागा साहित्य में पर्यावरण की चिंता 55
रमणिका गुप्ता

नदी मेरे गाँव की 59
डॉ. जयकिशन शर्मा

जगदीश चतुर्वेदी का पुण्य स्मरण 63
डॉ. सुधेश

कबीरी सोच के धनी मुक्तिबोध 66
आलोचक नामवर सिंह से
महावीर अग्रवाल की बातचीत
महावीर अग्रवाल

शस्त्र और शास्त्र के पुजारी: साहिबे कमाल
गुरु गोविन्द सिंह जी 69
दीपक कुमार सिन्हा

कहानी

तौल-मौल भगवान से 72
विमल सहगल

बापू का देश 74
डॉ. अनामिका प्रकाश श्रीवास्तव

अभी भी 78
चित्रा मुद्गल

लघु कथाएं

चार लघु कथाएं 83
रामयतन यादव

कविता, ग़ज़ल, गीत, नवगीत, दोहे

दो नवगीत 85
मदन देवड़ा

दो डोगरी कविताएं–उपाय/बेचैन रूह 85
मूल: पद्मा सचदेव, हिन्दी अनुवाद: कृष्ण शर्मा

गीत 86
ओम प्रकाश अडिग

तीन कविताएं 87
डॉ. पूजा खिल्लन

पुस्तक-समीक्षा

प्रेमचंद की हिन्दी-उर्दू कहानियां 88
कृष्णवीर सिंह सिकरवार

तेजेन्द्र शर्मा के कहानी संग्रह
'सपने मरते नहीं' की समीक्षा 91
अर्पण कुमार

प्रकाशक की ओर से

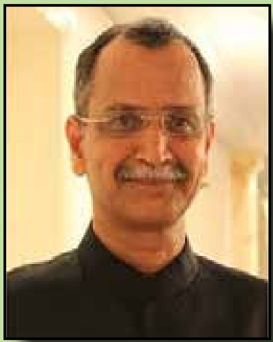

'बोले बिना सामाजिक नहीं हुआ जा सकता।' प्रयोगवादी कवि एवं सजग युगद्रष्टा अज्ञेय के इस कथन का अर्थ उपयुक्त तौर पर यही है कि भाषा केवल माध्यम भर नहीं है अपितु मनुष्य मात्र के अस्तित्व का आधार है जबकि देखा जाए तो आज के समय हजारों की तादाद में लेखक पैदा नहीं हो रहे बल्कि बनाए जा रहे हैं जिससे पुरस्कारों के माध्यम से छोटा-बड़ा करने तथा सोशल मीडिया पर सस्ती लोकप्रियता हासिल करने की एक होड़-सी चल पड़ी है और आज का मनुष्य लगभग बौद्धिक कंगाली अथवा दीवालियापन या वैचारिक शून्यता का शिकार होकर रह गया है।

ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि आज बौद्धिक जुगाली को ही बौद्धिकता का पर्याय मान लिया गया है जबकि बौद्धिक हस्तक्षेप न के बराबर रह गया है।

भाषा सत्य को उद्घाटित करने के बजाए झूठ पर पर्दा डालने के काम में लगी है। भाषा की इस नीति से स्वार्थ एवं चापलूसी की संस्कृति फल-फूल रही है जबकि जनता, जो लोकतंत्र का वास्तविक प्राणतत्व है, शक्तिविहीन होती जा रही है।

आए दिन होने वाली सभा-संगोष्ठियों में जनता को मुफ्त का ज्ञान बाँटा जाता है और करोड़ों रुपए खर्च किए जाते हैं। यही धन अगर जनता की भलाई पर खर्च किया जाए तभी लोकतंत्र की सार्थकता और मानवता की सच्ची सेवा भी हो सकेगी। पाठकों को नववर्ष की अनेक-अनेक शुभकामनाएँ।

(अमरेंद्र खटुआ)
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

संपादक की ओर से

भाषा की अपनी एक संवेदना होती है और इस संवेदना को मूर्त रूप देने के लिए शब्द अपनी सामर्थ्य का उत्सर्ग करते हैं। हिन्दी की एक भरी-पूरी परंपरा में शब्द सामर्थ्य के इस अवदान का एक गौरवशाली इतिहास है और गगनांचल इसी प्रतिबद्ध-यात्रा के एक पथिक की भांति निरंतर अपने प्रगतिशील और समसामयिक रचनाशीलता को आलोकित करते हुए आगे बढ़ रही है। हम भाग्यशाली हैं कि हम हिन्दी भाषा के इस गौरवपूर्ण इतिहास को बनते देख रहे हैं। शायद यही वजह है कि हिन्दी का भाषाई रूप भारतीय संवेदना और संस्कृति का एक पर्याय बन चुका है। शाइनिंग इंडिया से होते हुए राइजिंग इंडिया तक निरंतर अपनी जीवंत उपस्थिति से भारतीयता को आलोकित करने वाली हिन्दी आज हमारी विश्वभर में पहचान है।

गगनांचल का यह अंक थोड़ा विलंब से प्रकाशित हुआ है लेकिन साहित्यिक प्रतिबद्धता एवं बहुआयामी रचनाशीलता का प्रकाशन ही सदैव की भांति इस अंक की भी कसौटी रहा है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल से लेकर पंजाब, उत्तराखंड और उत्तर-पूर्व नागालैंड के अंचल में भाषाई संस्कृति के विभिन्न विषयों और विमर्शों को इस अंक में समाहित किया गया है। कविताएं, गीत, ग़ज़ल, लघुकथाएं और पुस्तक समीक्षाएं भी सदैव की भांति गगनांचल को एक सम्पूर्णता प्रदान करने हेतु आपको समर्पित हैं। इस अंक में भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद् की गतिविधियों को भी आप तक पहुँचाने का हमने प्रयास किया है। यह शृंखला भा.सां.सं.प. द्वारा दिए जा रहे पुरस्कारों सम्बन्धी लेख के साथ इस अंक से प्रारम्भ की जा रही है।

आपके सुझाव हमारे लिए बहुमूल्य हैं अत: उनकी प्रतीक्षा सदैव की भांति बनी रहेगी।

शुभकामनाओं सहित।

नम्रता

(नम्रता कुमार)
उप-महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

हमारे अभिलेखागार से

बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की गतिविधियों की एक झलक

कोलकाता पप्पट थियेटर द्वारा मई 1980 में पौलेण्ड भ्रमण के दौरान 'अलादीन पप्पट प्ले' नामक प्रस्तुति का एक दृश्य।

यक्षगान : सोनार चन्द ट्रूप द्वारा जून, 1980 में एफ.आर.जी., हालैण्ड, यू.के., चेकोस्लोवाकिया, बेल्जियम एवं फ्रांस का भ्रमण।

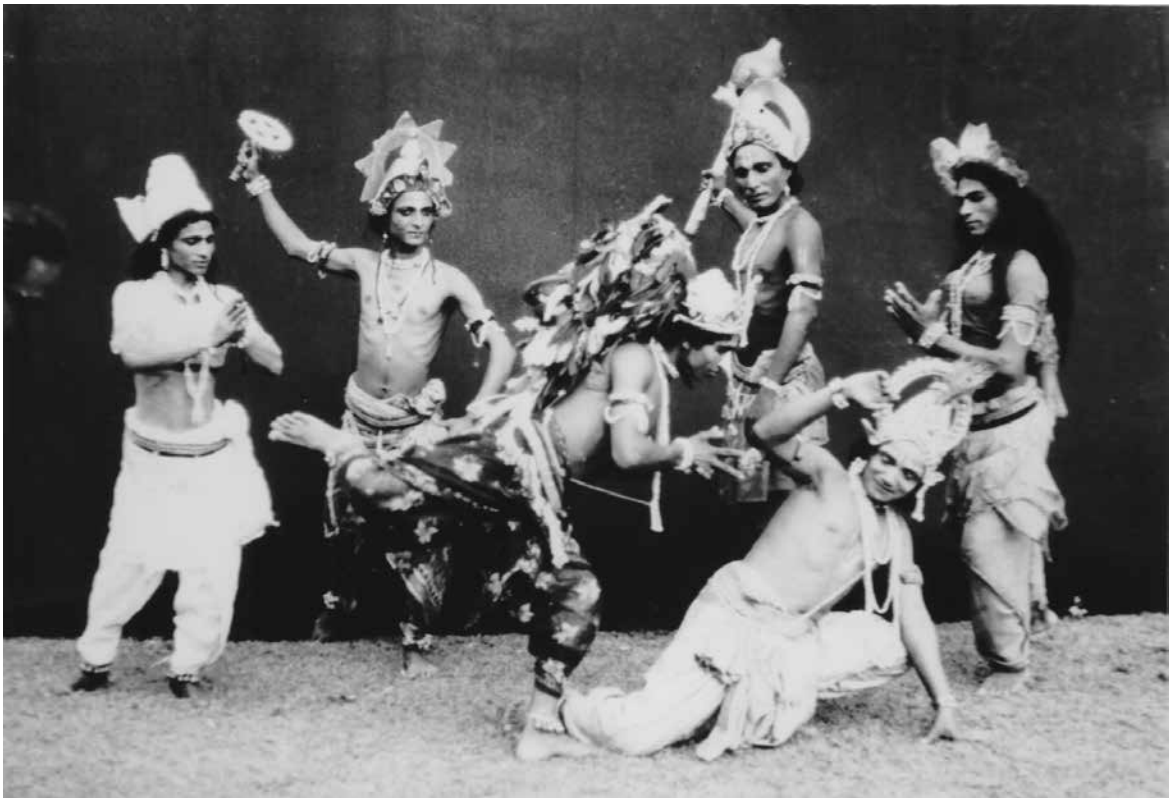

गरुड़ वाहन का दृश्य : मयूरभंज छाऊ ट्रूप द्वारा अक्टूबर, 1980 में पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड, तथा इटली का भ्रमण।

गीता : मयूरभंज छाऊ ट्रूप द्वारा अक्टूबर, 1980 में पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड, इटली का भ्रमण।

कार्ल एरिक म्यूलर (जी.डी.आर. से) द्वारा प्रदर्शित पेंटिंग प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए महामहिम हेन्ज़ बिर्च, जी.डी.आर. के राजदूत सचिव आई.सी.सी.आर., एवं सचिव एआईएफएसीएस के साथ।

कलाकार मंजूश्री से बातचीत करते हुए श्रीमती के. चट्टोपाध्याय, उप-अध्यक्ष एवं श्रीमती एम. भल्ला, सचिव, आई.सी.सी.आर.।

श्रीमती मंजुश्री (कलाकार) अपनी एक प्रस्तुति को श्रीमती के. चट्टोपाध्याय को समझाते और दिखाते हुए।

विदेशी छात्रों द्वारा कश्मीर कैम्प-1 के दौरान प्रस्तुति।

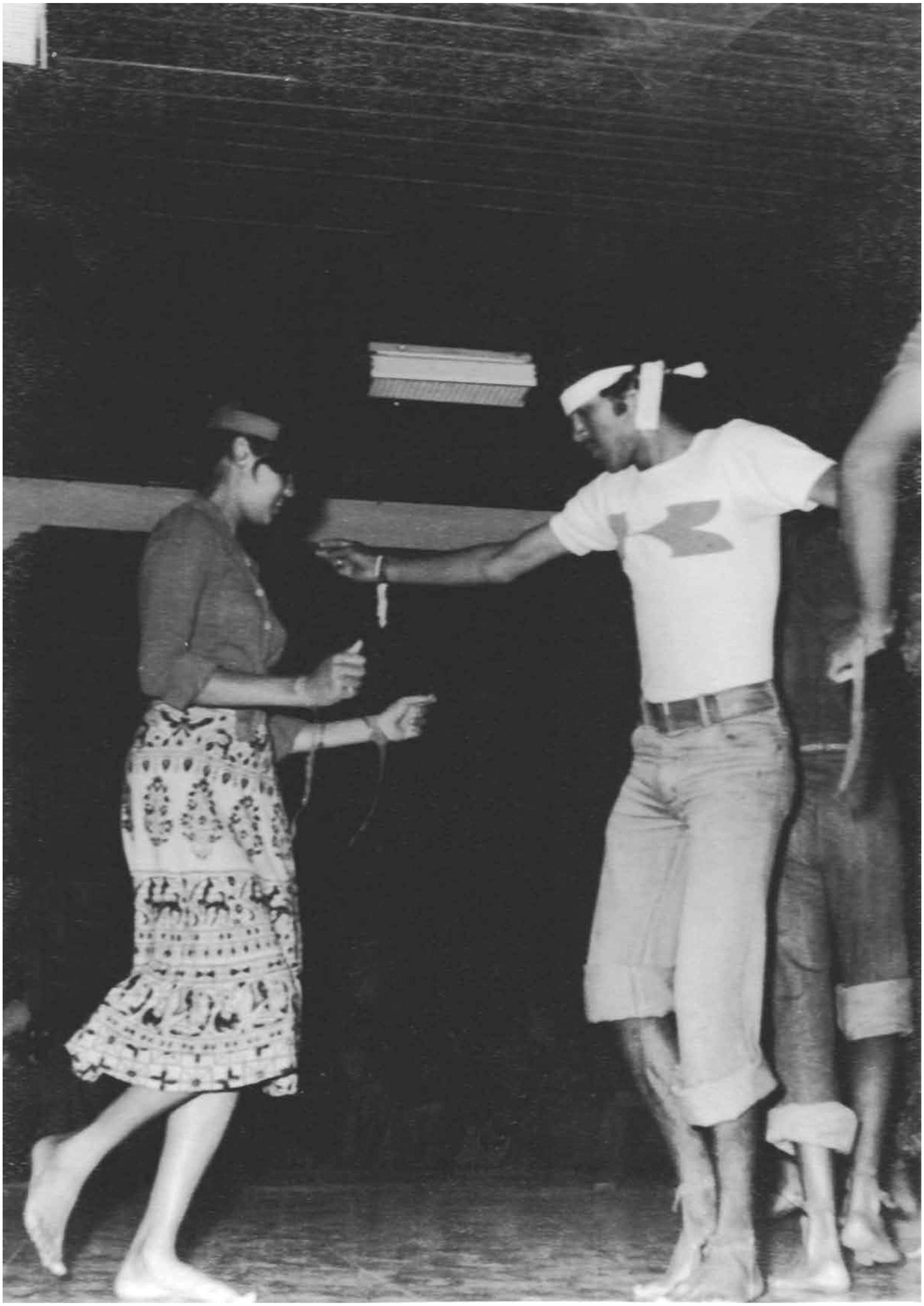

विदेशी छात्रों द्वारा कश्मीर कैम्प-1 के दौरान प्रस्तुति।

भा.सां.सं.प. द्वारा भारतीय अध्ययन करने वाले विदेशी विद्वानों को मान्यता

भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद् (भा.सां.सं.प.), 1950 में स्थापित, की नरम शक्ति (सॉफ्ट पावर) मनसूबे के जरिए भारत के विदेशी संबंधों को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार के जनादेश को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सॉफ्ट पावर कूटनीति के क्षेत्र में अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए भा.सां.सं.प. के विभिन्न साधनों में, भारतीय संस्कृति को बढ़ावा देने में विदेशी नागरिकों के योगदान को पहचानने हेतु भा.सां.सं.प. पुरस्कार महत्वपूर्ण साधनों में से एक है।

भा.सां.सं.प. ने वर्ष 2015 में आईसीसीआर वर्ल्ड संस्कृत अवार्ड, आईसीसीआर डिस्टिंग्विश्ड इंडोलोजिस्ट अवार्ड और आईसीसीआर डिस्टिंग्विश्ड एलुमनाई अवार्ड स्थापित किया। वर्ल्ड संस्कृत अवार्ड और आईसीसीआर डिस्टिंग्विश्ड इंडोलोजिस्ट अवार्ड के लिए उन विद्वानों की पहचान की जाती है जिन्होंने इन क्षेत्रों में उत्कृष्ट योगदान दिया है, डिस्टिंग्विश्ड एलुमनाई अवार्ड उन पूर्व छात्रों को दिया जाता है जिन्होंने भारत में अध्ययन करने के लिए भा.सां.सं.प. छात्रवृत्ति कार्यक्रम का लाभ उठाया है और आज प्रतिष्ठित पद पर बैठें हैं तथा अपने कार्य के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति को बढ़ावा देने में योगदान कर रहे हैं।

डिस्टिंग्विश्ड इंडोलोजिस्ट अवार्ड

भारत के माननीय राष्ट्रपति, श्री प्रणब मुखर्जी ने मई 2015 में रूस की अपनी राजकीय यात्रा के दौरान उन प्रसिद्ध विदेशी भारत-विदों (इंडोलोजिस्ट) को सम्मानित करने हेतु "डिस्टिंग्विश्ड इंडोलोजिस्ट अवार्ड" (विशिष्ट भारत-विद पुरस्कार) का गठन करने की घोषणा की, जिन्होंने भारत के दर्शन, विचार, इतिहास, कला, संस्कृति, भारतीय भाषाओं, साहित्य, सभ्यता, समाज आदि सहित विभिन्न क्षेत्रों में भारतीय अध्ययनों के क्षेत्र में अध्ययन/ शिक्षण/शोध के प्रचार में उत्कृष्ट योगदान दिया है।

प्रोफेसर एमेरिटस हाइनरिक फ्रीयरर वॉन स्टिएटेनक्रॉन को आईसीसीआर डिस्टिंग्विश्ड इंडोलोजिस्ट अवार्ड, 2015 और प्रो. यू लोंगयू, भारतीय अध्ययन केंद्र, शेन्ज़ेन यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर और निदेशक, को आईसीसीआर डिस्टिंग्विश्ड इंडोलोजिस्ट अवार्ड, 2016 से नई दिल्ली में राष्ट्रपति भवन में आयोजित समारोह में सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार भारत के राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी द्वारा प्रदान किया गया।

प्रोफेसर डॉ. हाइनरिक फ्रीयरर वॉन स्टिएटेनक्रॉन जर्मन इंडोलॉजी के प्रमुख चेहरों में से एक है, जिन्होंने 1973 से 1998 के बीच लगभग 25 वर्षों तक तुबिंगेन विश्वविद्यालय में इंडोलॉजी विभाग और धर्म के तुलनात्मक इतिहास के निदेशक

के रूप में सेवा की। भारतीय धर्मों के इतिहास, विशेष रूप से हिंदू धर्म, महाकाव्य और पुराणों पर शोध और बाद में ऑनलाइन ग्रंथ सूची का प्रकाशन, और उड़ीसा में क्षेत्रीय परंपरा का अध्ययन पर व्यापक जनता के लिए शोधकर्ता, शिक्षक, विद्याविद् और पुरालेख विद्वान (एपीग्राफर) के रूप में उनका कैरियर काफी विशाल है। वह संस्कृत, जर्मन और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता हैं, उन्होंने स्वयं को भाषाई संसाधनों के साथ सुसज्जित किया हुआ है ताकि वे हिंदू धर्म के धर्मशास्त्र से लेकर उनके प्रतिमा विज्ञान तक विभिन्न पहलुओं का पता लगा सकें और उसे बयान कर सकें।

प्रोफेसर यू लोंगयू भारतीय अध्ययन केंद्र, शेन्ज़ेन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर और निदेशक हैं। उन्होंने आधे शतक तक इंडोलॉजी का अध्ययन किया है। वह दक्षिण चीन में इंडोलॉजी में अग्रणी हैं। उन्होंने भारतीय उपन्यास, नाटक और लोक साहित्य का 300 हजार से अधिक चीनी अक्षरों में अनुवाद किया है और घरेलू और विदेशी पत्रिकाओं तथा मीडिया में 80 से अधिक शिक्षाविदों के लेख प्रकाशित किए हैं। वह 'इंडियन क्लासिक वर्क्स और चीनी क्लासिक्स-इंडियन राइटर्स और चीनी कल्चर, ए हिस्टरी ऑफ साइनो-इंडियन लिटररी एक्सचेंज एंड सो ऑन' पर पुस्तकों के लेखक हैं, उनका मोनोग्राफ अब तक 20 से ज्यादा हैं।

वर्ल्ड संस्कृत अवार्ड

वर्ष 2015 में वर्ल्ड संस्कृत अवार्ड (विश्व संस्कृत पुरस्कार) की स्थापना की गई थी। शाही महारानी राजकुमारी महा चकरी सिरिन्धम को पहला आईसीसीआर वर्ल्ड संस्कृत अवार्ड 2015 प्रदान किया गया और प्रो. जॉर्ज कार्डोना, प्रोफेसर एमेरिटस, यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेन्सिलवेनिया, अमरीका को दूसरा आईसीसीआर वर्ल्ड संस्कृत आवार्ड 2016 प्रदान किया गया। यह पुरस्कार 21 नवंबर, 2016 को दिल्ली में आयोजित समारोह में भारत के उपराष्ट्रपति श्री हामिद अंसारी द्वारा प्रदान किया गया था।

शाही महारानी राजकुमारी महा चकरी सिरिन्धम संस्कृत, पाली, पुरालेख (एपीग्राफी), संस्कृति और ऐतिहासिक अध्ययन की शिक्षक और विद्वान हैं। उनका विभिन्न भाषाओं में धारा प्रवाह है, और एशियाई सभ्यताओं, चीनी और भारतीय संस्कृतियों और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ भारत के ऐतिहासिक संबंधों के साथ-साथ एशिया में रामायण के विभिन्न संस्करणों का व्यापक ज्ञान भी हैं।

प्रो. जॉर्ज कार्डोना संस्कृत के सबसे निपुण और उत्कृष्ट विदेशी विद्वानों में से एक हैं। सामान्य रूप से संस्कृत व्याकरण और विशेष रूप से पाणिनी में उनका योगदान इतना विशाल है कि इसके लिए उन्हें 'अभिनव पाणिनी' का खिताब

प्राप्त हुआ है। प्रो. कार्डोना ने इंडो-आर्यन भाषा के इतिहास, वैदिक ग्रंथों में वर्णित पूर्व में इंडो-आर्यन और पाणिनी में वर्णन की गई बोलचाल की भाषा, की समझ के लिए प्रमुख योगदान भी दिया है। वह संस्कृत के अच्छे ज्ञाता हैं।

डिस्टिंग्विश्ड एलुमनाई अवार्ड

''डिस्टिंग्विश्ड एलुमनाई अवार्ड'' (विशिष्ट पूर्व छात्र पुरस्कार) उन विदेशी छात्रों को सम्मानित करने हेतु दिया जाता है जिन्होंने भा.सां. सं.प. द्वारा प्रायोजित या समर्थित छात्रवृत्ति योजनाओं के अंतर्गत विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में अध्ययन किया है और विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर विभिन्न क्षेत्रों, विशेष रूप से आपसी समझ को बढ़ावा देने, भारत और उनके देश के बीच सद्भावना और दोस्ती बढ़ाने, में अनुकरणीय योगदान दिया है।

पहला डिस्टिंग्विश्ड एलुमनाई अवार्ड 2015 महामहिम श्री ले लुओंग मिन्ह, आसियान के महासचिव, महामहिम सुश्री ज़ेनेबू टेडेसे वोल्डेटसादिक, महिला, बाल और युवा मामलों की मंत्री (एमओडब्ल्यूसीवाईए), संघीय लोकतांत्रिक गणराज्य इथियोपिया (एफडीआरई) और श्रीमती मिलेना साल्विनी, कथकली नर्तकी और सेंटर मंडपा, पेरिस की संस्थापक को प्रदान किया गया। पुरस्कार 10 दिसंबर, 2015 को दिल्ली में आयोजित एक समारोह में माननीय विदेश मंत्री द्वारा प्रदान किया गया था।

महामहिम श्री ले लुओंग मिन्ह 2013 से 2017 तक आसियान के महासचिव हैं। महामहिम श्री मिन्ह ने यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन अफेयर्स (अब डिप्लोमेटिक अकादमी ऑफ वियतनाम के नाम से जाना जाता है), हनोई, वियतनाम में कूटनीति का अध्ययन किया और 1974 में अपनी डिग्री प्राप्त की। उन्होंने भारत के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में 1973 से 1975 तक भा.सां.सं.प. के विद्वान के रूप में भाषा विज्ञान और अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया।

महामहिम सुश्री जेनेबु टेडेसे वोल्डेटसादिक संघीय लोकतांत्रिक गणराज्य इथियोपिया (एफडीआरई) की महिला, बाल और युवा मामलों की मंत्री (एमओडब्ल्यूसीवाईए) और संसद सदस्य हैं। महामहिम सुश्री वोल्डेटसादिक ने 1991 से 1999 तक भा.सां.सं.प. के विद्वान के रूप में पंजाब विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में कला स्नातक की। इसके बाद उन्होंने अमरीका में अज़ुसा पैसिफिक यूनिवर्सिटी से संगठनात्मक नेतृत्व में अपनी मास्टर की डिग्री पूरी की।

श्रीमती मिलेना साल्विनी ने बहुत छोटी उम्र से संगीत और नृत्य का अध्ययन किया। वह द्विपक्षीय छात्रवृत्ति कार्यक्रम के अंतर्गत 1962 से 1964 तक भारत में अध्ययन के लिए भा.सां.सं.प. की छात्रवृत्ति प्राप्त करने वाली पहली फ्रेंच नागरिक थीं। उन्होंने केरल कलामंडलम में कथकली–भारतीय शास्त्रीय नृत्य रूपों में से एक का अध्ययन किया। फ्रांस में भारतीय संस्कृति के प्रसार में श्रीमती साल्विनी का योगदान 1975 में 'सेंटरमंडपा' के निर्माण के बाद से काफी महत्वपूर्ण रहा

है। विभिन्न भारतीय कला प्रदर्शन मंचों, भरतनाट्यम, कथक, ओडिसी, कर्नाटक संगीत आदि को बढ़ावा देने और प्रचार करने के अलावा वह फ्रांस में और अन्य यूरोपीय देशों में भी भारतीय संस्कृति को कायम रखने में निर्णायक भूमिका निभा रही हैं।

वर्ष 2016 के लिए कुल पांच आईसीसीआर डिस्टिंग्विश्ड एलुमनाई अवार्ड भा.सां.सं.प. के इन पूर्व छात्रों को दिए गए—महामहिम डॉ. सो विन, स्थायी सचिव, शिक्षा मंत्रालय, म्यांमार सरकार, डॉ. गलीना सोकोलोवा, सोफिया विश्वविद्यालय, बुल्गारिया के क्लासिकल मॉडर्न फिलोलॉजी के संकाय की उपाध्यक्ष, डॉ. लौरा गिब्रतोवना येरेकेशेवा, उप निदेशक, अंतर्राष्ट्रीय मामले; सेंट्रल एंड साउथ एशियन स्टडीज विभाग के प्रमुख, कजाकिस्तान, प्रोफेसर आई. केतथ विद्न्या, हिंदू कम्यूनिटी गाईडेंस, धार्मिक मामलों का मंत्रालय, इंडोनेशिया सरकार के महानिदेशक और डॉ. श्रीमती सरिता बूधू, अध्यक्ष, भोजपुरी स्पीकिंग यूनियन, कला और संस्कृति मंत्रालय, मॉरीशस, आईसीसीआर डिस्टिंग्विश्ड एलुमनाई अवार्ड, 2016 के पुरस्कार विजेता थे। यह पुरस्कार 20 मार्च, 2017 को दिल्ली में आयोजित एक समारोह में विदेश मामलों के माननीय राज्य मंत्री, जनरल वी.के. सिंह द्वारा दिए गए।

डॉ. सो विन शिक्षा मंत्रालय, म्यांमार संघ गणराज्य की सरकार में वर्ष 2015 से स्थायी सचिव हैं। उन्होंने 1999 से 2004 तक भा.सां.सं.प. के विद्वान के रूप में हैदराबाद विश्वविद्यालय से सांख्यिकी में अपनी डॉक्टरेट की डिग्री (पीएचडी) प्राप्त की। डॉ. सो विन शिक्षा मंत्रालय, म्यांमार संघ गणराज्य सरकार, में सर्वोच्च सिविल सेवक हैं। शिक्षा के क्षेत्र में उनके पास विशाल अकादमिक और प्रशासनिक अनुभव है।

डॉ. गलीना सोकोलोवा वर्तमान में सोफिया विश्वविद्यालय, बुल्गारिया के इंडोलॉजी विभाग में क्लासिकल और मॉडर्न फिलोलॉजी के संकाय की उपाध्यक्ष हैं और ईआरएएसएमयूएस कार्यक्रम की समन्वयक भी हैं। वह भा.सां.सं.प. फैलोशिप कार्यक्रम के अंतर्गत 2010 से 2012 तक बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में संबद्ध (एफिलिएटिड) शोधकर्ता थीं। सोफिया विश्वविद्यालय के सबसे बड़े संकाय की उपाध्यक्ष होने के नाते, उन्होंने लगातार इंडोलॉजी विभाग को बढ़ावा देने की कोशिश की। उन्होंने भक्ति कविता पर पीएचडी थीसिस लिखी और सोफिया विश्वविद्यालय में पिछले 24 सालों से इंडोलॉजी, हिंदी व्याकरण, मध्ययुगीन भारतीय साहित्य और धार्मिक अध्ययनों का परिचय के अध्यापन में लगी हैं।

डॉ. लौरा जी. येरेकेशेवा वर्तमान में अंतरराष्ट्रीय मामलों की उप निदेशक हैं; सेंट्रल एंड साउथ एशियन स्टडीज विभाग की प्रमुख; और ओरिएंटल स्टडीज संस्थान, अल्माटी, कजाकिस्तान में यूनेस्को की चेयर "विज्ञान और आध्यात्मिकता" की समन्वयक हैं। वह अल फरबी कज़ाख

नेशनल यूनिवर्सिटी, ओरिएंटल फैकल्टी में भी प्रोफेसर हैं। उनके अनुसंधान क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय संबंध, इतिहास, मध्य और दक्षिण एशिया में पहचान की राजनीति शामिल है। वह कजाकिस्तान-भारत फाउंडेशन की संस्थापक है, जो कि कजाकिस्तान और भारत के बीच संबंधों के विस्तार के उद्देश्य से एक सार्वजनिक फाउंडेशन है।

प्रो. आई. केतथ विद्न्या वर्तमान में हिंदू कम्यूनिटी गाईडेंस, धार्मिक मामलों का मंत्रालय, इंडोनेशिया सरकार में महानिदेशक के पद पर कार्यरत हैं। प्रो. विद्न्या ने एम.ए., एम.फिल और पीएच.डी. का अध्ययन भा.सां.सं.प. की सामान्य सांस्कृतिक छात्रवृत्ति योजना (जीसीएसएस) के अंतर्गत 2000 से 2006 के दौरान दिल्ली विश्वविद्यालय से किया है। बाली और लंबोक में भारत की सांस्कृतिक कूटनीति पहल के लिए प्रो. विद्न्या ने सक्रिय रूप से समर्थन किया और सहायता प्रदान की। उनकी कड़ी मेहनत और सभी शिक्षाविदों-सहयोगियों और बाली के प्रांतीय प्रशासन और परिसद हिंदू धर्म, इंडोनेशिया के सदस्यों के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंधों के कारण, वे इंडोनेशियाई धार्मिक मामलों के मंत्रालय में हिंदू कम्यूनिटी गाईडेंस (समुदाय मार्गदर्शन) के महानिदेशक के पद पर पहुंच गए।

डॉ. श्रीमती सरिता बूधू वर्तमान में अध्यक्ष, कला और संस्कृति मंत्रालय, मॉरीशस हैं। उन्होंने 1963-66 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक स्तर की पढ़ाई पूरी की। उन्होंने जौनपुर विश्वविद्यालय से हिंदी में स्नातकोत्तर और महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, बनारस से डॉक्टरेट भी किया है। उन्हें वर्ष 2013 में जोहान्सबर्ग, दक्षिण अफ्रीका 9वें विश्व हिंदी सम्मेलन में विश्व हिंदी सम्मान तथा वर्ष 2013 में विश्व भोजपुरी सम्मान से सम्मानित किया गया।

इन पुरस्कारों की स्थापना का उद्देश्य न केवल विदेशी विद्वानों द्वारा उनके संबंधित देशों में भारतीय सांस्कृतिक विरासत को बढ़ावा देने में योगदान को स्वीकार करना था बल्कि युवा शिक्षाविदों को अकादमिक क्षेत्रों में भारत की उत्कृष्टता के बारे में जानकारी देना भी था। इन पुरस्कारों ने विदेशों में भारत के बारे में विशाल ख्याति प्राप्त की है और भारत में युवा विद्वानों की अभिरूचि का नवीनीकरण किया है।

सत्ता, साहित्य और संस्कृति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

लेखक जाने-माने साहित्यकार हैं तथा हिन्दी के श्रेष्ठ निबन्धकारों में गिने जाने वाले विद्यानिवास मिश्र के अनुज। सम्प्रति महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय बर्धा के कुलपति।

साहित्य के स्रष्टा को 'स्वाधीनचेता' माना जाता है अर्थात उसकी चेतना स्वायत होती है और उसे किसी प्रकार का बंधन स्वीकार्य नहीं होता है। स्वाधीनचेता व्यक्ति के लिए सत्ता, अपने 'पावर' के आधुनिक अर्थ में, स्पृहणीयन होकर उपेक्षणीय हो जाती है। साहित्यकार की मूल चिंता तो 'अपूर्व' या नूतन की सृष्टि होती है, जो है नहीं उसे संभव कर दिखाना ही उसका अभीष्ट है, वह अपनी दुनिया का स्वयं कर्ता या प्रजापति होता है, उसे इस बात की पूरी छूट होती है कि उसे जैसा रुचे या अच्छा लगे वैसा रचे, साहित्य के विचारकों ने रचना का उत्स प्रायः रचनाकार के अपने अनुभव की या अस्तित्व की रिक्तता, विपर्यास या असंगति के बोध अथवा किसी तरह की अपर्याप्तता में खोजा है, साहित्य उसी के प्रति रचनात्मक प्रतिक्रिया होती है, कह सकते हैं रचना शून्य में हस्तक्षेप होती है, प्राचीन शास्त्रीय काव्य चिंतन को देखें तो रस की सिद्धि, जो स्वान्तः सुखाय भी हो सकती है, के साथ ही जन कल्याण (शिवेतरक्षतये) दोनों ही रचना के लक्ष्य चिह्नित किये गए हैं, इन आन्तरिक और बाह्य दोनों तरह के सरोकारों की उपयुक्तता को लेकर अलग-अलग मत प्रतिपादित किए गए हैं, वैदिक कवि उन्मुक्त विचरण करने वाला था और उस पर किसी तरह का अंकुश नहीं था। उसे अवकाश भी था और कल्पना की छूट भी थी कि वह जिस मार्ग का चाहे वरण करे, एक कला-अनुशासन के रूप में काव्य-का सृजन सर्जनात्मक योग्यता की मांग करता है। वह योग्यता जन्मजाता हो सकती है और अर्जित भी (आहार्य), पर उसका पोषण भी जरूरी है। इसके लिए परिवेश की भूमिका नजरअंदाज नहीं की जा सकती, सृजन व्यापक महत्त्व का होता है इसलिए समाज सर्जक का पोषण तो करता है पर आदर्श स्थिति में वह न तो रचनाकार पर आधिपत्य जमाता है न ही अपेक्षा करता है, क्योकि रचनाकार समाज का अलंकरण होता है। उससे जुड़ कर उसे गौरव-बोध होता है। प्राचीनकाल में रचनाकारों को राज्य से भी पोषण मिलता था पर उनकी स्वायत्तता की भी जगह रखी जाती थी, कालिदास और बाणभट्ट जैसे कवियों की विलक्षण रचनाशीलता से यही प्रकट होता है, पर जब सत्ता अपना आधिपत्य जमाये और रचना से उसका स्वातंत्र्य छिनने लगे तो साहित्य की आतंरिक प्रामाणिकता बंध सी जाती है।

कहते हैं मध्यकाल के भक्त कवि कुंभनदास को उस युग की सर्वोच्च राजनैतिक सत्ता ने, जिसके प्रतीक अकबर थे ससम्मान बुलाया था। वे अकबर के यहाँ गए, लेकिन वापसी में उन्होंने एक पद जिसकी अनुगूंज वर्तमान संदर्भ में बहुत सार्थक है–

"संतन को कहा सीकरी सा काम।
आवत जावत पनहियाँ टूटी,
बिसरि गयो हरिनाम।
जाको मुख देखे दुख उपजै,
तिनको करिबौ परी सलाम।
'कुंभनदास' लाल गिरधर बिन,
यह सब झूठो धाम।।"

अपने युग की सर्वोच्च राजनैतिक सत्ता की उपेक्षा करने का यह साहस कहाँ से आता है? यह आता है भक्ति से, उस भक्ति से जो सही अर्थों में निष्काम होती है और अपनी सीमित लघु सत्ता का निषेध करती है। तुलसीदास के यहाँ भी ऐसी ही भक्ति मिलती है, कहते हैं सम्राट अकबर द्वारा दी गई मनसबदारी को उन्होंने ठुकराया था। उन्होंने कहा--

"हम चाकर रघुबीर के
पटौ लिखौ दरबार।
तुलसी अब का होहिंगे,
नर के मनसबदार।।"

मनसबदारी का वैभव उनकी सरस्वती-आराधना के लिए धूलकण सरीखा है, वे कहते हैं–

"कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।।"

स्पष्ट है कि सरस्वती के आराधक किसी राजसिंहासन से बँधकर नहीं रह सकते हैं गोस्वामी तुलसीदास जी के 'रामचरित मानस' का प्रस्थान बिन्दु है स्वानतःसुखाय रघुनाथ की गाथा कहना, वह इसी प्रतिज्ञा के साथ मानस

को लेकर आगे बढ़ते और कथा कहने में जुटते हैं, यह गाथा जन जीवन की पीड़ा से जुड़ती है और परम सत्ता की ओर अभिमुख है। स्वाधीनता से साहस आता है और अपने कर्म के प्रति निष्ठा भी उपजती है क्योंकि तब रचनाकार इसके लिए स्वयं को उत्तरदायी मानता है, अपना मानता है, उसे 'ओन' करता है, ऐसा इसलिए भी होता है क्योंकि रचना उसका अपना या कहें उसके स्व का ही विस्तार होती है।

सत्ता से जुड़ाव हमें कई तरह के दायित्वों, अनायास थोपे गए सरोकारों और भ्रमों से जोड़ता है, साथ ही वह रचनाकार के लिए मोह और भय का एक बड़ा घेरा भी निर्मित करता है। यह सब निश्चित रूप से बहुत दूर तक साहित्यकार के स्वभाव और रचना कर्म को प्रभावित करता है, वैसी स्थिति में उसकी आत्मा मुक्त नहीं रह सकती है। इसे झेलते हुए एक सीमा के बाद उसका दम घुटने लगता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अपनी आत्मा पर दबाव/बोझ अनुभव करने वाला रचनाकार कोई कालातिक्रामी रचना का भी सृजन नहीं कर पाएगा जो संस्कृति को समृद्ध करे और साहित्य की अमूल्य निधि बन सके।

साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में उन्हीं कृतियों को कालजयी होने का गौरव मिला है जो राज्याश्रय से दूर रहकर आत्मा की स्वाधीनता और आत्मा-की पुकार पर रची गयी है। साहित्यकार को आत्मा की शिल्पी माना जाता है। पर यह तो तभी संभव हे जब वह मुक्तात्मा बनकर साहित्य की रचना करेगा। राज्याश्रय की अपनी ही शर्तें होती हैं और उसके अंकुश में रहकर कोई व्यक्ति स्वायत्तचेता महात्मा नहीं बन सकता। यहाँ पर यह उल्लेख भी कर देना उचित प्रतीत होता है कि यह एक स्वीकृत आदर्श है कि साहित्कार हर तरह के दमन और शोषण की पृष्ठभूमि निर्मित करने वाली अमानवीय स्थितियों का प्रतिरोध और विरोध करता है। तभी वह उच्चतर मानवीय धरातल की रचना में सहभागी बनता है, उसका आत्मिक परिवेश जितना व्यापक और समृद्ध होगा, उसकी लेखनी भी उतनी ही धारदार होगी।

संस्कृति का विचार–विचारणीय है कि अपने जीवन में उन्नति, विकास और आनंद की उपलब्धि के लिए हम संस्कृति से जुड़ते हैं या उसकी सुधि लेते हैं, हम सिर्फ शरीर या अन्नमय कोष मात्र ही तो नहीं होते हैं, अतः मात्र शरीर-रक्षा और क्षणिक इन्द्रिय सुख जैसी ऐषणा तक ही अपने को समेट कर परिसीमित रखना किसी भी तरह पर्याप्त नहीं हो सकता, मानव जीवन की उपलब्धि है उदात्त मूल्यों की तरफ अभिमुख संस्कृति, संस्कृति मानवीय शिल्प है, पर वह धात्री है जिससे विस्तृत मानव मन के वितान की रचना होती है। संस्कृति जीवन-वृक्ष का संबर्धन करने वाला रस है जिसमें निरंतरता रहती है। उसमें पूर्वापर, प्राचीन और नवीन का मेल, नए और पुराने का संघर्ष, विचारों और भावों का संचार, संम्प्रीती आदि सभी तरह के यत्न शामिल होते हैं। कह सकते हैं कि अपने अंतस में संस्कृति ऊर्ध्वगामी होती है और प्रयत्नपूर्वक ऊँचा उठाना ही उसका उद्देश्य होता है। वह आत्मोंनयन के लिए अवकाश का अवसर निर्मित करती है। जो है उससे आगे चल कर जो हो सकता है उसकी सतत खोज ही संस्कृति का आशय होता है।

यदि विचार करें तो अनुभव होगा कि संस्कृति की सत्ता बड़ी व्यापक है। उसमें सारे मानव व्यापार यानि अखिल मानव जाति का समग्र कर्तृत्व समा जाता है। यह भी कह सकते हैं कि प्रकृति पर मनुष्य के हस्ताक्षर ही संस्कृति को परिभाषित करते हैं। शुद्ध भौतिक स्तर पर देखें तो यह हस्ताक्षर अजन्ता और एलोरा के गुफा शिल्प में दिखता है जहाँ पूरा पहाड़ ही कलाकार का कैनवस बन गया है। ये कलाकार साधक पीढ़ी दर पीढ़ी शिल्प निर्माण में लगे रहे, कई पीढ़ियां कई सदियों तक लगातार इस महान शिल्प-शंकुल की रचना करती रही। पर इस तरह की सतत संलग्नता अन्य क्षेत्रों में भी जैसे-भाषा, विविध कला रूप, संगीत, स्थापत्य और विभिन्न भौतिक रचनाएँ आदि, सब में उपस्थित मिलेंगी, संस्कृति के विशाल प्रांगण में सब कुछ समाहित होता है। प्रकृति के आगोश में मनुष्य अपनी कल्पनाशीलता और सृजनात्मकता द्वारा जो कुछ भी रचता-गढ़ता है, मूर्त और अमूर्त, सब ही तो संस्कृति की परिधि के अंतर्गत आ जाते हैं, इस अर्थ में संस्कृति मनुष्य की अपनी उपस्थिति का प्रमाण सी बन जाती है।

मनुष्य की रचनाधर्मिता एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है और कृतियों या रचनाओं की परम्परा चलती है। बाद की कृतियाँ पहले ही कृतियों से भावित और अनुप्राणित होती है। इस अर्थ में सांस्कृतिक अवदान नैसर्गिक न होकर एक मानवी उत्पाद होता है पर शक्ति में वह किसी भी तरह प्राकृतिक से अल्प या कमतर नहीं होता, आज के जीवन में प्रकृति और संस्कृति के बीच होड़ सी लगी हुई है, संस्कृति प्रकृति का स्थान ले ले, उसका विकल्प बन जाय इसकी कोशिश लगातार जारी है, कभी कहा गया था–'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।' देखो! ईश्वर की रचना कितनी विलक्षण है वह न नष्ट होती न पुरानी पड़ती है।' पर अब मानव की निर्मित उसकी संस्कृति भी एक विकल्प बन रही है। मनुष्य के चरणों की छाप जल, थल और नभ हर कहीं, सर्वत्र दिख रही है, उसकी चाल और प्रभाव बड़े वेग के साथ व्यापक क्षेत्र में विस्तृत रूप से आगे बढ़ती जा रही है। कम्प्यूटर, अंतरजाल और आवागमन

की तकनीक में जो चमत्कारी प्रगति दर्ज हुई है उसने पूरा परिदृश्य ही बदल कर रख दिया है, मनुष्य, अब प्रकृति के सहचर के रूप में साथ-साथ चल कर नहीं वरन प्रकृति पर अपना अधिकार जमाकर उसके स्वामी के रूप में अपनी सामर्थ्य को स्थापित और प्रमाणित कर रहा है। विज्ञान की दिग्विजय ने मनुष्य के सत्ताबोध को परिष्कृत और परिवर्धित किया है।

प्रायः संस्कृति के प्रति एक ऐतिहासिक दृष्टि अपनाई जाती है और समुदाय विशेष के साथ जोड़ा जाता है। उसमें समुदाय की जीवन शैली में कालक्रमानुसार होने वाले परिवर्तन को रेखांकित किया जाता है। इसी क्रम में संस्कृति को समाज और देश के साथ भी उसे अनिवार्यतः संपृक्त करने की हमारी आदत हो गई है। अक्सर उसे समाज की पहचान कराने वाली अपेक्षाकृत स्थायी नाम/श्रेणी करार दिया जाता है जैसे भारतीय, पश्चिमी, चीनी, यूरोपी, लातीनी, अफ्रीकी आदि। हम विभिन्न देशों को उनके सांस्कृतिक चिह्नों से समझते हैं, शायद अपनी समझ के लिए अपेक्षित पदार्थों के वर्गीकरण की स्वाभाविक प्रवृत्ति का भी यह एक तकाजा हो, परन्तु एक प्रक्रिया के रूप में संस्कृति सतत परिवर्तनशील होती है और विभिन्न संस्कृतियों के बीच भी निरंतरता होती है। उनके बीच संवाद भी होता है वे एक दूसरे से प्रभावित भी होती है, वे पूरी तरह स्वतंत्र या विच्छिन्न नहीं होती है।

एक तरह से साहित्य संस्कृति का मुख्य हिस्सा होता है या कहें संस्कृति की विषयवस्तु (कंटेंट) को रचने-रचाने में उसकी खास भूमिका होती है। दोनों के बीच पारस्परिक अंतःक्रिया होती रहती है, चूंकि साहित्य संस्कृति के परिवेश में प्रस्फुटित कल्पनाशीलता से रचा जाता है इसलिए उसमें अपने समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्य के स्वर बोलते हैं। साहित्य संस्कृति में ही जीता है और स्वयं भी उससे सतत प्रभावित होता रहता है।

सत्ता का आशय–सत्ता अस्तित्व को कहते हैं और उस अस्तित्व के आशय या निहितार्थ को व्यक्त करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। किसी भी वस्तु की सत्ता उस वस्तु की अपनी शक्ति या बल से प्रमाणित या सिद्ध होती है। सामान्य प्रयोग में सत्ता को 'पावर' और 'अथारिटी' अर्थात 'प्रभुता' या सामर्थ्य का समानार्थी भी मान लिया गया है। सत्ता अपने प्रभाव के लिए आधार खोजती है और न मिलने पर उसका आविष्कार भी करती है, बनाती है और उसका विस्तार करती है। सत्ता के कई रूप होते हैं–आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक। मध्यकाल में राजनीतिक सत्ता के साथ धार्मिक सत्ता की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। आज की स्थिति यह है कि सत्ता का रिश्ता नकारात्मक भाव से अधिक बैठने लगा है। सत्ता का गणित कुछ ऐसा है कि ऐसा कोई भी आधार जो प्राप्तव्य को अनपेक्षित या अस्वाभाविक ढंग से असंतुलित करे सत्ता/शक्ति का रूप लेता दिखाई पड़ता है। आज जाति, धन, क्षेत्र, आयु–कहीं भी किसी भी आधार को लेकर अनपेक्षित अधिकार मिल जाते हैं। इस मिली प्रभुता का फल किसी अन्य के शोषण में घटित होता है। सामाजिक सीढ़ी या हायरार्की के अधिकार पर लोग ऊपर नीचे–शोषक और शोषित की श्रेणियों में बंट जाते हैं। असमानता और विषमता बढ़ती है। इसलिए सत्ता के विकेन्द्रीकरण की बात की जाती है। बीसवीं सदी के आरम्भ में गांधी के 'हिन्द स्वराज' में हम इसी का विस्तार और निर्वचन पाते हैं, स्वतंत्रता, स्वाधीनता आदि निरपेक्ष होकर निरंकुश हो उठते हैं, प्रभुता से किसी को भी मद हो सकता है, वह अनियंत्रित होकर प्रमाद को ही जन्म देती है।

सत्ता और साहित्य–मनुष्य के रूप में हमारी अपनी सत्ता या अस्तित्व बहुस्तरीय हैं, उपनिषद की परिकल्पना में हमारा अस्तित्व पंचकोशात्मक हैं, ये कोश हैं–अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय, मनोमय, और आनंदमय, वैदुषिक कार्य के लिए भौतिक संतुष्टि सीमित मात्रा में ही अपेक्षित होती है। भौतिक आधार का वितरण सत्ता से जुड़ा है, पहले भौतिक के प्रति अंध समर्पण नहीं था और अपेक्षाएं भी सीमित थीं कहा गया 'न वित्तेन तर्पणीयों मनुष्य', इन आवश्वयकताओं का स्वभाव ऐसा है कि वे बार-बार पैदा होती रहती है।

पहले वित्त की चिंता भी कम थीं क्योंकि व्यापक जनाधार था और इतनी सहायता मिल जाती थी कि काम चलता रहे, कवि जनों को राज्याश्रय मिलने की पुरानी परम्परा रही है, भूषण, केशव और चन्द बरदाई जैसे कवि राज्याश्रित थे। पर सत्ता का प्रतिरोध भी अनेक ने किया। कई लोग नौकरी न कर लेखन को स्वधर्म बना लिया और प्रकट विरोध किया, ऐसे भी कि जब तक हो सका सत्ता को समर्थन दिया, साथ रहे और फिर विरोध में खड़े हो गए, सत्ता की संस्कृति के साथ प्रगाढ़ सम्बन्ध होता है और वह साहित्य और संस्कृति के बीच के समीकरण को प्रभावित करती है, साहित्य की विष्यवस्तु संस्कृति से आती है और सत्ता भी संस्कृति का हिस्सा होती है, संस्कृति प्रक्रिया भी है और उत्पाद भी संस्कृति को प्रभावित किया, फिर नए बदलाव में तिरोहित हो गया। मुखर सत्ता का विरोध तुलसी, कबीर में दिखता है। सत्ता केन्द्रीकरण करती है और साहित्य का स्वभाव विकेन्द्रण और प्रसार करना है, साहित्य या रचना का अस्तित्व पाठक या दर्शक पर निर्भर करता है। साहित्य प्रजातंत्र में विश्वास करता है और उसकी प्रक्रियाओं में साझेदारी और बांटने की प्रवृत्ति होती है, यह रचनाकार और उसके भावक दोनों के लिए अपेक्षित है, 'सहृदय' या

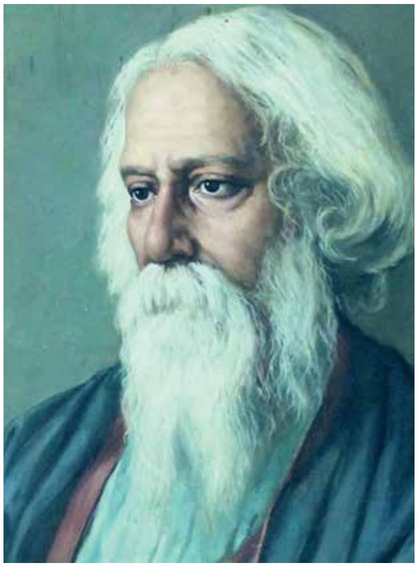

'सामाजिक' की अवधारणा इसी को व्यक्त करती है।

हिन्दी का साहित्यकार स्वतंत्रता के आन्दोलन में सत्ता के विरोध का भागीदार रहा, गांधी जी को लेकर अनेक रचनाएं हुई और अनेक साहित्यकार गांधीवादी बन गए, स्वतंत्रता की लड़ाई में अनेक साहित्यकारों ने भाग लिया, रचनात्मक प्रतिक्रिया हुई जिसमें कथा और उपन्यास की दुनिया में अनेक रचनाएं आई। यशपाल का झूठा सच. प्रेमचंद का गोदान, निराला, नागार्जुन, मुक्तिबोध जैसे कवियों ने सत्ता का प्रकट और प्रखर विरोध किया। जनवादी लेखन, प्रगतिवाद ने भी कहीं न कहीं सत्ता का विरोध किया है, वामपंथी रचनाओं में भी प्रतिरोध का तीव्र स्वर है। जाति और धन का वर्चस्व स्वतंत्रता के बाद मोहभंग हुआ–राग दरबारी, व्यंग्य–हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, वैचारिक रूप से यह लड़ाई कई लोगों ने लड़ी, सत्ता के प्रतीकों पर प्रहार किया।

सखाराम गणेश देउस्वर मराठी भाषी थे और 1905 में बागला में 'देशेर कथा' लिखी जो बंग भंग को लेकर लार्ड कर्जन की अनीति के प्रतिरोध में थी। इससे जुड़े स्वदेशी आन्दोलन के जुलूस में रबीन्द्र नाथ ठाकुर भी थे। बाबू राव विष्णु पराड़कर, जो देउस्वर के भांजे थे ने जागरूक सम्पादकीय विवेक का परिचय दिया। प्रतिरोध की परम्परा बंगाल में सिंगुर में ग्राम आन्दोलन में भी दिखी जब महाश्वेता देवी, जय गोस्वामी, अपर्णा सेन, गौतम घोष और सांवली मित्र के साथ बुद्धिजीवियों ने सिंगुरलाल गढ़ में सड़क पर उतर कर केवल जुलूस निकाला बल्कि तत्कालीन सरकार को हटाने के लिए परिवर्तन चाहिए का नारा भी दिया। सत्तर के दशक में नवारुण भट्टाचार्य को हम नहीं भुला सकते जिनकी कविता एई मृत्यु उपत्यका आमार देश नेई (यह मृत्यु उपत्यका नहीं है मेरा देश!) देश भर में चर्चित हुई थी। इस कविता में जिसका हिन्दी रूपान्तर मंगलेश डबराल ने किया था 'पहल' में छपी थी। राजसत्ता के आतंक और जीवन को अमाननीय बनाने वाले शत्रुओं के विरुद्ध भीषण युद्ध की आकांक्षा है। महाश्वेता देवी के अधिकांश साहित्य में सत्ता के प्रतिरोघ का ही स्वर है। उनका अरण्येर अधिकार आदिवासियों के सशक्त विद्रोह की महागाथा है और मानव मूल्यों से सराबोर है। चार नवम्बर 1974 को पटना के ऐतिहासिक मार्च के दौरान श्री जयप्रकाश नारायण पुलिस की लाठी से घायल होकर गिर पड़े थे। धर्मवीर भारती ने तब 'मुनादी' शीर्षक कविता लिखी थी। आपातकाल के दौरान नागार्जुन ने 'इंदु जी क्या हुआ आपको' शीर्षक कविता लिखी थी। ये कुछ प्रसिद्ध समकालीन उदाहरण हैं जो यह संकेत करते हैं कि साहित्यकार लेखक धर्म का पालन करता है और आवश्यकता पड़ने पर विरोध में खड़ा होता है। तात्पर्य यह कि अन्याय का प्रतिकार लेखकीय निष्ठा का एक खास हिस्सा है। पर साहित्य अपनी सत्ता से अडिग रहने की कोशिश करता है क्योंकि सत्ता उसके लिए गौण है। कविगुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर के शब्दों वह तो इस लौकिक सत्ता से विरत होना चाहता है–

"मेरा नाम मिटा दोगे जिस दिन तुम
बच जाऊंगा सचमुच उस दिन से
होकर मुक्त रचे सपनों से अपने
मेरे प्रभो, तुम्हीं में नया जनम ले
बला नाम की चूक ही जाए,
मुंह में नाम तुम्हारा आये
फिर तो सबसे मिल जाऊंगा
नामहीन परिचय से"

–रवीन्द्र नाथ टैगोर
गीतांजलि (अनुवाद हंस कुमार तिवारी)

कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, पोस्ट–हिन्दी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा--442001

महादेवी का काव्य-दर्शन

दानबहादुर सिंह

लेखक हिन्दी में एम.ए. तथा पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा। तेलुगु, कन्नड़ में विशेष अध्ययन एवं काजी नजरूल इस्लाम पर शोध-कार्य। पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षात्मक लेख, कविताएं तथा कहानियों का प्रकाशन।

महादेवी का काव्य-दर्शन अति संवेदनशील और अपार्थिव सौन्दर्य बोध से ओतप्रोत है। वह अध्यात्मिक चिन्तन से भरपूर और छायावादी युगीन काव्य-धारा की जाज्वल्यमान प्रतिमा हैं। उनकी रचना-दृष्टि, सुख-दु:ख, विरह-मिलन और मानवीय गुणों से सम्पृक्त है। उनके हास-परिहास और व्यक्तित्व की सहजता से प्रभावित होकर पन्त जी लिखते हैं–"उनका-सा विनोदी परिहास प्रिय छायावादियों में दूसरा नहीं मिलता, उनकी निश्छल, भावाकुल हंसी प्रसिद्ध है। किसी विनोद प्रिय अवसर या घटना के हल्के से स्पर्श से ही उनकी हृत्तंत्री बज उठती है।" उनके गम्भीर पाण्डित्य से प्रभावित होकर निराला जी ने अपने हृद्योद्गार इस प्रकार प्रकट किए हैं–

"हिन्दी के विशाल मन्दिर
की वीणा-वाणी।
स्फूर्ति-चेतना-रचना की
प्रतिमा कल्याणी।।"

उनके निर्मल व्यक्तित्व में आकाश और कवयित्री का अद्भुत तादात्म्य दिखाई देता है। देवीजी के वीतराग जीवन की निम्नांकित पंक्तियां उनके काव्य-दर्शन का रहस्योद्घाटन करती है–

"प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन
यह क्षितिज बना धुंधला विराग
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग
छाया-सी काया वीतराग
सुधि भीने स्वप्न रंगीले घन,
प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन।"

उनके जैसे पार्थिव सौन्दर्य बोध के बारे में फ्रांस के सौन्दर्य-शास्त्री ने कहा है– "कलाकार पार्थिव-सौन्दर्य की चोटी पर खड़ा होकर अपने दिव्य-चक्षुओं से इस पार्थिव के परे के सौन्दर्य की तस्वीर खींचने लगता है, उसकी भावनाओं की पृष्ठभूमि पर इस परम सौन्दर्य के चित्र प्रथम धुंधले से स्पष्ट और फिर स्पष्ट सेस अलौकिक होने लगते हैं।" इसी से मिलता-जुलता उद्धरण इटली के प्रसिद्ध कवि का भी है। वह सौन्दर्य-साधना का निदर्शन इस प्रकार करता है।

"तुम्हारे सौन्दर्य को छू कर मेरी आत्मा किसी अद्भुत रहस्य से क्यों अभिभूत हो जाती है, तुम्हारी छाया का प्रभाव मेरी प्रचेतना पर यह अनोखा आलोक लेकर क्यों मड़राया करता है। मैं रो पड़ती हूं–तुम क्यों मेरे आंसू पोंछ कर मुझे हंसाते-हंसाते रुला देते हो। मैं प्यासी आंखों में बार-बार क्यों एक परिचित-सी रोशनी पाती हूं–वह रोशनी, जिसमें तुम मेरा स्वरूप धारण करके आलोक वितरण किया करते हो।" इसी प्रकार की सौन्दर्य-साधना कबीर-साहित्य में भी दिखाई देती है। महादेवी रहस्योन्मुख होकर अपूर्ण सौन्दर्य से मन हटा कर सम्पूर्ण सौन्दर्य से अपना नाता जोड़ लेता है। इसी प्रकार की सौन्दर्योपासना से उनके भीतर विरह-भावना उपजती है। आगे चल कर उनके काव्य में रहस्यवाद दृष्टिगोचर होता है। विछोह की भावना उन्हें सदैव आकुल बनाए रहती है। उनके भीतर मिलन की उत्कंठा है। दृष्टव्य है–

"करुणामय को भाता है
तम के परदे में आना,
हे नभ की दीपावलियो,
क्षण भर को बुझ जाना।"

महादेवी के काव्य-दर्शन में जड़ और चेतन, जीव और प्रकृति की रहस्यमयता बनी हुई है। वह रागात्मक सहानुभूति के माध्यम से करुणामयी रात से एकात्मकता जोड़ लेती हैं। देखिए–

"सजनि मैं इतनी करुण हूं
करुण जितनी रात
सजनि मैं उतनी सजल
जितनी सजल बरसात।"

विरहणी कवयित्री करुणामयी छाया से दूर रहना नहीं चाहती। वह उसके साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहती है। उसके भीतर सब प्रकार से समर्पण-भाव व्याप्त है और वह कह उठती है–

"मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप।
तन तेरी साधकता छू ले,
मन ले करुणा की थाह नाप।"

महादेवी जी बौद्ध धर्म से अनुप्राणित रहीं जिसके भीतर करुणा मूल स्वर है। इसी को उन्होंने अपने काव्य-दर्शन का मूल मंत्र माना है। उनकी करुणा की दीप-शिखा कभी बुझती नहीं दिखाई देती।

उनके अध्यात्म-दर्शन में वेदना सदैव साथ रही है। वाल्मीकि से लेकर कबीर तक और छायावादी कवियों में भी वेदना किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। इसके बिना उनका काव्य सूना है। इसीलिए 'रश्मि' की भूमिका में इसी दुःख अथवा वेदना को स्पष्ट कर देना चाहती है–

''दुःख मेरे समीप जीवन का एक ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख चाहे हमें मनुष्यता की पहिली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वर बनाए बिन नहीं गिर सकता।''

महादेवी के जीवन में दुःख की परिव्याप्ति सदैव अक्षुण्ण रूप से बनी रही। यही उनके जीवन में आत्म-प्रकाश है और यही वेदना उनके जीवन में करुणा का स्रोत है। देखिए–

"रजत रश्मियों की छाया में
धूमिल छन-सा वह आता
इस निदाध से मानस में
करुणा के स्रोत बहा जाता।
उसमें मर्म छिपा जीवन का
एक तार अगणित कम्पन का
एक सूत्र सबके बन्धन का
संसृति के सूने पृष्ठों पर
करुण काव्य वह लिख जाता।"

दुःख उनके जीवन में अवगुंठित है और सुख मृग-मरीचिका है। सुख तो श्वासों की तरह आता-जाता रहता है। इस दुःखवाद से उन्हें छुटकारा कभी नहीं मिला और यही उनका काव्य-दर्शन है। कहते हैं उस परमशक्ति को भी वेदना अथवा दुःख से अनुराग है। इसी वेदना से महाकवि टैगारे भी प्रभावित हुए थे और इससे उन्हें छुटकारा नहीं मिला। इसकी रहस्यानुभूति वह अपने काव्य में करते रहे। महादेवी जी कहती हैं--

"मृग-मरीचिका के पथ पर
सुख आता श्वासों के पग धर।"
xxx xxx xxx
"विरह की घड़ियाँ हुईं अलि
मधुर मधु की यामिनी सी।
सजनि अन्तर्हित हुआ है आज में
धुँधला विफल कल हो गया है
मिलन एकाकार मेरे विरह से मिल
आज है निःसीमता लघु
प्राण की अनुगामिनी सी।"

महादेवी जी के जीवन में विरह का युग अनन्त है और मिलन की घड़ियाँ छोटी हैं। उन्हें सुख-दुःख की अनुभूति आँख मिचौली-सी लगती है। उन्हें अपने प्रिय की भावना में आनन्दानुभूति होती है–

"विरह का युग आज दीखा
मिलन के लघु पल सरीखा
सुख-दुःख में कौन तीखा
मैं न जानी औ न सीखा।
मधुर मुझको हो गए सब
मधुर प्रिय की भावना ले।"

कवयित्री का प्रिय निष्ठुर है, निर्मम है। यदि उसके जीवन का दीप बुझ जाता है तो उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है क्योंकि उनके जीवन की पीड़ा का साम्राज्य अंधकारमय हो जाएगा। इसीलिए वह विरह की आराधना करती हुई आराध्यमय हो गई हैं। वह बंधनों से मुक्ति की कामना करती है। वह कहती हैं–

"चिन्ता क्या है हे निर्मम
बुझ जाए दीपक मेरा,
हो जाएगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अँधेरा।"

"हो गई आराध्यमय मैं
विरह की आराधना ले
आज वर दो मुक्ति आवे
बन्धनों की कामना ले।
रंगमय है देव! दूरी
छू तुम्हें रह जाएगी वह
चित्रमय क्रीड़ा अधूरी,
दूर रह कर खेलना पर
मन न मेरा मानता है;
सो रहा सब विश्व पर
प्रिय तारकों में जागता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवयित्री की काव्यधारा जीवन के गम्भीर तत्वों से अनुप्राणित है। उसके अन्तराल में संगीत की अनुगूँज है। उनके काव्य-दर्शन में सत, चित और आनन्द की समरसता दिखाई देती है। उनकी कोमलकान्त पदावली में मधुर संगीत है, विचार-गाम्भीर्य और भावुकता के दर्शन होते हैं।

मूलतः उनके काव्य-दर्शन में उपासनात्मक प्रेम की पराकाष्ठा और समर्पण भावना है। उनका लौकिक प्रणयोद्‌गार अलौकिक प्रेमोन्मुख है। उनके लिए प्रेम ही पुरुषार्थ है। उनकी प्रेमानुभूति दार्शनिक विवादों से बहुत दूर है। महादेवी जी ने विश्व प्रकृति के रूप में विश्व-पुरुष को आगे रखा है। इस प्रकार वेदना, दुःख, पीड़ा, विनम्र, स्मृति उनकी काव्योपासना के उपादान हैं। इसी भावना की अनुगामिनी निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं–

"उमड़ता मेरे दृगों में
बरसता घनश्याम में जो,
अवध में मेरे खिला
नव इन्द्र धनु अभिराम में जो;
बोलता मुझ में वही जग मौन में
जिस को बुलाता।
सुभग मैं उतनी मधुर हूँ
मधुर जितना प्रात,
सजनि मैं उतनी सजल
जितनी सजल बरसात!"

उनकी कविताओं में नीहार से लेकर दीपशिखा तक प्रकृति का निसर्ग रूप निखरा है। प्रभात में पहले 'नीहार' छाता है, फिर 'रश्मि' अवतीर्ण होती है, फिर 'नीरजा' खिलती है; 'सांध्य गीत' की बेला आती है और तब कहीं रात की छाया घिर आने पर 'दीपशिखा' जलाई जाती है। 'नीहार' एक धुँधले विषादपूर्ण

वातावरण की सृष्टि करता है। महादेवी जी 'नीहार' में किसी अज्ञात आराध्य की उपासना करती हैं। रश्मि में अंधकार के पार प्रकाश चरमाह्लाद लेकर आता है और इनके अलावा, इसमें जीवन, मृत्यु, मुक्ति और अमरता का चित्रांकन मिलता है। 'नीरजा' में हृदय-कमल की पंखुड़ियों को खोला गया है। इनकी रचनाओं में रहस्यमयता अथवा सूक्ष्म-जगत् की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'छायावाद' को स्पष्ट करते हुए उसमें भावावेश की आकुल व्यंजना लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त प्रत्यक्षीकरण और कोमल पदविन्यास की बहुलता देखी। छायावादी कवयित्री महादेवी में ये सभी लक्षण प्रभूत मात्रा में दिखाई देते हैं। महादेवी जी के काव्य-दर्शन में उनका साधना-पथ बिल्कुल अलग-थलग दिखाई देता है। उनकी सृजनात्मकता में मौलिकता है और एक अलग प्रकार की दार्शनिकता दिखाई देती है। उन्होंने अपने साधना-पथ में कभी हार नहीं खाई। इसीलिए वह कहती हैं–

"अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते दे
शूल को संकल्प सारे।
दुःखव्रती निर्माण उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक संसृति से
तिमिर में स्वर्ण वेला।
पंथ रहने दे अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला।"

महादेवी के लिए करुणा का उपहार ईश्वर की देन है। कवयित्री को जीवन-मरण का भय नहीं सताता। वह तो उसके जीवन में स्वाभाविक ही है। उसके आराध्य चिन्मय हैं। वह तो मृण्मयी अनुरागिनी है। इसीलिए वह कहती हैं–

"बन रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं,
रजकणों में खेलती किस
विरज विधु की चाँदनी मैं।"
xxx xxx xxx
"क्या अमरों का लोक
मिलेगा तेरी करुणा का उपहार,
रहने दो हे देव अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार।"

पार्थिव जीवन में कवयित्री जब असीम की अनुभूति करती है तो परम सत्ता उसे रिझाता-खिझाता है। यही प्रीति की निष्ठुरता है। वह तो मर मिटने के लिए हर प्रकार से तैयार है और कहती है–

"विश्व में वह कौन सीमाहीन है
हो न जिसका खोज सीमा में मिला,
क्या रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं
क्या तुम्हें सर्वेश एक महान् हो?"

महादेवी जी को यह बात भलीभाँति पता है कि साधना के पथ पर चलने वाले के लिए विरह एक तपस्या है। इसी के माध्यम से प्रिय का साक्षात्कार संभव है। इसीलिए वह कहती हैं–

"तुमको पीड़ा में ढूँढा
तुममें ढूँढेगी पीड़ा।"

अपने आराध्य के प्रति इस प्रकार का समर्पण भाव हिन्दी के अन्य कवियों में मिलना मुश्किल है। विरह एक प्रकार का सोपान है जिसके माध्यम से साधक अपने अभीष्ट तक पहुँच सकता है। उनकी करुणा एक सार्वभौम सत्य है। उन्होंने प्रेमय मंगल की आराधना वैयक्तिक ढंग से की है। उनका भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही उज्ज्वल हैं। उनकी भाषा में प्रसाद का परिष्कार, निराला की संगीतात्मकता और पंत की कोमलता के सभी गुण मिलते हैं। महादेवी ने उस असीम अज्ञात प्रियतम के प्रति दाम्पत्य भाव के रूप में अपने हृदय के आकुल प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। इस प्रकार उनका रहस्यवाद भावमय है। परमात्मा के प्रति अभिन्नता प्रकट करती हुई वह कहती हैं।

"बीन भी हूँ मैं तुम्हारी
रागिनी भी हूँ।
पात्र भी, मधु भी,
मधुर स्मृति भी,
अधर भी हूँ और
स्मित की चाँदनी भी हूँ।"

प्रकृति के साथ चेतना का प्रत्यारोपण जैसा महादेवी जी की रचनाओं में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। छायावाद की यही सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है। इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में, "छायावादी काव्य में प्रसाद ने यदि प्रकृति तत्त्व को मिलाया, निराला ने मुक्तक छंद दिया, पंत ने शब्दों की खराद पर चढ़ाकर सुडौल और सरस बनाया तो महादेवी जी ने उसमें प्राण डाले।" अन्ततः आचार्य शुक्ल द्वारा अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में महादेवी के ऊपर की गई एक टिप्पणी को उद्धृत करना श्रेयस्कर समझता हूँ। गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भावभंगी। जगह-जगह ऐसी ढली हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 487)

कुल मिलाकर महादेवी जैसी कवयित्री युगों के बाद धरती पर अवतीर्ण होती है। तभी तो निम्नांकित पंक्तियाँ उनके व्यक्तित्व को चरितार्थ करती हैं–

'जयन्ति ते सुकृतिनः
रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये
जरामरणजं भयम्।।"

कोठी नं. 3/16/3, ए.जी. कॉलेज रोड,
पड़रा, रीवा-486001

प्रसाद का मूल्यपरक जीवन-दर्शन

डॉ. मिथिलेश दीक्षित

डॉ. मिथिलेश दीक्षित इटावा, उत्तर प्रदेश की हैं। देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं तथा उनमें से अनेक की आजीवन सदस्य तथा संरक्षक हैं।

मूल्यों का मानव-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मूल्य मानव-जीवन के अस्तित्व तथा आध्यात्मिक-आदर्शात्मक-सांस्कृतिक आयामों से उद्भूत होते हैं। मानव-जीवन मूल्यों से ही नियन्त्रित होता है। मूल्यों का महत्व सापेक्षिक होता है तथा इनका समबन्ध मानवीय चेतना से होता है। मानवीय मूल्यों में जीवन की सार्वभौम संवेदना और प्रयोजनशीलता को स्वीकार किया जाता है, ये जीवन-मूल्य साहित्य में सौन्दर्य, शिवत्व एवं सत्य के रूप में अभिव्यक्ति पाते हैं। मूल्यपरक होने के कारण ही साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। साहित्य की मूल्यवत्ता उसके स्वरूप के साथ-साथ उसके व्यापक प्रयोजन में निहित होती है। साहित्य की कोई भी प्रवृत्ति या कोई भी कृति अपने में निरपेक्ष या असम्पृक्त प्रवृत्ति या कृति नहीं होती। उसके पीछे एक लम्बी साहित्य परम्परा होती है। वह क्षण या अवधि, जिसमें वह कृति रची गयी, उस लम्बी परम्परा की ही एक सम्बद्ध कड़ी है और वह कृतिकार उसी समूह की एक इकाई है, फिर भी किसी विशिष्ट अनुभूति-प्रक्रिया और रचना-प्रणाली के बल पर सृजन का वह क्षण समस्त परम्परागत इतिहास से अधिक सजीव और मर्मस्पर्शी बन जाता है। इस क्षण में उसके द्वारा अनुभूत भावसत्य केवल उसका और उस क्षण का ही न रहकर साधारणीकृत और स्थायी हो जाता है। मूल्याधिष्ठित साहित्य शाश्वतता को प्राप्त होता है।

छायावाद के सुप्रसिद्ध रचनाकार जयशंकर प्रसाद की कृति 'कामायनी' का इसीलिए शाश्वत महत्त्व है। रचनाकार का व्यक्तित्व और उसका जीवनदर्शन जितना उदात्त, उदार और परिष्कृत होगा, उसकी रचनधर्मिता भी तदनुरूप ही होती है। चिन्तन का व्यापक क्षितिज उसे व्यापक भावबोध और जीवन-मूल्यों के प्रति प्रेरित करता है। हिन्दी के छायावादी काव्य की मूल प्रवृत्ति मूल्यपरक रही है। छायावाद के प्रायः सभी कवियों ने भी प्रकारान्तर से यह बात स्वीकार की है। सुमित्रानन्दन पन्त जी का कहना है, छायावाद की मुख्य तथा मध्यवर्त्तिनी धारा राष्ट्रीय अन्तर्जागरण की चेतना तथा वैश्विक विकास के नये मूल्य के रूप-स्पर्श को वाणी देने की ओर गतिशील रही है। 1. उन्होंने छायावाद का मूल प्रयोजन बताया। जिस प्रकार वैज्ञानिक विचारधारा ने बाह्य जीवन के प्रति एक ऐतिहासिक-भौतिक दृष्टि दी है, उसी प्रकार छायावाद भी मनुष्य के अन्तर्जीवन के विकास तथा विश्व-संयोजन के लिए नवीन चेतनात्मक ऐतिहासिक अनुभूमि से अनुप्राणित है। 2. प्रसाद ने छायावाद का सम्बन्ध स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति से माना। 3. तथा महादेवी वर्मा ने छायावाद को हृदय की अभिव्यक्ति माना है। 4. डॉ. रामकुमार वर्मा ने छायावाद को हृदय में जीवन के प्रति एक गहरी संवेदना और आशावाद प्रदान करता है। 5. छायावाद की एक स्वस्थ एवं दार्शनिक पीठिका थी, जो भारत की प्राचीन संस्कृति और उसके वाङ्मय से परिपुष्ट थी, साथ ही उस पर युगीन चेतना का अत्यधिक प्रभाव रहा। सांस्कृतिक चेतना, सर्वात्मवाद, अध्यात्मवाद तथा लोकमंगल की भावना छायावाद के समष्टिबोध के परिचायक बने। छायावाद पर 'रोमांटिसिज्म' का प्रभाव रहा, परन्तु उसे भारतीय संस्कृति और परिवेश के आलोक में ही ग्रहण किया गया था। संसार में ईश्वर की व्यापकता, कण-कण में चेतना का अस्तित्व, आत्मबोध, आस्थावादिता आदि से सम्बन्धित श्री अरविन्द और स्वामी विवेकानन्द की धारणाओं का

छायावादी कवियों पर अधिक प्रभाव पड़ा। गाँधी जी के सत्य, अहिंसा, सेवा, करुणा, सर्वोदय, प्रेम, समता आदि का भी उन पर प्रभाव पड़ा। प्रसाद पर शैवदर्शन के प्रत्यभिज्ञा-चिन्तन का तथा अद्वैत वेदान्त और बौद्धदर्शन का प्रभाव रहा। महादेवी पर वेदान्त और गीता का, पन्त पर श्री अरविन्द एवं गाँधी जी का तथा निराला पर कवीन्द्र एवं विवेकानन्द का सर्वोपरि प्रभाव रहा। समष्टि-प्रभाव की दृष्टि से छायावाद का कथ्य अत्यन्त संवेदनशील तथा सीमा अत्यन्त विराट है।

छायावाद के कवियों की दृष्टि मूल्यकेन्द्रित रही है। पन्त जी ने मान कि छायावाद ने सामुहिक जीवन-संचरण को बहिर्मुखी अर्थ में न ग्रहण कर उसे उसके वैश्विक मूल्य या अन्तर्मूल्य के अर्थ में ग्रहण किया। स्वानुभूति उसके लिए विश्वात्मा या विश्व-जीवन का पर्याय बन गयी। इन कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से व्यष्टिचेतना से व्यापक चेतना की एकता स्थापित की। छायावादी कवियों का काव्य प्रेम, आशा, आस्था और विश्वास का काव्य है। उनके काव्य में सत्य सौन्दर्य के रूप में मूर्त्तित हुआ है, मंगलमय प्रयोजन को अपने साथ लेकर अभिव्यक्त हुआ है। छायावाद, वस्तुतः एक सर्वग्राही अन्तर्दृष्टि है, जो सत्य का अन्वेषण करती है। इन कवियों ने लौकिक प्रेम को भी आध्यात्मिक धरातल पर पहुँचा दिया है। "महादेवी ने इस आध्यात्मिकता को करुणा की आत्मा में खोजा है। पन्त ने सर्वात्मवादी चेतना में इसे ढूँढा है। प्रसाद ने आनन्दवादी उदात्तधारा में उसे पाया है और निराला को वह मिला है– सांस्कृतिक चेतना में, जो शक्ति और सोऽहम्-बोध में सन्निहित है।"

वर्तमान समय में पूरा विश्व अपसंस्कृति के दौर से गुजर रहा है। अब 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की बात स्वप्न-सी लग रही है। भौतिक रूप से जितनी सुख-सामग्री बढ़ती जा रही है, उतनी ही लालसाएँ बढ़ती जा रही हैं, उतनी ही अतृप्ति बढ़ती जा रही है और उतने ही दुःख बढ़ते जा रहे हैं। प्रसाद ने विश्व की आकुल-व्याकुल, त्रस्त मनुष्य जाति को अपने काव्य के माध्यम से चेतना, आनन्द और जागरण का सन्देश दिया। 'कामायनी' के मनु के द्वारा जीवन की क्षुद्रताओं से ऊपर उठने का सन्देश दिया। श्रद्धा की वाणी द्वारा जीवन की क्षुद्रताओं से ऊपर उठने का सन्देश दिया। श्रद्धा की वाणी द्वारा कर्म का सन्देश दिया। उनके द्वारा रचित 'कामायनी' महाकाव्य सम्पूर्ण विश्व की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक चेतना के स्फुरण के लिए एक विशिष्ट वरदान है। इस महाकाव्य के द्वारा प्रसाद ने निरन्तर द्रव्यता में लगी रहने वाली, अनजान समस्याओं में व्यस्त तथा एकता के नष्ट हो जाने के कारण अनन्त कोलाहल एवं कलह में फंसी हुई संकुचित दृष्टि वाली आधुनिक युग की इस 'अभिनव मानव प्रजा-सृष्टि' को भी सन्देश दिया है और बतलाया है कि दुःखों से घबराकर संसार से भागने की

आवश्यकता नहीं। यह दुःख तो ईश्वर का रहस्यमय वरदान है। मनुष्य अपनी कमियों पर विजय प्राप्त कर विजयी कहलाने का अधिकारी हो सकता है। वह अपनी अन्तश्चेतना को समझकर ही शक्तिशाली हो सकता है। तभी प्रसाद कहते हैं–"शक्तिशाली हो, विजयी बनो।" मनुष्य विधाता की इस कल्याणी सृष्टि को सफल तभी बना सकता है, जब वह कर्मशील रहकर मानवता की उन्नति में सहायक हो सकता है।

प्रसाद ने आधुनिक बुद्धिजीवी मानव की समस्याओं पर गहराई से चिन्तन किया और उसके व्यक्तित्व को पूर्णत्व देने के लिए संसार की सत्यता का प्रतिपादन किया, सौन्दर्य को आन्तरिक चेतना से जोड़ा तथा अभेदवादी अवधारणा व श्रेष्ठकर्मों के विघटन से आनन्द-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। संसार का प्रत्येक पदार्थ कर्मरत है। मनुष्य जब सत्कर्म और सेवा में रत होता है, तो उसके कर्म कर्त्तव्य बन जाते हैं। सेवा अपनी सुख-संतृप्ति है। उन्होंने कर्म पर बल देते हुए मानव-मानव तथा ईश्वर और मानव में अभेद की स्थिति बतलायी। उन्होंने, इस प्रकार दर्शन के श्रेय को काव्य का प्रेय बना दिया। मानव का जीवन अमूल्य है। उसमें कर्म का प्रावधान अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि वह इच्छा से ज्ञान तक की सीमाओं का अतिक्रमण करता है। पाप-पुण्य का कारण बनता है, तो मानव को देवत्व तक पहुँचाने का भी कारण बनता है। सम्पूर्ण विश्व को उन्होंने कर्मभूमि माना है और कर्म की श्रेष्ठता को सृष्टि के स्थायित्व के लिए आवश्यक माना है–

"यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म रंग-स्थल है।"

कर्म के प्रति आस्था ही जगत् के प्रति सत्य का आभास कराती है। संसार के प्रति मानव की प्रगतिपरक रुचि को दृढ़ करती है, जहाँ उसे निरन्तर कर्म करते रहने पर सुख का प्रकाश दिखायी पड़ता है–

"जीवन-धारा सुन्दर प्रवाह,
सत् सतत प्रकाश सुखद अथाह।"

यह संसार सुन्दर है। यह जीवनधारा सुन्दर है। प्रसाद जी के अनुसार कर्म का भोग और भोग का कर्म–यही जड़ का चेतन आनन्द है। कर्मवीर अपने पथ और अपने गन्तव्य का चयन कर लेता है। प्रसाद की 'प्रेमपथिक' की पंक्तियाँ हैं–

"इस पथ का उद्देश्य नहीं है,
श्रान्त भवन में टिक रहना,

किन्तु पहुँचना उस सीमा तक,
जिसके आगे राह नहीं,
अथवा उस आनन्दभूमि में
जिसकी सीमा कहीं नहीं।" (प्रेमपथिक)

यह आनन्द चरम जीवन-मूल्य है और जीवन का परम लक्ष्य है। मनुष्य का वास्तविक स्वरूप आनन्दमय ही है। मनुष्य की जीवन-यात्रा इसी आनन्द की प्राप्ति हेतु अनवरत चलती रहती है। यह यात्रा आनन्द से आनन्द तक की यात्रा है। इसके लिए संसार के सभी मनुष्य प्रयासरत हैं। प्रसाद ने इस मानव-जीवन का महत्त्व प्रतिपादित किया है और संसार को ब्रह्म का ही विराट् स्वरूप माना है। इस संसार में मानव जीवन ईश्वर का वरदान है, श्रद्धा द्वारा यह तथ्य प्रतिपादित हुआ है–

"जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत् की ज्वालाओं का मूल।
ईश का वह रहस्य वरदान,
कभी मत इसको जाओ भूल।"

जीवन और जगत् से विमुख नहीं हुआ जा सकता। मानव को चाहिए कि वह जड़-चेतन सभी से समरस होकर अपने सुखों का विस्तार करे। समरसता से आनन्द की स्थिति आती है।

प्रसाद की मूल्यचेतना भारतीय दर्शन, विशेषकर प्रत्यभिज्ञादर्शन पर आधारित है। इस दर्शन के अनुसार 'शिव' ही परमतत्व है, जो चिन्मय सत्ता है। वे शक्ति के समन्वित हैं और विश्व के प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त हैं। चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया–ये परमशिव की पाँच शक्तियाँ हैं। "चित् शक्ति के द्वारा वे स्वतः प्रकाशित होते हैं। आनन्द शक्ति के द्वारा वे निरतिशय आनन्द का साक्षात्कार करते हैं। इच्छा शक्ति के द्वारा वे जगत् के सृष्टि, स्थिति, संहार आदि कार्य करते हैं। ज्ञान शक्ति के द्वारा वे वेद्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं और क्रियाशक्ति के द्वारा सर्वआकारधारण करने की योग्यता प्राप्त करते हैं।" सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह और तिरोधान–उनके पाँच कार्य हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार परमसत्ता की इच्छा से सृष्टि उन्मीलित होती है। प्रसाद ने भी कहा है–**"उसी का उन्मीलन अभिराम, उसी में सब होते अनुरक्त।"**

वह परमत्व चिन्मय है, अतः प्रसाद यह मानते हैं कि यह सृष्टि भी चिन्मय है। यह चराचर सृष्टि उस परम शिव के हृदय रूपी बीज या शक्ति में इस तरह विद्यमान रहती है, जैसे वट के बीज में पूरा वृक्ष समाहित रहता है। यह सृष्टि इसी परमचेतना सत्ता का स्फुरण है, जिसके लिए प्रसाद कहते हैं–**"चेतनता एक विलसती।"** प्रसाद मानते हैं कि यह सम्पूर्ण सृष्टि उसी की लीला है। **"जलथलनभ में कुहुक बन गया, जो अपनी ही लीला से।"** जब इस परमतत्त्व का यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तभी मोक्ष की स्थिति होती है। यही प्रत्यभिज्ञादर्शन का अभेदवाद है, जिसे प्रसाद ने अपने काव्य द्वारा अभिव्यंजित किया है।

परमसत्ता को 'सच्चिदानन्द स्वरूप' कहा जाता है। प्रसाद ने भी उसे सत्, चित् और आनन्दस्वरूप माना है, साथ

ही समग्र सृष्टि को सत्य, चिरन्तन और आनन्दमय माना है। 'विशाख' में उन्होंने कहा है–

"यही सत्य, यही स्वर्ग,
यही पुण्य पोष है।" (पृष्ठ 31) तथा

"वह और कुछ नहीं,
विशाल विश्व रूप है।" (पृष्ठ 31)

यह प्रकृति उसी चिति का चेतन रूप है। जिस समय जीव को यह ज्ञान हो जाता है कि सर्वत्र शुद्ध चेतन ही है, जड़ में भी वही चेतन है तथा अखिल विश्व एक अखण्ड सत्ता है, उसी समय उसे अनुभव होने लगता है कि वह सबका है, और सर्वस्व उसी का है। उसे उसके आनन्द स्वरूप का बोध हो जाता है। वह क्रियाशील प्रकृति की क्रीड़ा के चेतन रहस्य को समझने लगता है। उसे विश्व और विश्वात्मा रूप ईश्वर और सृष्टि में अभिन्नता दिखायी देने लगती है। वह विश्वात्मा के साथ विश्व के खेल खेलने लगता है। वह सर्वात्मा के स्वर में, आत्म समर्पण के प्रत्येक ताल में, अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को विस्मृत कर देता है। उसका चैतन्य सागर-निस्तरंग हो जाता है। उसकी ज्ञानज्योति निर्मल हो जाती है और वह संसार के बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार प्रसाद ने प्रत्यभिज्ञादर्शन के अभेदवाद को समत्व के लिए आवश्यक समझकर अपनी अनेक कृतियों के माध्यम से मानवता को मूल्यपरक सन्देश दिया। इस "अभेद बुद्धि से विराट् विश्व और विश्वात्मा, ईश्वर और सृष्टि, जीवन और जगत्... सभी की अभिन्नता एवं समरसता का बोध होता है। इसी से पारस्परिक द्वेष मिटकर मानवता का विकास हो सकता है और इसी से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का प्रसार होकर विश्व-बन्धुत्व के साथ-साथ विश्वभर में एक कुटुम्ब की स्थापना हो सकती है। इतना ही नहीं, इसी दार्शनिक विचारधारा को अपनाकर जीवन सम्पूर्ण जड़-चेतन पदार्थों को सत्य मानकर उन्हें, 'शिवमय' देखता हुआ, इसी जीवन में अपने को भी 'चिरानन्दमयी' सत्ता का रूप मानता हुआ, अखण्ड आनन्द का अनुभव कर सकता है।"[7]

परमतत्त्व की भाँति जीव भी शुद्ध, चित्रूप, आनन्द स्वरूप है, परन्तु 'नियति-कंचुक' जीव की व्यापकता को संकुचित करके सीमित बना देता है। यह नियति ईश्वर की नियामिका शक्ति है। जीव को अज्ञान या अविद्या में डालने वाले आवरण या कंचुक पाँच हैं–कला, विद्या, राग, काल और नियति। इनमें से नियति पाँचवाँ कंचुक है। प्रसाद ने अनेक स्थलों पर इसी 'नियति' का वर्णन किया है। प्रसाद ने 'कामायनी' के रहस्य सर्ग में 'नियति' के बारे में कहा है–**"नियति चलाती कर्मचक्र यह।"**

सृष्टि का समस्त क्रिया-व्यापार नियति के अधीन है। नियति एवं भाग्यवादिता में अन्तर है। भाग्यवादी निष्क्रिय हो सकता है। नियतिवादी क्रियाशील रहता है। प्रसाद के अनुसार यह नियति ही सृष्टि की समरसता और आनन्दप्राप्ति में सहायता करती है। इस समरसता का मूलाधार श्रद्धा है। श्रद्धा मानसिक जगत् की विषमता को दूर करती है। यह ऐसी सात्विक वृत्ति है, जो मन को उच्चतम भावभूमि पर ले जाती है।

उपनिषदों के अद्वैतवाद तथा शैवदर्शन के समरसता के सिद्धान्त को प्रसाद ने आत्मसात् किया तथा अपने काव्य में उच्च मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में उन्हें प्रस्तुत किया। शैवदर्शन के समरसता के सैद्धान्तिक स्वरूप को उनहोंने मानव जीवन के हितार्थ व्यावहारिक रूप दिया। इस प्रकार प्रसाद की समरसता दृष्टि में व्यक्ति के अन्तर्मन से लेकर विश्व तक के संघर्ष को समाहित करने का प्रयास है। समरसता के कारण न कोई अधिकारी रहता है और न कोई अधिकार का भाव रहता है–

"समरसता ही सम्बन्ध बनी
अधिकार और अधिकारी की।"

द्वयता की स्थिति से ही जीवन में दुःख आते हैं। मनुष्य जब तक संसार को अपने से पृथक् देखता है, तब तक वह भ्रम, भय, शंका, संघर्ष, दुःख में निमग्न रहता है, जब वह संसार का ही स्वयं को एक अंग मान लेता है, तो उसमें भेद बुद्धि नहीं रहती और उसे आनन्द की अनुभूति होती है। इसके लिए प्रसाद ने मूलमन्त्र दिया है–

"चिति का विराट् वपु मंगल।" तथा

"कर रही लीलामय आनन्द,
महाचिति सजग हुई-सी व्यक्त।
उसी का उन्मीलन अभिराम,
उसी में सब होते अनुरक्त।"

प्रसाद ने 'समरसता' के दार्शनिक सिद्धान्त का सरलीकरण कर दिया है। उनकी समरसता की व्यावहारिक दृष्टि भी एकांगी नहीं है। उन्होंने समरसता की स्थिति में ही सभी पदार्थों की विद्यमानता सिद्ध की है। धर्म, दर्शन, विज्ञान और साहित्य में, व्यक्ति और समाज में, व्यक्ति एवं राष्ट्र में, राष्ट्र एवं विश्व में, जड़ एवं चेतन में व्याप्त या आरोपित विषमता को अपने इस व्यावहारिक मूल्यपरक दृष्टिकोण द्वारा दूर करने का प्रयास किया है।

प्रसाद की भावधारा में सभी जीवन-मूल्य समाहित हुए हैं। उन्होंने विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं, प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अमूल्य एवं उपयोगी अंशों को स्वीकृत कर आत्मसात किया और अपने काव्य में स्थान दिया। उनके द्वारा माव को कर्म के प्रवृत्ति मार्ग पर चलने का सन्देश दिया। श्रद्धा के माध्यम से प्रसाद ने कहलवाया कि 'काम' मंगल से मण्डित है, अतः श्रेयस्कर है। यह

संसार भी तो उस परमसत्ता की इच्छा का परिणाम है। काम जब शाश्वत सुख की अनुभूति बन जाता है, तब उसे प्रेम कहा जाता है। प्रेम और अद्वैत अभेद की स्थिति में मनुष्य को पहुँचाता है। प्रेम एक शाश्वत जीवन-मूल्य है, जो सभी प्राणियों को एक सूत्र में बाँधता है। मानवता की स्थिति एवं विकास प्रेम के कारण हैं। वैश्विक एकात्मबोध प्रेम की व्यापकता का परिणाम है। प्रकृति-प्रेम और मानव-प्रेम दोनों की अभिव्यक्ति चरम जीवन-मूल्य के रूप में प्रसाद के काव्य में हुई है। प्रेम, आनन्द एवं करुणा चिरन्तन जीवन-मूल्य हैं, जिनका व्यापक दृष्टि से चित्रण प्रसाद के साहित्य में मिलता है। इन शाश्वत मूल्यों के अन्तर्गत ही सभी जीवन-मूल्य समाविष्ट हो जाते हैं। परमसत्ता ने ये जीवन-मूल्य केवल मानव को प्रदान किए हैं, ताकि वह अन्य में स्वयं की स्थिति समझे, सबसे प्रेम करके आनन्दित हो, ईश्वर से प्रेम करके आनन्द की अनुभूति करे।

प्रसाद का काव्य समष्टिबोध का काव्य है। उनका मूल्यपरक मानवतावादी चिन्तन उनके काव्य में सर्वत्र परिलक्षित होता है। प्रसाद की रचनाधर्मिता की प्रतिबद्धता मानव जीवन के समत्वपूर्ण विकास के प्रति रही। सौन्दर्य-चेतना में ही सत्य समाहित है, शिवत्व समाहित है। सौन्दर्य चेतना से पृथक् नहीं है। सत्य चेतना से पृथक् नहीं है। जहाँ पर सत्य, शिव और सुन्दर हैं–वहीं आनन्द की स्थिति है। प्रसाद का जीवन-दर्शन इन दो पंक्तियों में गागर में सागर की तरह समाहित है–

"चिति का विराट् वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर।"
(कामायनी)

सौन्दर्य चेतना से अलग नहीं है। चेतना सत्य से अलग नहीं है। जहाँ सत्य, शिव, सुन्दर हैं–वहीं आनन्द है। प्रसाद ने सर्वत्र विराट् के दर्शन किये, इसलिए उनका जीवन-दर्शन भी विराट् है। जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति भी विराट् है।

प्रेम उदात्त मानवीय जीवन-मूल्य है। प्रसाद प्रेम के गायक हैं। प्रेम का भी सत्य, शिव, सुन्दर से सम्बन्ध है। जिसके हृदय में आनन्द निवास करता है, उसी के हृदय में प्रेम निवास करता है।

प्रसाद ने श्रद्धा के रूप में आदर्श भारतीय नारी के त्यागमय स्वरूप का चित्रण कर उदात्त प्रेम की प्रस्तुति की है। उसका हृदय दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास से परिपूर्ण है। प्रेम में विश्वास और त्याग आवश्यक है। यह प्रसाद का चिन्तन है। प्रसाद का प्रेमभाव व्यक्ति से लेकर राष्ट्र और विश्व तथा पूरी मानवता के लिए है। 'कामायनी' में श्रद्धा का प्रेम तथा कार्नेलिया का भारत-प्रेम वस्तुतः प्रसाद के भावबोध के दो अंग हैं। कार्नेलिया द्वारा राष्ट्र प्रेम व्यक्त करती हैं पंक्तियाँ–

"अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को
मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर
नाच रही तरु शिखा मनोहर,
छिटका जीवन-हरियाली पर
मंगल-कुमकुम सारा।"

प्रसाद के लिए भारतवर्ष केवल एक भूखण्ड नहीं है। यह उनके लिए एक विराट् दिव्यबोध है, जो ईश्वर के वरदानसदृश है। भारतवासियों को उन्होंने अपनी प्रत्येक रचना में जागृति का सन्देश दिया है। उनका उद्बोधन-गीत आज भी 'चरैवेति-चरैवेति' का स्मरण कराता है–

"हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती,
अमर्त्य वीर पुत्र हो-
दृढ़प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।"

रचनाकार समय और देश की परिस्थितियों से तटस्थ नहीं रह पाता। प्रसाद की दृष्टि सामयिक भी थी और शाश्वत भी। उन्होंने मशीनी युग की सभ्यता पर भी दृष्टिपात् किया और तथाकथित सभ्य मानव को इसके दुष्परिणामों से कविता के माध्यम से सचेत भी किया। नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार हो रहे हैं। अणुशक्ति पर अधिक बल दिया जा रहा है। परमाणु-हथियारों की होड़ चल रही है। सर्वत्र विनाश की, युद्ध की बात सोची जा रही है। प्रसाद ने अपनी रचनाओं के माध्यम से निर्माण की बात की है। किसी व्यक्ति या जाति या देश को नष्ट कर जीतने की बात नहीं की। मानव, चाहे वह कहीं का हो, उसमें मानवता के सभी मूल्यों का समावेश हो और वह मानवता के हित के लिए ही चिन्तन-मनन और कार्य करे। 'कामायनी' में उन्होंने मानवता को सशक्त और समृद्ध बनाने के लिए सन्देश दिया। आज मनुष्य के पास जितने साधन हैं, क्षणिक सुख प्राप्ति के साधन हैं। प्रसाद ने चिरन्तन आनन्द की बात की है। प्रसाद ने आधुनिक बुद्धिजीवी 'मानव' की समस्याओं पर गहनता से विचार किया तथा उसके आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व के निर्माण के लिए एक ओर तो संसार की सत्यता का प्रतिपादन किया, जिससे कि कोरे अध्यात्म का सहारा लेकर वह संसार से विमुख न हो जाये। इसीलिए उन्होंने कर्म का सन्देश दिया। संसार का प्रत्येक पदार्थ कर्मरत है। मानव जब सत्कर्म करता है और सेवा में रत होता है, तो वही उसके लिए कर्त्तव्य बन जाता है। उन्होंने कहा–

"सबकी सेवा न परायी
वह अपनी सुख-संसृति है।"
(कामायनी)

उन्होंने ईश्वर तथा मानव में अभेद की स्थिति बतायी, ताकि मानव स्वयं पर

गर्व कर सके और अपने व्यक्तित्व द्वारा श्रेयस्कर कार्य कर सके। इस प्रकार वह अभेदवादी विचारों और श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा आनन्द को प्राप्त कर सके।

दर्शनदृष्टि और अध्यात्मवादिता मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं, तभी मनुष्य विषमता की पीड़ा से बच सकता है और जीवन का सहज और वास्तविक मूल्य–आनन्द प्राप्त कर सकता है। प्रसाद ने प्रसिद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों, शैवागमों की कतिपय प्रमुख प्रवृत्तियों को आत्मसात् कर आधुनिक मानव के लिए व्यावहारिक और उपयोगी समझकर कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जिससे कि आज का बुद्धिवादी मनुष्य संसार की ओर स्वयं की वास्तविकता समझ ले और क्षणिक सुखों के लिए, स्वार्थ के लिए संसार का और स्वयं का विनाश न कर सके।

जो आनन्द मानव को स्वतः प्राप्त है, उसे विस्मृत कर अन्य सुलभ और क्षणिक पदार्थों की तलाश में भटकना उसके लिए हितकर नहीं है, उसी आनन्द में स्थित होना और सृष्टि के रहस्य को, अपनी वास्तविकता को, अपने स्वरूप को समझ लेना, उसके लिए नितान्त आवश्यक है। प्रसाद ने इसीलिए जीव और ब्रह्म, ब्रह्म और जगत्, जीव और जगत् की अभेदता का समर्थन किया है। सम्पूर्ण संसार में 'महाचिति सजग हुई सी व्यक्त' है। वही चेतन में है। वही जड़ में है। अतः जड़-चेतन का भेद भी उचित नहीं। प्रसाद की दृष्टि कितनी विशाल है कि वे समस्त जड़-चेतन में एक ही सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करते हैं, मानव-मानव में अन्तर करना तो निर्मूल ही सिद्ध हो जाता है। भारतीय अध्यात्म में यही एकत्व, यही समत्व है और यही समरसता है, जिसकी प्रसाद जी ने प्रस्तुति दी है। 'कामायनी' उनके समस्त चिन्तन की निचोड़ है।

यह अनेक रूपात्मक जगत् महाचिति का ही विराट् शरीर है। जीव भी चेतन पुरुष है। यह चेतन पुरुष जब आत्मसाक्षात्कार कर लेता है, तो अपनी शक्तिरूपिणी लहरों से आनन्द-सागर में निरन्तर तरंगायित रहता है। आनन्दप्राप्ति की इतनी सरल अवधारणा संसार के किसी काव्यकार ने ने प्रस्तुत नहीं की है। प्रसाद के चिन्तन का यह नवीन प्रयोग है।

प्रसाद ने मस्तिष्क अथवा तर्कज्ञान का, हृदय अथवा श्रद्धाभाव का जो समन्वय चित्रित किया है, वह वर्तमान विश्वमानवता के लिए वरदान है। कोरी बुद्धिवादिता मानव के लिए हानिकारक है और कोरी भावुकता भी उसके लिए हानिकारक है। दोनों का सन्तुलित समन्वय ही मानव-कल्याण में सहायक होगा। चेतना या मन और भौतिक जड़ पदार्थ अर्थात् 'माइण्ड' और 'मैटर' के समन्वय द्वारा उन्होंने वैज्ञानिकों को भी सचेष्ट कर दिया है कि दोनों का समन्वय और सन्तुलन मानवता के लिए अपरिहार्य है। इस प्रकार प्राद का चिन्तन उनकी परम्परा से तथ्यों की ग्रहणशीलता, उनका विज्ञानसम्मत व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रशंसनीय है। वस्तुतः उनका काव्य मानवता के लिए एक आचारसंहिता है, जो अत्यन्त सरल, सुलझी हुई और व्यावहारिक है।

प्रसाद के काव्य में सामंजस्य एवं समन्वय की प्रवृत्ति मिलती है, विशेष रूप से 'कामायनी' में उनका चिन्तन अत्यन्त पुष्ट एवं परिमार्जित रूप में मिलता है। विपरीत शक्तियों को केन्द्रित कर, उनमें सम्मिलन स्थापित करना प्रसाद का प्रयोजन रहा है। सर्वत्र जड़-चेतन का द्वंद्व और स्त्री-पुरुष का द्वंद्व परिलक्षित होता है। प्रसाद ने द्वंद्व के मूलाधार को ही समाप्त कर दिया। "यही जड़ का चेतन आनन्द" कहकर तथा मनु को पहले 'एक पुरुष' बताकर अन्त में आनन्दमय दिखाकर उन्होंने इस द्वयता को ही समाप्त कर दिया। मनु को समझाया गया है कि द्वयता ही तो विस्मृति है, तथा

"तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में,
कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता ही सम्बन्ध बनी
अधिकार और अधिकारी की।"

(कामायनी)

नारी-पुरुष परस्पर सहयोगी और पूरक हैं। 'कामायनी' में इसके अतिरिक्त राजा-प्रजा, अधिकार-अधिकारी, व्यक्ति-समाज, शासक-शासित आदि के भी द्वंद्वों का एकीकरण किया गया है। मन-बुद्धि-भाव की भाँति ही जीवन में दुःख-सुख, रात्रि-दिन, प्रकाश-अन्धकार की द्वयता बनी ही रहती है। जीवन में दोनों आवश्यक हैं। आनन्द की स्थिति प्राप्त होने पर आनन्द सागर में लीन मानव को ये सभी द्वंद्व लहरों की भाँति प्रतीत होने लगते हैं और वह इनसे प्रभावित नहीं होता है।

प्रसाद के दर्शन, धर्म एवं अध्यात्म के तत्व-चिन्तन को आत्मसात् कर अपने काव्य में रूपायित कर सरल और सुगम बना दिया। भारतीय जगजीवन के समीप लाकर उन्होंने दर्शन की जटिलता को बोधगम्य बना दिया। उनकी कल्पना भी संकल्प पर आधृत रही। उन्होंने एक 'विचार' देना चाहा, उसे समग्रता से पूरे रूपक के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया।

प्रसाद के काव्य में वैश्विक एकता, समष्टिगत समरसता विद्यमान है। प्रसाद को सम्पूर्ण सृष्टि अपने ही साथ जुड़ी जान पड़ती है–

"हम अन्य न और कुटुम्बी,
हम केवल एक हमीं हैं।
तुम सब मेरे अवयव हो,
जिसमें कुछ नहीं कमी है।"

(कामायनी)

'कामायनी' में विश्व-नीड़ की कल्पना साकार हो उठी है। अतः यह लोक-मंगल का काव्य है–

"सब भेद-भाव भुलवाकर,
दुःख-सुख को दृश्य बनाता।
मानव, कह रे, यह मैं हूँ,
यह विश्व नीड़ बन जाता।"
(कामायनी)

प्रसाद की गहन अनुभूति ने वेदना या पीड़ा को भी एक चेतना के रूप में स्वीकार किया है। वेदना की ज्वाला कभी शमित नहीं होती।

"मणिद्वीप विश्व मन्दिर की
पहने किरणों की माला,
तुम एक अकेली तब भी,
जलती हो मेरी ज्वाला।" (आँसू)

'आँसू' में भी इसी वेदना और उससे उत्पन्न ज्वाला का चित्रण हुआ है।

"शीतल ज्वाला जलती है,
ईंधन होता दृग-जल का।
यह व्यर्थ श्वास चलचल कर,
करती है काम अनिल का।" (आँसू)

परन्तु अवसान मानों सुख का अपार वैभव लुटा जाता है–

"शशिमुख पर घूँघट डाले,
अंचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आये।" (आँसू)

प्रसाद ने 'कामायनी' में भी स्वीकार किया–

"दुःख की रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात।"
(कामायनी)

प्रसाद जी की दृष्टि आशावादी एवं आस्थावादी है। प्रेम, आशा, विश्वास, आस्था, करुणा आदि ऐसे जीवन मूल्य हैं, जिन्हें प्रसाद ने कहीं विस्मृत नहीं किया और मानव के उत्तरोत्तर विकास के लिए इनका अपनी काव्यकृतियों में स्थान-स्थान पर मूर्त्तीकरण किया है।

जैसा उनका उदार व्यक्तित्व था, वैसा ही उनका उदार और व्यापक जीवनबोध था। महादेवी ने उन्हें 'एक ऊँचा सीधा देवदारू' की संज्ञा दी थी। डॉ. पूरन चन्द्र टण्डन ने उन्हें दिव्यदृष्टा समीक्षक तथा माँ सरस्वती का लाड़ला पुत्र कहा है। उनका कथन दृष्टव्य है, "भाव, विचार तथा दर्शन की चरम परिणति के इस 'ब्रह्म-शब्द-स्रष्टा' ने जीवानुभावों के समस्त सुख-दुःख के प्रसंगों से प्रेरित होकर भविष्यत् के मानवीय अस्तित्व के लिए अपने अमर सन्देश को चिरन्तन एवं शाश्वत मूल्यवत्ता प्रदान की। भारत के सांस्कृतिक सत्यों, नैतिक मूल्यों के ठोस निष्कर्षों और पौराणिक-ऐतिहासिक संकल्पों को मनोवैज्ञानिक अन्वेषण द्वारा अनुभूति और चिन्तन का विषय बनाकर अमूल्य मन्तव्य, चिरजीवी मानदण्ड तथा अखण्ड प्रतिज्ञाओं के बृहत्तर मूल्यों से भरपूर अक्षय भण्डार देने वाली इस अपराजेय संकल्पशक्ति से भारतीय साहित्य का इतिहास कभी उऋण नहीं हो सकता।"[8] प्रसाद एक सच्चे कलापारखी और तत्वचिन्तक थे, इसलिए उनके विविध सृजन-साहित्य में वह चिन्तन पूर्ण परिपाक के साथ विद्यमान है। श्रद्धा, मधूलिका, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि के माध्यमों से उनका चिन्तन सदैव मुखरित हुआ है।

जहाँ तक प्रसाद के काव्य के कलापक्ष की बात है, तो कहा जा सकता है कि उनकी भाषा, उनकी मूल्यपरक रचनाधर्मिता के सर्वथा अनुरूप रही है। वह उनके व्यक्तित्व की ही तरह सुसंस्कारित तथा भारतीयता के भावों से मुखरित और समृद्ध है। चित्रात्मकता उनकी भाषा की विशेषता है। लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक पद्धति उन्हें प्रिय रही है। प्रसाद के शिल्प में अमूर्त्त तत्व भी मूर्तित हो जाते हैं। कल्पना भी सत्य बन जाती है। व्यक्ति, पदार्थ या दृश्य जीवन्त हो जाते हैं। उनकी उर्वर कल्पना ने उनके काव्य को सौन्दर्य तथा लावण्य प्रदान किया है। प्रसाद के प्रकृतिपरक बिम्ब एवं प्रतीक, मानवीय बिम्ब एवं प्रतीक जीवन-मूल्यों की पीठिका निर्मित करते हैं। वे रससिद्ध रचनाकार थे। भारत की सांस्कृतिक विरासत के प्रति प्रसाद को आस्था थी, और उसे वे काव्य के माध्यम से वर्तमान के मनुष्य-समाज तक पहुँचाना चाहते थे और उसके भविष्य को आनन्दमय, मंगलमय बनाना चाहते थे। अतः उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता को एक लक्ष्य की ओर, एक मूल्यधर्म की दिशा की ओर प्रेरित किया तथा छन्द, रस, गुण, अलंकार आदि ने उस लक्ष्य को मूर्तित करने के लिए उनके काव्य-संसार को सुसज्जित कर दिया। इस प्रकार भाव, भाषा, शैली एवं सम्पूर्ण प्रस्तुति की दृष्टि से प्रसाद का काव्य मूल्यकेन्द्रित रहा है और मानवीयबोध से सम्पृक्त रहा है।

सन्दर्भ–

1. छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानन्दन पन्त, प1. 34
2. छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ. 44
3. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, सं. नन्द दुलारे बाजपेयी, पृ. 143
4. यामा (अपनी बात), महादेवी वर्मा, पृ. 56
5. छायावाद में आत्माभिव्यक्ति, डॉ. शशि मुदीराज, पृ. 80
6. प्रसाद का साहित्य : प्रेमतात्विक दृष्टि, प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ. 75
7. प्रसाद के नाटकों में इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन और कला, द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ. 236
8. हिन्दी अनुशीलन (संयुक्तांक 1991), लेख, डॉ. पूरन चन्द्र टण्डन, पृ. 116

जी-91-सी, संजय गाँधी पुरम्,
लखनऊ-226016 (उत्तर प्रदेश)

राग दरबारी : अन्तर्वस्तु, भाषा और रूपबंध की संश्लिष्टता

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ लेखक के रूप में वर्षों से सक्रिय एवं इनकी रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित होती रही हैं।

अनेक आलोचकों के विचार में रचना में अन्तर्वस्तु की सार्थकता की परख भाषा के स्तर पर विशेष रूप से संभव है क्योंकि 'रचना को जाँचने का यह पहला प्रामाणिक साधन है। रचना का मर्म अगर कोई वायवीय चीज नहीं है तो भाषा के स्तर पर उसे पहचान सकना कठिन हो, असंभव नहीं है,[1] (डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव)। अर्थग्रहण करने से लेकर सहज संप्रेषण तक में भाषा की भूमिका असंदिग्ध है। यह आकस्मिक नहीं कि डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने भाषा को 'अभिव्यक्ति तथा पूर्ण और सामूहिक संप्रेषण का मानवीय कर्म' कहा है। लेकिन उन्होंने उचित ही सावधान किया है, 'अगर हममें सामाजिक जवाबदेही का अभाव है तो भाषा में लतीफेबाजी-फिकरेबाजी तथा शैली-शिल्प की तरकीबों में डूब सकते हैं। अगर हम सामाजिक अन्याय की निंदा नहीं कर सकते तो भी सामाजिक जिम्मेदारी के अभाव में हम भाषा द्वारा शुद्ध आत्माभिव्यक्ति तथा अर्थ-भ्रांतियों को कार्यशील बना सकते हैं।"[2] 'राग दरबारी' को पढ़ते हुए यह सावधानी विशेष रूप से अपेक्षित है, क्योंकि प्रायः इसकी सराहना इसकी अन्तर्वस्तु या विजन के चलते कम, टिप्पणी सरीखी व्यंग्यात्क वैविध्य या पूर्ण भाषा और विशिष्ट काल के लिए अधिक हुई है।

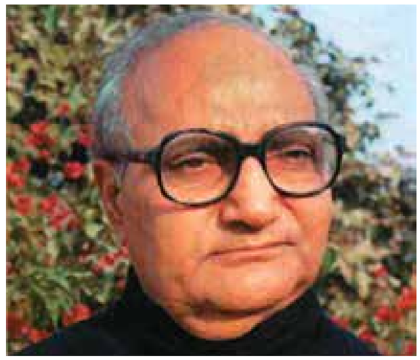

'राग दरबारी' के संदर्भ में यह सवाल उठाया गया है कि क्या तीखी व्यंग्यात्मक शैली किसी उपन्यास की गुणवत्ता की कसौटी हो सकती है? 'व्यंग्यात्मक लेखन तभी किसी क्षेत्र और कालविशेष की सीमाओं से ऊपर उठकर स्थायी प्रेरणा का स्रोत बन जाता है, जब उसमें जिन्दगी को सार्थकता प्रदान करने वाले मूल्यों के संकेत हो सकते हैं। श्रीलाल शुक्ल की इस रचना में केवल विकृति का पर्दाफाश है'[3] (डॉ. तुलसी नारायण सिंह)। यह सही है कि इस उपन्यास में विकृतियाँ, कुरूपताएँ और विडम्बनाएँ केन्द्रस्थ हैं। लेकिन यह उपन्यास देशव्यापी मोहभंग का सर्जनात्मक दस्तावेज है और इसमें अवमूल्यों का वर्चस् प्रकारान्तर से मानवीय मूल्यों का समर्थन भी है। इस उपन्यास का शिवपालगंज अवध क्षेत्र का पिछड़ा हुआ गाँव मात्र नहीं है। उपन्यासकार का यह संकेत मूल्यवान् है कि शिवपालगंज सारे मुल्क में फैला हुआ है। जनतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत योजनाओं, संस्थाओं, नेताओं, अधिकारियों, शिक्षकों, सांस्कृतिक पर्वों आदि के लगातार अवमूल्यन पर उपन्यासकार की चिंता इसमें प्रत्यक्ष है। इसमें 'दाँवपेंच और पैंतरेबाजी की अखिल भारतीय प्रतिभा' की ओर अंगुलि-निर्देश साभिप्राय है। 'महात्मा गाँधी खत्म हो चुके हैं' यह सूचना सामान्य नहीं है और स्वप्न में प्रजातंत्र का वैद्य जी के सामने गिड़गिड़ाना अकारथ नहीं है। लंगड़ बिना रिश्वत दिए सरकारी दफ्तर से 'नकल' नहीं ले पाता है। समूचा तंत्र भ्रष्टाचार में आकंठ आमग्न है। 'पलायन-संगीत' से लग सकता है कि रचनाकार का दृष्टिकोण पलायनवादी है, लेकिन इस अवसर का उपयोग उपन्यासकार ने वर्तमान से कतरा कर अध्यात्म और अतीत में सिर छुपाने वालों और सुविधाजीवी बुद्धिजीवियों की खबर लेने में भी किया है। यदि अपने समय और समाज के प्रामाणिक चित्रण का कुछ मूल्य है तो इस निकष पर राग दरबारी असफल नहीं है। चाहे 'सामाजिक अन्याय की निंदा' की दृष्टि से देखें या जिन्दगी की सार्थकता से जुड़े मूल्यों के हनने से जन्मे क्षोभ को दृष्टिपथ में रखें 'राग दरबारी' बहुत हद तक आश्वस्त करता है। इसका व्यवस्था विरोधी तेवर दबा-ढँका नहीं है।

'राग दरबारी' में व्यवस्था-विरोध की अनेक दिशाएँ हैं और उन्हें तीक्ष्ण रचाव देने के लिए भाषा के विविध रूप आजमाए गए हैं। अनेक चरित्रों की भाषा उनकी चारित्रिक विशेषताओं को खोलने वाली है। उपन्यास में

एक प्रिंसिपल साहब हैं, जो कुंठित, समझौतापरस्त और चाटुकार हैं। खड़ी बोली बोलते-बोलते गुस्से की चरम दशा में अवधी की चाशनी में लटपटा जाते हैं। वे मालवीय से कहते हैं, "तुम भी खन्ना की तरह बहस करने लगे हो। मैं सातवें और नवें का फर्क समझता हूँ। हमा अब प्रिंसीपली करै न सिखाव भैया। जौनु हुकुम है तौनु चुप्पे कैरी आउट करौ।" प्रिंसिपल खुद वैद्य जी के हुकुम 'चुप्पैकैरी आउट' करते हैं। वैद्य जी आम लोगों से दूरी और कुछ ऊँचाई पर स्थित हैं, इसलिए उनकी भाषा परिष्कृत है, आभिजात्य से पूर्ण। उनकी भाषा में 'कुव्यवस्था', 'जिज्ञासा', 'कष्ट', 'व्यथा', 'करबद्ध', 'दायित्व', 'हितैषी', 'उत्तराधिकार' आदि तत्सम शब्दों की उपस्थिति ध्यान आकर्षित करती है। जब वे रूप्पन को फटकार रहे होते हैं, तब नैरेटर की टिप्पणी है, "इस प्रसंग में साबित करते रहे कि गालियों के मामले में संस्कृत भी कोई कमजोर भाषा नहीं है।' छोटे पहलवान की भाषा से पहला परिचय ही शहरी रंगनाथ को उसका मुरीद बना देता है। मीटिंग की बात चलने पर छोटे पहलवान का कथन है, 'अण्डा नहीं देंगे तो क्या बाल उखाड़ेंगे? सब मीटिंग में बैठकर साँडों की तरह फाँय-फाँय करते हैं, काम-धाम के वक्त खूँटा पकड़ कर बैठ जाते हैं। 'भाषा' के इस भदेस और आक्रामक रूप पर रंगनाथ का सोचना है, 'लोग यों ही कहा करते हैं कि हमारी भाषा में सशक्त शब्दों की कमी है। यदि हिन्दी के विद्वानों को छोटे पहलवान की तरह अखाड़े में चार महीने रखा जाए तो व्यक्तिगत असुविधा के बावजूद वे वहाँ की मिट्टी के जर्रे-जर्रे से इस तरह के शब्दकोश निकालने लगेंगे।' छोटे पहलवान के समृद्ध शब्दकोश में चुर्रेट, फुट्टफैरी, लासेबाजी, फण्टूश, कंटाप, चाँय-चाँय, टाँय-टाँय, फाँय-फाँय, आदि अनेक नए एवं विशिष्ट अर्थ-व्यंजक शब्दों का वैभव बिखरा हुआ है। छोटे

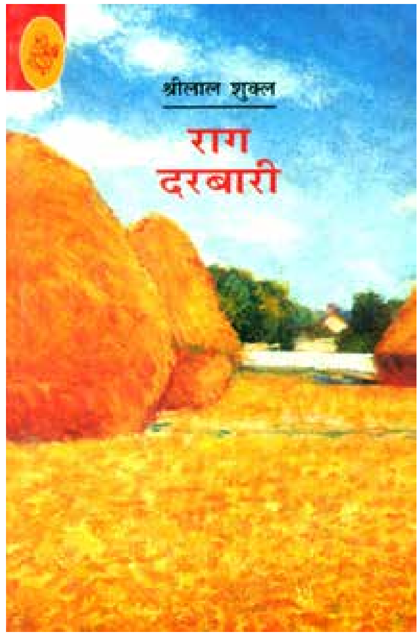

पहलवान द्वारा प्रयुक्त क्रियापदों में भी नवीनता है। नएपन के बावजूद जिस संदर्भ में वे सामने आते हैं, उससे पाठक वंचित अर्थ के आस-पास पहुँच ही जाता है। 'कहाँ लपक गए', 'गूदा निकल जाता है', 'तिड़ी-बिड़ी हो गयी', 'पास करेंगे घंटा', 'कलेजे में कल्लाएगी', 'टिलटिला रहे हैं' आदि क्रयापदों के साथ बद्री पहलवान की 'टिलौं-टिलौं लगाए हो', क्लर्क महाशय की 'चुनमुनाता है' जैसी क्रियाओं का विशाल भंडार इस उपन्यास में है और यह गंजहों की रुग्ण मानसिकता के विरेचन में समर्थ है।

क्रियापदों के बहुविध रूप उपन्यासकार की अपनी भाषा में ध्यान आकर्षित करते हैं। 'दुख सबको माँजता है' की व्यंग्यात्मक व्याख्या में 'फींचता', 'निचोड़ता' जैसी क्रियाओं का उपयोग देखने योग्य है, 'सच तो यह है कि दुख मनुष्य को पहले फींचता है, फिर फींच कर निचोड़ता है, फिर निचोड़कर' उसके चेहरे को घुग्घू जैसा बनाकर उस पर दो बार काली-सफेद लकीरें देता है।' शोध के लिए लाई गई पुस्तकें रंगनाथ के इर्दगिर्द किस हालत में अस्त-व्यस्त थीं, उसे दर्शाने के लिए क्रियाओं का कौतुकपूर्ण उपयोग उपन्यासकार की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति और मुहावरेदार भाषा लिखने की क्षमता गवाह है, 'विंटर नित्ज बिल्कुल नाक के नीचे थे। कीथ पीछे की ओर पायजामे से सटे थे। स्मिथ पैताने की ओर ढकेल दिए गए थे और वहीं उल्टी-पुल्टी हालत में राइस डेविड की झलक दिखायी दे रही थी। परसी ब्राउन को तकिए ने ढक लिया था। ऐसी भीड़-भाड़ में काशी प्रसाद जायसवाल बिस्तर की एक सिकुड़न के बीच औंधे मुँह पड़े थे। भण्डारकर चादर के नीचे से कुछ सहमे हुए झाँक रहे थे।' कहीं का ईंट और कहीं का रोड़ा जुटाकर शोध करने की विसंगति आज भी विश्वविद्यालयों की एक कटु वास्तविकता है।

'राग दरबारी' के शिवपालगंज की अपनी गँजही बोली भी है। गँजहा को परिभाषित करते हुए कहा गया है, "....वह गँजहा ही कैसा, जो कहीं पहुँचते ही वहाँ के रहने वालों पर अपने बाँगड़ूपन की धाक न बैठा दे।' 'चिमरिखी दास', 'डंपलाटी', 'खड्डूस', 'पंचहत्या', 'कुकरहाव', 'बंदरहाव', 'पालक-बालक' जैसे बहुत से शब्द इस धाक बैठाने में काम आते हैं। जुआरियों की भाषा में अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी में ढालने की समस्या का 'सही जवाब' मिलता है। वे पेयर को 'जोड़' फ्लश को 'लँगड़ी', रनिंग फ्लश को पक्की और 'ट्रेल' को 'टिर्रेल' कहते हैं। पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी नामकरण के सम्बन्ध में रंगनाथ का सोचना सही है, '...क्यों न इन चार-पाँच गँजहों की एक समिति बनाकर दिल्ली में बिठा दिया जाय। वे बड़े-बड़े पारिभाषिक शब्दों के लिए सिर्फ सामाजिक स्वीकृति के आधार पर, अपनी मातृभाषा के कुछ शब्द निकाल कर पेश कर देंगे।' गँजहे पढ़े-लिखे नहीं हैं लेकिन मनोभावों के अनुरूप अभिव्यक्ति के लिए वांछित भाषा उनके पास भरपूर है। जब सनीचर इक्के वालों को बताता है कि उसने प्रधानी का पर्चा दाखिल किया है जो

उसकी तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है–'देह पर नहीं लत्ता, पान खाँय अलबत्ता।' गाँव में रहते-रहते 'टिचन्न' प्रिंसिपल साहब भी गँजहों की शब्दावली और कहावतों को फर्राटे से उगलने लगे हैं। खन्ना मास्टर के चरित्र-चित्रण में उन्होंने अवधी की कहावत का बहुत मारक उपयोग किया है, 'नंगा के चूतर माँ बिरवा जामा तो नाचै लागा। कहिसि के चलौ छाँह होई'। गँजहों की कूटभाषा 'सर्फरी' भी है, जिसे जोगनाथ और उसके साथी धाराप्रवाह बोलते हैं–

"हाँ भर्फाई, अर्फब्र चर्फलो।'

'इस सर्फाले के मुँह में कर्फपड़ा खोंर्फोस दें कि निर्फिकाल दें।'

रेणु की ग्रामांचलिक कृतियों के विषय में रघुवीर सहाय का मानना था कि वे गाँव की ओर विश्राम और मनोरंजन के लिए नहीं जाते, लोकतंत्र की जड़ों की तलाश में जाते हैं। श्रीलाल शुक्ल भी शायद इसी इरादे से शिवपालगंज की कीचड़ में धँसे हों, लेकिन उनके यथार्थ-चित्रण से पता चलता है कि लोकतंत्र की तमाम जड़ें यदि उखड़ी नहीं हैं तो कमजोर तो पड़ी ही हैं। इस त्रासदी का बयान नागार्जुन, रेणु, रामदरश मिश्र, शिवप्रसाद सिंह और विवेकी राय ने समय-समय पर किया है, लेकिन जैसा कि डॉ. गोपाल राय ने माना है, श्री शुक्ल ने ग्रामांचल को 'एक्सरे' के रूप में देखा है और बहुत निर्मम होकर यथार्थ का चित्रण किया है।[4] लोकतंत्र के प्रहसन में सक्रिय पात्र बने गँजहों का अगर अमानवीयकरण हो रहा है तो यह आकस्मिक नहीं है। पूरा देश अवमूल्यन और अमानवीयकरण की गिरफ्त में है। कई पाठक-आलोचक इसे संयोग मात्र नहीं मानते हैं कि उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक गँजहों और पशुओं में विलक्षण साम्य है।[5] सनीचर भेड़िये और सूअर की आवाजें प्रायः निकालते हैं। प्रिंसिपल साहब, बरछी से बिंधे सूअर की तरह चिचियाकर वैद्य जी की जय बोलते हैं और गाँव के नौजवानों का ठहाका मुर्गों-घोड़ों-गीदड़ों के गले से निकला प्रतीत होता है। कुसहर प्रसाद के घर के 'कुकुरहाव' और 'बंदरहाव' प्रसिद्ध हैं ही। उपन्यास के अंत में बंदर-बंदरिया हैं और डुगडुगी बजाता मदारी है। संकेत स्पष्ट है कि अब वैद्य जी की डुगडुगी पर गाँव के हर बंदर-बंदरिया को नाचना ही होगा। पशु जगत् से संबंधित संज्ञाएँ, विशेषण, ध्वनियाँ, क्रियाएँ 'राग दरबारी' में साभिप्राय हैं और अर्थ-विस्तार करते हुए जताती हैं कि आज भी हमारा देश कुछ मदारियों की डुगडुगी पर नाच रहा है। भाषा का इतना सक्षम और वैविध्यपूर्ण रचाव विस्तृत अनुभव, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति और गंभीर श्रम की अपेक्षा रखता है।

यह स्वाभाविक है कि 'राग दरबारी' में वस्तुगत भयावहता को भाषा के सतर्क और बेधक मुहावरे में अभिव्यक्ति मिली है। मोहभंग, अवमूलयन, अमानवीयकरण की त्रासद, विडंबनापूर्ण और विद्रूपमयी स्थितियों और मनः-स्थितियों को उकेरने में कहावतों, दृष्टांतों और प्रतीकों से समृद्ध भाषा अभिप्राय के विभिन्न स्तरों को खोलने में सफल है। अर्थ-बोध के साथ बिम्ब-ग्रहण कराने वाले कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

क. 'तुम्हारा गियर तो बिल्कुल अपने देश की हुकूमत जैसा है।'

ख. 'नैतिकता, समझ लो कि यही चौकी है। एक कोने में पड़ी है। सभा-सोसाइटी के वक्त इस पर चादर बिछा दी जाती है।'

ग. 'शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का नारा बुलंद करने वाले कमरे को देखकर लोगों के मन में स्थानीय संस्कृति के लिए श्रद्धा पैदा हो सकती थी।"

घ. 'वे झपट कर इतिहास के कमरे में घुसे और यही कहते हुए पुराण के रोशनदान से बाहर कूद गए।'

ङ. 'झिलमिलाते हवाई अड्डों और लकलकाते होटलों की मार्फत जैसा 'सिम्बालिक मार्डनाइजेशन' इस देश में हो रहा है।'

च. 'अभी महिलाओं के शीलभंग को राजनीतिक युद्ध में हैण्डग्रिनेड की मान्यता नहीं मिली थी।'

इन अवतरणों में आए 'गियर', 'कुतिया', 'चौकी', 'कमरे', 'रोशनदान', 'हैण्डग्रिनेड' आदि की सहायता से बनी हुई भाषा यदि बहुत ठेठ, निस्संग और आक्रामक लगती है तो यह उसमें केन्द्रस्थ वस्तुगत भयावहता की स्वाभाविक परिणति है।

जहाँ अनेक पाठक 'राग दरबारी' को कभी गुदगुदाने वाली, कभी हथौड़ा-सा मार देने वाली, कभी चिकोटी काटने वाली, कभी फींचने और निचोड़ने वाली कथन-शैली पर लहालोट है, वहीं कई वरिष्ठ समालोचकों की आपत्ति है कि उपन्यास और व्यंग्य–दो परस्पर विरोधी अनुशासनों को एक दूसरे से जोड़ने का प्रयास इसमें असफल सिद्ध हुआ है। डॉ. गोपाल राय ने उपन्यास और व्यंग्य की सह-स्थिति को केर-बेर जैसी मानते हुए, उपन्यास के रूप में 'राग दरबारी' को असफल कृति माना है।[6] यह सही है कि इसमें व्यंग्य का प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक है, कुछ स्फीति भी है और कतिपय प्रसंगों में शालीनता की कमी भी है। यह शायद इसलिए हुआ कि गांव के बहाने पूरे देश की गिरावट के लिए जिम्मेदार नंगों, लुच्चों, स्वार्थियों के वास्तविक चरित्र को

सामने लाना श्रीलाल शुक्ल का अभीष्ट है। उपन्यास का प्रारंभ वाहन-चेकिंग की औपचारिकता से शुरू होकर थाना, सहकारिता, गाँव की प्रधानी, शिक्षा संस्था से होता हुआ गाँव की चोरी, लफंगई, जुआ, छिनैती, मेला आदि अनेक क्षेत्रों की कुरूपताओं से टकराता हुआ वैद्य जी के रौद्र तानाशाही स्वरूप को दर्शाता है। यह सब इतना भयावह और अनैतिक है कि रंगनाथ जैसे व्यक्ति के लिए पलायन ही एकमात्र मार्ग बचता है। शायद ही कोई कुरूपता, विसंगति, विडम्बना उपन्यासकार की सतर्क निगाहों से बची रह गयी हो। सब कुछ समेट लेने के आग्रहवश उपन्यास में बिखराव स्वाभाविक है। उपन्यास में निर्दोष कसावट के हामी समीक्षक शिकायत कर सकते हैं कि इसके कथानक में सुसंबद्धता नहीं है, इसमें घटनाएँ केन्द्र से परिधि की ओर अग्रसर नहीं होतीं, बल्कि हर घटना स्वयं एक वृत्त बन गयी है। यह भी कि चयन और त्याग की शिथिलता ने इसकी स्फीति में मदद की है। इसका बिखराव भी सुन्दर है और यह पाठक को इसे आद्यंत पढ़ने के लिए बाध्य ही करता है, बाधक नहीं है।

जिस तीखी व्यंग्य-प्रहार शैली को एक अति के रूप में देखा गया है, उपन्यास की सेहत के लिए गुणकारी नहीं माना गया है, वह सामान्य पाठक के लिए कौतूहल और आकर्षण का विषय है। गंभीर पाठक भी इसकी शक्ति और सार्थकता को समझ लेता है, जब वह पाता है कि यह कथन-शैली हल्की-फुल्की टिप्पणियों तक सीमित नहीं है। व्यवस्था के अन्तर्विरोध इसके केन्द्रीय लक्ष्य हैं, इसलिए बार-बार लोकतंत्र या प्रजातंत्र का निशाने पर आ जाना गौरतलब है। इस उपन्यास में प्रजातंत्र की एक थ्योरी गयादीनवाद के नाम प्रचारित हुई है, जिसका अर्थ यह था कि चुनाव लड़ने वाले तो प्रायः घटिया आदमी होते हैं, इसलिए एक नये घिअया आदमी द्वारा पुराने घटिया आदमी को, जिसके घिअयापन को लोगों ने पहले से ही समझबूझ लिया है, उखाड़ना न चाहिए।' लोकतंत्र कुछ महापुरुषों और उनके 'पालक बालकों' के सहारे घिसट रहा है। पालक बालकों द्वारा महापुरुषों की इज्जत सर्वत्र छा जाती है, 'वह लोकसभा और विधानसभा की बहसों को सरोबार करती है, अखबार और रेडियो उनके छींटों से गँधाने लगते हैं, पूरा लोकतंत्र उसमें डूबने उतराने लगता है...।' जब कुछ सिरफिरे इन पालक-बालकों के भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाते हैं तो महापुरुषों का जवाब होता है कि आओ इस बात की जाँच करें कि भ्रष्टाचार होता क्या है? 'राग दरबारी' के एक स्वप्न दृश्य में लोकतंत्र एक ऐसे ही महापुरुष–वैद्य जी के सामने पंजों के बल बैठा गिड़गिड़ा रहा है। चुनाव, लोकतंत्र में जनता के महत्व और भूमिका का द्योतक है, लेकिन इस अधिकार के प्रति जनसाधारण का रवैया एकदम खुला हुआ है, 'हमें वोट का कौन अचार डालना है। जितने कहो, उतने वोट दे दें।' वे समझ गए हैं कि 'गलत आदमी को वोट देने से प्रजातंत्र को कोई खतरा नहीं, तुम वोट दे सकते हो, प्रजातंत्र के लिए इतना ही काफी है।' इन सभी अवतरणों की व्यंजनाएं गंभीर हैं और संकेत करती हैं कि कुछ दिनों में जनतांत्रिक व्यवस्था से जनता का मोह-भंग हो गया था। चाहे न्याय-व्यवस्था हो या शिक्षा-पद्धति सर्वत्र गंदगी, कीचड़ और सड़ाँध है और इसका शिकार हमेशा आम आदमी होता है। लेकिन सवाल उठता है कि कथित 'कौड़िल्ला छाप, ओछी नस्ल का आदमी विरोध और प्रतिवाद क्यों नहीं करता?' पूरे उपन्यास में मेहनतकशों, शोषितों-वंचितों के क्षोभ या आक्रोश के संदर्भ न के बराबर हैं।

संरचना की दृष्टि से 'राग दरबारी' को नाटकीय उपन्यास की श्रेणी में रखा जा सकता है। नाटकीय उपन्यास में कथानक और चरित्र की दूरी लगभग समाप्त हो जाती है। चरित्र आते हैं, घटनाओं को जन्म देते हैं और उनके क्रियाकलाप, कथानक और सम्पूर्ण कथा-विन्यास को परिचालित करते हैं। 'राग दरबारी' का आरम्भ रंगनाथ के गाँव आने के क्रम में सड़क पर ट्रक के वर्णन से होता है। ट्रक ड्राइवर, अरदली साहब, दरोगा जी, रूप्पन बाबू, प्रिंसिपल, सनीचर, लंगड़ बद्री पहलवान, रामाधीन आदि अनेक चरित्र अपनी-अपनी विलक्षण विशेषताओं और भंगिमाओं के साथ उपस्थित होते रहते हैं और कथा-प्रवाह आगे बढ़ता चलता है। सभी पात्रों के शिरोमणि हैं वैद्य जी– 'सीधे के लिए बिल्कुल सीधे और हरामी के लिए खानदानी हरामी।' उपन्यासकार ने 'वैद्य जी के लिए लिखा है कि वैद्य जी थे, हैं और रहेंगे।' 'उखड़े हुए लोग' में देशबंधु, 'महाभोज' में दासाहब जैसे ही शातिर जनसेवक वैद्य जी हैं और ऐसे शूरवीरों से यह भारतभूमि कभी खाली नहीं रही, न होगी। कुछ घटनाएँ चरित्रों के प्रवेश के बाद घटती हैं और बहुत सी उनकी स्मृति के सहारे कहे गए हैं। रामाधीन भीखमखेड़वी, राधेलाल, छोटे पहलवान का पारिवारिक इतिवृत्त, चुनाव की महिपालपुर पद्धति आदि अनेक प्रसंग भी स्मृति-प्रसूत हैं। हर पात्र कोई न कोई घटना, कोई न कोई बेहूदगी अपने में सहेजे हुए है और उसकी उपस्थिति किसी न किसी विसंगति को गहराने के लिए है। 'चालाकी' के हमले का 'बेवकूफी' से मुकाबला करने वाले सनीचर को गाँव सभा का प्रधान बनाना और खन्ना-मालवीय को कॉलिज से दूध में मक्खी की तरह निकाल फेंकना उपन्यास की दो प्रमुख घटनाएँ हैं। सनीचर का प्रधान बनना 'किसी गुप्त रोग से पीड़ित उपेक्षित कार्यकर्ता' के मेडीकल एसोसिएशन के चेयरमैन बनने

सरीखा है और दूसरी घटना वैद्य जी के 'खानदानी हरामी' होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इनसे जाहिर है कि स्वतंत्रता, समता, सामाजिक न्याय पर आधारित लोकतंत्र शिवपालगंज जैसे गाँवों तक शायद कभी पहुँचा ही नहीं।

उपन्यास में कई घटनाएँ अचानक घटती हैं और कौतूहल उपजाते हुए किसी न किसी भद्दगी पर अँगुली रख जाती हैं। चोर भगाओ अभियान के खत्म होते न होते गयादीन के यहाँ चोरी की सूचना आ जाती है, मेले में सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा होता है कि गँजहों का उत्पाद माहौल गर्मा देता है। वैद्य जी का एक साधारण सा वाक्य किसी के भी कान में पड़ कर उसे उत्सुकतावश सीधे खड़ा कर देने में समर्थ है। 'मुझे ज्ञात नहीं था कि तुम इतने नीच हो' इस वाक्य से प्रारंभ वैद्य जी और बद्री पहलवान के बीच जो संवाद होता है, वह किसी भी नाटक या फिल्म में पीढ़ी-अंतराल की व्याख्या के लिए दिलचस्प हो सकता है। पिता के प्रश्न तीखे, बेलौस हैं तो पुत्र के उत्तर भी दमदार हैं। पिता पूछता है–'तुम इतने समझदार होकर गयादीन की कन्या से कैसे फँस गए?' उत्तर है–फँसना-फँसाना चिड़ीमार का काम है। तुम्हारे खानदान में तुम्हारे बाबा अजुध्याप्रसाद जैसे रघुबरा की महतारी से फँस थे।' गाँव की पंचायत में पंचों और कथित अभियुक्तों की बातचीत में जितनी तुर्शी है, उसका समापन उतना ही अप्रत्याशित है। छोटे पहलवान का पिता के पक्ष में पंचों का लताड़ना पंचों को स्तब्ध कर देता है।

लगता है, 'रागदरबारी' की बनावट में उपन्यासकार ने 'क्लोज अप' और 'लांग शॉट' की तकनीक भी अपनाई है। कुछ चरित्र और घटनाएँ सूचना और संस्करण के रूप में है, ये उपन्यास में लाँग शॉट के रूप में हैं। चाहे दुरबीन सिंह का पराक्रम हो या चुनाव जीतने की तीनों तरकीबों का विवरण या रामाधीन भीमखेड़की का अतीत-वर्णन-कुछ दूरी से स्मृति के सहारे चित्रित हुए हैं, लेकिन मेले का वर्णन, वैद्य जी-बद्री संवाद, छत पर बेला के आने का क्षण और उपन्यास के अंत में वैद्य जी का रौद्र रूप आदि क्लोज अप में है और न केवल चरित्रों अपितु विविध विडम्बनाओं को भी बहुत निकट से दिखा पाते हैं। कुछ दृश्य फालतू हैं, शौच-मूत्र आदि से संबंधित दृश्य और टिप्पणियाँ रोचक हैं, लेकिन वे उपन्यास की मुख्य कथा के प्रवाह से कुछ अलग-थलग हैं। वस्तुतः सामान्य पाठक व्यंग्य के मीठे-तीखे-चरपरे स्वाद में इतना मगन रहता है कि स्फीतिकारी अंश और संरचनागत दरारों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता है। भले प्रबुद्ध समीक्षक इसे रूपविधान की कसौटी पर शिथिल उपन्यास माने, लेकिन यह इसका वैशिष्ट्य है कि इसकी नकल नहीं हो पाई है। स्वयं श्रीलाल शुक्ल अपने इस कारनामे को दुहरा नहीं पाए। हिन्दी के अन्य किसी भी उपन्यास में व्यंग्यात्मकता का इतना विशद, बेधक और प्रहारक भंगिमाएँ सर्जनात्मक रूप में समाहित हुई हैं।

संदर्भ-संकेत :–

1. उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृ.-165
2. काँपती लौः इक्कीसवीं शती के लिए आलोचना, पृ.-164
3. प्रेमचंदोत्तर तेरह हिन्दी उपन्यास, पृ.-138
4. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ.-260
5. हिन्दी प्रेमचंदोत्तर तेरह हिन्दी उपन्यास, पृ.133
6. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ.-261

डी-131 रमेश विहार, अलीगढ़- 202001

कश्मीर की काँगड़ी संस्कृति

अवतारकृष्ण राजदान

लेखक का सम्बन्ध जम्मू-कश्मीर से है। कश्मीरी संस्कृति से संबंधित 240 शोधपत्र एवं एक पुस्तक प्रकाशित। हिन्दी में छः एवं कश्मीरी में एक कहानी संकलन प्रकाशित।

काँगड़ी और कश्मीर एक दूसरे की पहचान के पर्याय हैं। जहाँ काँगड़ी पहुँची, वहाँ कश्मीर का नाम भी मशहूर हो गया और जिसने काँगड़ी देखी, उसको कश्मीर की याद आयी। शिशिर हो या ग्रीष्म, वसंत हो या शरद, कश्मीर के हर घर में काँगड़ी देखी जाती है। किस तरह काँगड़ी में रखे आग के अंगारे कभी भड़कते हैं तो कभी ठंडे पड़ जाते हैं, उसी तरह कश्मीरियों का स्वभाव कभी क्रुद्ध तो कभी नर्म होने में देर नहीं लगती। कड़ाके की सर्दी और मार्गशीर्ष या कभी उपवास और महँगाई! यह कश्मीरी कहावत है जो कश्मीर की काँगड़ी पर सही उतरती है।

काँगड़ी कश्मीरियों के स्वभाव के इतने अनुकूल बन गयी है कि आषाढ़ की तपती धूप में भी, ये इसको नहीं छोड़ते। बरसात में यदि बारिश खूब बरसे तो इनको काँगड़ी की तुरन्त याद आती है और वह इसको बनाने में लग जाते हैं और वसंत की ठंडी एवं ताजी हवाओं में तो काँगड़ी कश्मीरियों के गले में, मानो लटकती रहती है और इनका बिछावन कितना कीमती क्यों न हो, क्या मजाल कि काँगड़ी को इस पर स्थान न मिले जबकि यह दूसरी बात है कि आजकल बिजली हर जगह पहुँच गयी है और ठंड में इसके हीटर का इस्तेमाल बदन को गर्मी देने के लिए किया जाता है मगर जो मजा काँगड़ी सेंकने में आता है वह

हीटर की गर्मी से नहीं मिलता। इसलिए सर्दी आने से पहले ही, सबसे पहले यहाँ के लोग काँगड़ी लेने की हर तरह की व्यवस्था करते हैं क्योंकि इनका कहना है कि यदि खाने को कुछ मिले या न मिले, मगर उनके पास काँगड़ी जरूर होनी चाहिए क्योंकि यही एक चीज है जो इनको सर्दी की ठिठुरन से बचा सकती है और सर वाल्टर लारेंस अपनी पुस्तक 'वैली ऑफ कश्मीर' में लिखते हैं कि जब मैं बाराहमुल्ला से श्रीनगर की ओर, नाव में सफर कर रहा था तो कड़ाके की ठंड में, माँझी के तन पर कश्मीरी चोला या फिरन के सिवाय कुछ नहीं था और बीच रास्ते में, उसने नाव रोक कर मजे से खाना भी खाया और मैं यह देखकर इस आश्चर्य में पड़ गया कि यह खाना उनको कैसे पचेगा किन्तु जब मैंने उसके दायें की ओर अंगारों से भरी काँगड़ी देखी तो मैं जान गया कि यह उसकी आँच है जो इसके पाचन का काम करता है, नहीं तो इस तरह के हालात में कोई कब का मर गया होता। यह एक उदाहरण हो सकता है। इसी तरह के कई उदाहरण हैं जिनके कारण कश्मीरी, न जाने कितने समय तक काँगड़ी से चिपका रहा है और आज भी इसके बिना नहीं रह सकेगा और इसलिए वह इसको देखकर हर समय मचल जाता है–

"वारी जाऊँ तुम पर, मेरी काँगड़ी!
चार से लाया हूँ तुझे,
अरी मेरी छमछम काँगड़ी।
अनन्तनाग की मेरी प्यारी काँगड़ी!
वारी जाऊँ तुम पर, मेरी काँगड़ी!"

यहाँ दो बातों की और साफ संकेत मिलता है कि काँगड़ी कश्मीरियों की पहचान रही है और इसके बनाने के मुख्य उद्योग यहाँ के दो बड़े शहर अनन्तनाग और चार रहे हैं जहाँ आज भी इसके बनाने वाले कुशल कारीगर मिलते हैं और लोग काँगड़ी को देखकर ही कहते हैं कि यह कहाँ बनी है। कश्मीर के एक लोक गीत में काँगड़ी को बारहमासा से जोड़ दिया गया है जिसमें इसके साल भर का विवरण इस तरह मिलता है जिसका हिन्दी अनुवाद है–

"री काँगड़ी!
वैशाख में तुममें शोले
कहाँ भड़क सकते हैं
ज्येष्ठ में तो पागल हो जाती हो
आषाढ़ में बिल्कुल भाग जाती हो
श्रावण में यौवन का खुमार चला जाता
भाद्रपद में सब दुत्कारते हैं
आश्विन में हाँ, कासिद को भेजूँगा

कार्तिक में अँगारों को भड़काऊँगा
मार्गशीर्ष में अपनी गुलाम बनाऊँगा
पौष में पेड़ की सूखी पत्तियाँ डालूँगा
फाल्गुन में अपना पीछा छुड़ा लूंगा
चैत्र में तुम बिल्कुल ठण्डी पड़
जाओगी।"

कश्मीरी काँगड़ी से बहुत प्यार करते हैं। वह इसको इतना चाहते हैं कि जितना मजनूँ लैला को चाहता था या शीरी फरहाद को। यदि काँगड़ी न होती तो कश्मीरी पौष की लम्बी किन्तु सर्द रातों का सामना कैसे करते! किन्तु यह काँगड़ी भी कितनी जालिम है? यह इन्सानों को मारती है और चुटकियों में, मकानों को जलाती है। यह तो रहा इसका एक पक्ष। दूसरे रूप में यह कश्मीरियों के शस्त्र के रूप में काम आती है और उस समय यह एक निर्बल के लिए मिजाईल का काम करती है। जाड़े में यहाँ किसी के साथ तू-तू, मैं-मैं हो गयी तो कयामत का दूसरा पहर आ जाता है। उस समय प्रायः दोनों दल गुस्से में होते हैं और अंत में, जब गुस्सा थमता नहीं, और कोई एक दल यह कहने पर मजबूर होता है कि काँगड़ी फैंकूँगा तो जल जाओगे और वह भी ऊपर से नीचे तक और जब इस तरह की नौबत आती है तो काँगड़ियाँ एक-दूसरे पर फैंकी जाती हैं तो उस समय कुछ मत पूछिए कि क्या हो जाता है। दोनों के तन पर जलने के घाव हो जाते हैं। फिर भी कुछ नहीं हुआ यार! घर पहुँचने पर दोनों दल के लोग नई काँगड़ियाँ लेकर और इनमें कोयला भरकर, इसमें आग तैयार करते हैं और इसकी आँच से अपना तन-बदन गर्म करते हैं या सर्दी की ठिठुरन से अपने आपको बचाना चाहते हैं।

एक और बात देखी जाती है कि जब घर का कोई सदस्य सर्दी से ठिठुरता हो तो दूसरा कोई भी उसको अपनी काँगड़ी, कुछ पल के लिए, गरमाई करने के लिए तैयार नहीं होता। वह उसको साफ-साफ कहता है कि मैं अपना सब कुछ देने के लिए तैयार हूँ मगर काँगड़ी देने के लिए सौदेबाजी करने के लिए तैयार नहीं हूँ। घर में सभी की अपनी-अपनी काँगड़ी होती है और कौन चाहेगा इस ठिठुरती सर्दी में अपनी काँगड़ी बेकार गँवाना। इसी को देखकर कई योरोपीय विद्वानों का कहना है कि कश्मीरियों की काँगड़ी गले का हार बन गई है और यह उसको अन्य काम करने से रोकती है किन्तु यह सत्य के विपरीत है। कश्मीरी जितना काम सर्दियों में करते हैं उतना गर्मियों में नहीं करते, सिवाय खेतीबाड़ी को छोड़कर क्योंकि इसके लिए धूप चाहिए या उपयुक्त जलवायु चाहिए। फिर भी कश्मीरी जहाँ कहीं पहुँचे हैं वहाँ उनके साथ काँगड़ी भी गयी या पहुँची है। यहाँ तक कि जाड़े में राजस्थान के रेगिस्तानों में बदन को छूने वाली शीत लहर चलती है तो वहाँ किसी-किसी स्थान पर काँगड़ी को इस्तेमाल करते देखा गया है और यह वही राजस्थान है जहाँ ग्रीष्म में लोग तपती धूप से तड़पते हैं।

कहा जाता है कि उन्नीसवीं शती में यही काँगड़ी अमृतसर और लाहौर पहुंच गयी है और हिन्दुओं के कश्मीर से पलायन के बाद, यह उसी तरह जम्मू में इस्तेमाल में लायी जाती है जिस तरह ये इसका इस्तेमाल कश्मीर में करते थे, जिसका प्रमुख कारण यह है कि इनके पास पहनने को वह कपड़े नहीं हैं जो वह कश्मीर में इस्तेमाल करते थे क्योंकि यहाँ ग्रीष्म में तापमान का कहर ऐसा ही होता है जो अन्य क्षेत्रों में होता है। किन्तु सर्दियाँ आते ही खुश्क सर्दी, इनके बदन को चुभती है और वह काँगड़ी के इस्तेमाल करने पर मजबूर होते हैं। फिर भी काँगड़ी आजकल किसके ससुराल में दिन बिताती है, इसकी गणना करने के लिए किसी के पास समय नहीं है किन्तु यह बात सत्य है कि अब कश्मीरी काँगड़ी की बुनाई कश्मीर के बाहर भी की जाती है मगर कश्मीरी काँगड़ी की बारीकी और इसके बुनने में एक विशेष कला तो कश्मीरी कारीगर के पास ही होती है।

यहाँ जो विभिन्न प्रकार की काँगड़ियाँ बुनी जाती हैं, उनकी नजाकत कुछ और ही होती है। छमछम काँगड़ी, बाण्डीपुरा काँगड़ी, चार काँगड़ी इनमें से विशेष हैं। यहाँ तो काँगड़ी बस, एक है किन्तु इसकी बुनाई और बनावट में फर्क लगती है और इसी के आधार पर इनका मूल्य भी निश्चित किया जाता है। एक विशेष प्रकार से बनी काँगड़ी और वह भी चार में, जो गठीली दुल्हन की तरह दिखती है, का मूल्य सभी काँगड़ियों से ज्यादा होता है। यह इतनी सुन्दर और इतनी बारीक होती है कि मानो दिल हरने लगती है और हाँ, यदि इसमें थोड़े से अंगारे भड़काए जाएँ तो इसकी बुनाई एकदम जल जाएगी। इसलिए ऐसी काँगड़ियों को 'डेकोरेशन पीस' के रूप में लिया जाता है या किसी स्थान पर सजावट के काम में ही लाया जाता है। 'लिन्य' नाम की बारीक तीलियों से बनी काँगड़ी में, यदि थोड़े से अंगारे भड़काए जाएँ तो यह दिन भर के लिए इस्तेमाल की जा सकेगी या इसकी आँच बहुत देर तक कायम रहती है और यदि मजबूती की दृष्टि से देखा जाए तो यहाँ के कस्बा जैनागीर में बनी काँगड़ी का सर्वोपरि स्थान है और इसकी तीलियाँ ऐसी लगी होती हैं कि यदि इसमें शहतूत की लकड़ी की आग भरी जाए जिसकी आँच सबसे तेज होती है, यह वह भी अपने में समा सकती है और यदि इसको सँभाल कर रखा जाए तो यह कई वर्षों तक टिक सकती है या इस्तेमाल की जा सकती है।

वस्तुतः काँगड़ी कैसी भी हो, इसका टिकना या अधिक देर तक इस्तेमाल में लाना, इसकी बुनाई पर निर्भर करता है। जैसी तीलियाँ होंगी, वैसी ही काँगड़ी भी होगा किन्तु इसका 'कोप' या ऊपर वाला भाग, इससे भी मजबूत होना चाहिए। बारीक से बारीक तीलियों से बुनी गयी काँगड़ी से ज्यादा गर्माहट ली

जा सकेगी। 'कँछ' तीलियों से बुनी गयी काँगड़ी से भी जोरदार आँच आ जाती है किन्तु यह ज्यादा देर तक टिकाऊ नहीं रहती क्योंकि इसकी बुनाई आँच लगने से या तो सूख जाती है या जल जाती है। इसी तरह 'पाशि' तीलियों से बनी काँगड़ी मजबूत होती है किन्तु ये सभी तीलियों से मोटी होती हैं जिससे इसकी बुनाई में कुछ मुश्किलें आती हैं। फिर भी यदि बारीक तीलियों से बनी काँगड़ी का 'कोप' या उपरीला भाग या निचला भाग, वह भी टिक सकता है। 'कुलिम' तीलियाँ या 'गीय' तीलियों की काँगड़ियाँ बन सकती हैं किन्तु इस तरह की तीलियों का इस्तेमाल करने से पहले कपड़े का इस्तेमाल करना जरूरी है।

यहाँ कपडे की बात आयी तो देखिए यह कपड़ा क्या होता है? यह वह कपड़ा नहीं जो वस्त्र बनाने में काम आता है या जिससे वस्त्र बनाए जाते हैं। यहाँ कपड़े का मतलब है बारीक व मोटी तीलियों का सम्मिश्रण या यदि इन दोनों प्रकार की तीलियों से काँगड़ी बुनी जाए तो उस काँगड़ी को कश्मीरी में 'अस्त्र काँगर' कहते हैं किन्तु इसके बुनने के खास बुनकर होते हैं और यह आसानी से बाजार में नहीं मिलती है। काँगड़ी कैसे बुनी जाती है, यह जानना भी जरूरी है। इसके बुनने के लिए मुख्यतया दो खास चीजों की आवश्यकता रहती है। एक है मिटी का बना बड़ा प्याला जो इसका मुख्य आधार होता है और इसको कश्मीरी में 'कँडुल' कहते हैं और दूसरा तीलियाँ, जिनको कश्मीरी में 'कानि' कहते हैं और जब बुनकर के पास ये दोनों चीजें मयस्सर हो, तभी वह अपनी कला का कमाल दिखा सकेगा, वरना एक काँगड़ी हवा में नहीं बन सकती। काँगड़ियाँ कई स्थानों में बुनी जाती है किन्तु चार में बनी काँगड़ी की अपनी नजाकत है। यह प्यालानुमा कँडुल में बुनी जाती है और इसके बीच और पास की विशेष प्रकार की बुनाई की जाती है।

वस्तुतः काँगड़ी की बुनाई तीन भागों में बाँटी जा सकती है और वह है 'चोख' या आधार या निचला भाग, 'डब' या मध्यम भाग और 'कोप' अथवा उपरीला भाग। आम काँगड़ियों का चोक या निचला भाग गास की बनी गोलाकार गठरी के समान होता है किन्तु बारीक और जालीदार आईना चिपकाए काँगड़ी का निचला भाग ऊँचा होता है। जैनागीर काँगड़ी भी खुली जालियों में बुनी जाती है जिनका निचला भाग ऐसे ही होता है किन्तु यह चार काँगड़ी के निचले भाग से चौड़ा होता है। पतली और बारीक काँगड़ियों का डब या बीच का भाग बुनने के लिए रंगी हुई तीलियों का इस्तेमाल किया जाता है। छमछम बनी जालीदार काँगड़ियों को छोड़कर, जो काँगड़ियाँ बारीक एवं पतली तीलियों से बुनी जाती हैं, उनके पीछे से हाशियानुमा डोरी भी

बुनी जाती है। इसके कोप या खोपड़ी के भी दो भाग होते हैं जिनको कश्मीरी में दर और पॅहर्य कहते हैं। दर काँगड़ी की तुण्ड को दोनों ओर से घुमाता है। पुहर कुछ एक उन डोरियों को कहते हैं जो गोलाकार काँगड़ी में पीछे की ओर जोड़ी जाती हैं। जिन काँगड़ियों का फूटा कोप या ऊपर वाला भाग होता है, उनका पुहर या कुण्डल या प्याले के निचले भाग तक बनाया जाता है। जिन काँगड़ियों के चौदह से से लेकर चालीस इंच तक पुहर होता है, उन्हीं को मजबूत काँगड़ियाँ कहा जाता है। 'चालन' अथवा इसमें जमे अंगारों की राख को उलटाने वाला यन्त्र कुछ ऐसा होता है कि इसको पुहुर में ही डालकर, एक छोटा सा गोलाकार फँसाया जाता है। इससे कोप या काँगड़ी का ऊपरवाला भाग भी पकड़ लिया जाता है।

रंगदार काँगड़ी बुनने के लिए पहले तीलियाँ रंगी जाती हैं और इनके लिए अधिकाधिक तीन या चार रंगों की तीलियाँ इस्तेमाल में लायी जाती हैं। तीलियों को रंगने का काम स्वयं काँगड़ी बनाने वाला करता है। काँगड़ी की बुनाई में कारीगर को तीन चीजों की जरूरत पड़ती है और वह है अँड या एक तरह का नेजा, आरी और छीलन। अँड से वह तीलियाँ काटता है और इनको फिर पानी में डालकर छीलता है। आरी से तीलियों को आपस में जोड़ने और छीलने का काम भी लिया जाता है।

अब रहा कच्चे माल का सवाल! हाँ, तीलियाँ और बड़े प्याले। तीलियाँ बनों और कँडी क्षेत्रों में आसानी से मिलती है। वहाँ पॉश, लिन्य और तीलियों के अनगिनत झुँड मिलते हैं। शेष की तीलियाँ पथरीली क्षेत्रों में मिलती है। कुण्डल या प्यालानुमा बर्तन मिट्टी का होता है जिनको बनाने के लिए अलग कुम्हार नियत होते हैं। और हाँ, यहाँ यह बात कहनी जरूरी है कि यहाँ ऐसे कुम्हार हैं जो बिना किसी बुनाई, सिर्फ मिट्टी की काँगड़ियाँ तैयार करते हैं और इनका कोप भी मिट्टी का ही होता है किन्तु इस तरह की काँगड़ियाँ आम इस्तेमाल में नहीं लायी जाती। शायद ही कोई आदमी होगा जो ऐसी काँगड़ी के इस्तेमाल करने से अपनी टाँगें और कपड़ों को जलने से बचा सकता हो क्योंकि इसमें तेज आँच निकलती है। इस प्रकार की काँगड़ी को कश्मीरी में 'मनन' कहते हैं। किन्तु प्रश्न उठता है कि काँगड़ी का आविष्कार कब, कहाँ और किसने किया अैर इसको कब से कश्मीरियों ने अपने गले से लगाया है।

इस संबंध में जिस किसी ने जो चाहा, कह दिया। कुछ विद्वानों के अनुसार सम्राट अकबर, कश्मीर आए तो उसके साथ इतालवी पर्यटक भी थे। जिनके मिट्टी के बने प्यालानुमा काँगड़ियाँ थीं और राजा ने इनको भेंटस्वरूप कश्मीरियों को दे दी ताकि ये ठंड से बच सकें और तभी से यहाँ काँगड़ी के इस्तेमाल करने की शुरुआत हुई है किन्तु दुर्भाग्य यह है कि कश्मीरी दूसरों से जो सुनते हैं, चाहे वह सत्य से कोसों दूर क्यों न हो किन्तु इनको अपनी संस्कृति के विषय में कोरा झूठ सुनने में मजा आता है और आज भी यह बात सही है कि जब हम वैज्ञानिक दौर से गुजर रहे हैं। इटली के किसी मृण भाण्ड में, जिसमें आग रखी जाए, हमारी काँगड़ी के साथ कोई समानता नहीं। इटली का यह अग्नि भाण्ड एक लम्बी पयाली की तरह होता है और इसका हमारी संस्कृति के साथ कोई समानता नहीं है। इनका यह अग्नि भाण्ड बाल्टी जैसा होता है जिसके पीछे हैण्डल लगा होता है। रोमन दौर से ही वहाँ इसको 'तुरला' कहते रहे हैं जिसकी हमारी इस काँगड़ी से कोई समानता नहीं। इतना होने पर भी हमें काँगड़ी को इटली की देन मानने से कोई इन्कार नहीं था, किन्तु सत्य यह है कि काँगड़ी को कश्मीरी प्राचीन काल से इस्तेमाल करते आए हैं। कल्हण ने अपनी कालजयी कृति 'राजतरंगिणी' में इसको कँगाड़का कहा है और मँख ने 'श्रीकंठचरित' में लिखा है कि ज्यों ही यहाँ शिशिर शुरू होता है, काँगड़ी या हतिस्तनका में अँगारे ऐसे भड़कते हैं कि जैसे लाल-लाल आँखें! शिव को अपने बस में करने के लिए कामदेव ने भी यही चाल चली थी, जिससे शिव की आँख प्रकट होकर अंगारे बरसाने लगी।

कल्हण के कोशिश की तुलना काँगड़ी में दहकते हुए अंगारों के साथ की जा सकती है जो कभी देखते ही किसी को भस्म कर देते हैं। सेंट पीटसबर्ग के शब्दकोष के अनुसार कल्हण ने हस्तिनिका का उल्लेख उस समय किया है जब उसने अपनी कालजयी कृति 'राजतरंगिणी' में महाराजा विक्रमादित्य का वर्णन किया है और कहते हैं कि ये ऐसे राजा हुए हैं जो दहकती काँगड़ी की तरह अंगारे बरसाते थे। कल्हण ने एक अन्य स्थान पर इसी तरह का उल्लेख किया है। संस्कृति विद्वानों ने काँगड़ी को क्या नाम दिया है, उसके साथ मुझे कोई सरोकार नहीं किन्तु यहाँ मुझे आपका ध्यान इस ओर खींचना है कि हस्तिनिका शब्द का विकृत रूप काँगड़ी नहीं हो सकता न ही कॉगर शब्द का स्रोत हस्तिनिका है। काँगड़ी का वर्णन करते हुए आर.एस. पंडित लिखते हैं कि ककशानि शब्द का अर्थ अरंडी की आग भी हो सकता है। ककशाग्नि का विकृत रूप काँगड़ी भी हो सकता है जिसमें शोलों को भड़का कर, कश्मीरी अपने साथ रखते हैं। इसका अर्थ वन की आग या अलाव भी हो सकता है। रघुवंश में भी इसका अर्थ यही दिया गया है। मगर काँगड़ी का इस तरह अर्थ देना युक्तिसंगत नहीं। काँगड़ी कश्मीरियों को इतालवियों की देन न हिंटन नोल्स को मान्य है न ही सर वाल्टर लारेंस को। इस संबंध में जिसने भी इस तरह का दावा किया है, वह सब कल्पना के सिवाय कुछ नहीं है और ऐतिहासिक तथ्यों से बहुत दूर है। काँगड़ी शब्द की व्युत्पत्ति क्या है–इस पर हिंटन नोल्स क्या कहते हैं या अन्य किसी और की क्या राय है। वह भी अपनी जगह सही है किन्तु इस संबंध में दो तरह के अनुमान लगाए जा सकते हैं जो किसी हद तक सही हैं--

(1) काँगड़ी दो शब्दों के योग से बनी है अथवा कानि या तीलियाँ और घर अथवा वह स्थान जिस पर ये लगायी जाती है अथवा बनाने वाले को कानिघर का अर्थ है काँगड़ी को बुनने वाला या जिसको कश्मीरी में 'कान्युल' कहते हैं या जिसका अर्थ बुनी हुई तीलियाँ भी हो सकता है। कश्मीर में किसी भी चीज के नाम को इसके बनाने वाले के नाम से जोड़ दिया जाता है। काँगड़ी मात्र बुनी हुई तीलियों और प्याले के सिवाय कुछ नहीं होती। कानिघर शब्द का छोटा रूप काँगड़ी भी हो सकता है, ठीक उसी तरह जैसे रंगसाज को रंगुर या बँग बेचने वाले बँगुर कहते हैं। किन्तु प्रश्न उठता है कि कानिघर शब्द क्या कभी कश्मीरी बोलचाल में प्रचलित रहा है? इसका उत्तर नकारात्मक ही हो सकता है क्योंकि ऐसे शब्द गढ़ने की यहाँ जरूरत नहीं रही है। वजह यह है कि इसके लिए पहले ही कश्मीरियों में कान्युल शब्द का प्रयोग किया जा रहा था।

(2) दूसरा और शायद महत्त्वपूर्ण अनुमान यह है कि काँगड़ी को किसी अन्य भाषा के शब्द से जोड़ना किसी का मात्र भ्रम हो सकता है। यह शब्द वस्तुता संस्कृत से आया है। संस्कृत में 'क' वर्ण नष्ट या छोटा होने का संकेत है। अंगारा जिसको दहकते हुए शोले या कोयला भी कहते हैं। अंगारों का अर्थ वह चलता फिरता बर्तन भी हो सकता है जिसमें आग हो या अंगारा या अंगारी, जिसका अर्थ है दहकते हुए आग का छोटा बर्तन।

डॉ. नोल्स के इस कथन के बावजूद मेरा कहना है कि काँगड़ी कँग का विकृत रूप हो सकता है। कश्मीरी कँग मिट्टी के बने प्यालेनुमा उस अग्नि पात्र को कहते हैं जिसका आकार कद्दू जैसा होता है। कँग को कभी-कभी गरमाई के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है और लोग इसमें दहकते कोयले भरकर रखते हैं। इसी अग्नि पात्र को कश्मीरी में मनन कहते हैं। इसको अलाव भी कहा जाता है। पहले इस तरह के अग्नि पात्र लेह लद्दाख में इस्तेमाल किए जाते थे, किन्तु आजकल लद्दाख के दूर-दूर क्षेत्रों में भी इसका चलन है। कँग मूलतः तिब्बती भाषा का शब्द है। गरमाई देने का अग्नि पात्र होने के अतिरिक्त, वहाँ कँग उस बुखारी को भी कहते हैं जो दो कमरों के बीच की दीवार के साथ रखी जाती है और धुआँ निकलने के लिए नीचे से चिमनी रखी जाती है। एक मकान में एक कँग के जलने से दो कमरे गर्म रहते हैं। चीनी सीमाओं पर बसने वाले लोगों के चूल्हे के बीच में एक मण्डप होता है जिसको कँग कहते हैं। यह मण्डप उसी तरह का होता है जैसे कि आजकल कश्मीर में बने मिट्टी के चूल्हे होते हैं। वहाँ खाने पीने के अतिरिक्त, एक हमाम भी होता है जिसके सामने घर के सदस्य बैठकर तन गर्म करते हैं। काँगड़ी शब्द 'कँग' से जोड़ना किसी हद तक सही लगता है और अनुमान के बिल्कुल अनुकूल है। हो सकता है कि प्रारंभिक काल में यह मिट्टी का ही बना हो जो किसी हद तक विश्वसनीय लगता है, क्योंकि अब भी इस तरह की काँगड़ी का प्रयोग होता है। हाँ, इसको नर्म तीलियों से बुनकर प्रयोग में लाना कश्मीरियों का अपना अलग आविष्कार हो सकता है किन्तु यह कँग की ही दूसरी शक्ल है, जिसको आजकल हम काँगड़ी कहते हैं।

डी-255, गली 14/15, लोअर शिवनगर,
ऐ.जी. आफिस के पीछे, जम्मू-180001

मानवीय संवेदनाओं के सहज चितेरे : भीष्म साहनी

राजेश हजेला

सुपरिचित कवि एवं लेखक। देश के प्रमुख समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं में कविताएं, लेख एवं शोध लेख प्रकाशित। विभिन्न विधाओं में लेखन। लोक संस्कृति तथा साहित्य के अध्येता। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से कविताएं एवं वार्ताएं प्रसारित। राजकीय संस्थानों तथा प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा सम्मानित। उच्च स्तरीय सरकारी समितियों के सदस्य। सम्प्रति सलाहकार (राजभाषा), भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण।

तत्वदर्शी चिन्तक, मानवीय संवेदनाओं के सहज चितेरे, उदात्त जीवन मूल्यों के पोषक, राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के अग्रदूत, स्वस्थ सकारात्मक अभिव्यक्ति के सूत्रधार, सरल व्यक्तित्व तथा अक्षुण्ण कृतित्व के धनी भीष्म साहनी सदैव स्मरणीय हैं। जीवन्तता तथा स्वाधीनता उनकी रग-रग में बसी थी। उनका कालजयी साहित्य कभी भी समय की सीमाओं में घिरकर कालबाधित नहीं हुआ। ऐसे युगदृष्टा, दूरदर्शी तथा जीवन्त साहित्यकार का विराट् कृतित्व सैकड़ों युवाओं का पथ-प्रदर्शन कर रहा है जो अपने में अद्वितीय है। एक युग-प्रणेता के रूप में वे चिरस्मरणीय हैं। उन्होंने क्रान्ति को भारतीयता के साथ जोड़ा। यही कारण है कि उनके अविकल साहित्य में जो कुछ भी है वह सब भारतीयता के रंग से सराबोर है, उसमें कुछ भी आयातित नहीं है। विभाजन के कारण जब देश की अखण्डता पर चोट हुई तब उन्होंने तद्जनित पीड़ा को अपने साहित्य में उकेर कर राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान कर दिया। इसीलिए सम्पूर्ण देश में उनके और उनके साहित्य के प्रति पाठकों में अनुराग और सहृदयता की कमी नहीं है।

भीष्म साहनी का जन्म 08 अगस्त, 1915 को पंजाब के रावलपिण्डी (अब पाकिस्तान) में हुआ था। इनके पिता का नाम हरबंश लाल साहनी तथा माँ का नाम लक्ष्मी देवी था। हरबंश लाल साहनी व्यापारी थे। सुप्रसिद्ध फिल्म अभिनेता बलराज साहनी भीष्म के बड़े भाई थे। वे पारिवारिक रूप से आर्यसमाजी संस्कारों के थे मगर विचारों से वामपंथी। इसके बावजूद उन्होंने अपने विचारों को कभी अपनी रचनाओं के ऊपर हावी नहीं होने दिया। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। सन् 1937 में उन्होंने राजकीय कॉलेज, लाहौर से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया। सन् 1946 में चित्रकार शीला के साथ उनका विवाह हुआ। सन् 1958 में उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से डॉ. इन्द्रनाथ मदान के निर्देशन में 'कान्सेप्ट ऑफ द हीरो इन द नावेल' विषय पर शोध कर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, रूसी, पंजाबी, अरबी, फारसी आदि भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। उन्होंने व्यवसायी, प्रोफेसर, कथाकार, उपन्यासकार, नाटककार, अनुवादक, रेडियो रूपान्तरकार, दूरदर्शन रूपान्तरकार, पत्रकार, सम्पादक, लेखक, बाल साहित्यकार, शोध निर्देशक, शोध परीक्षक, रगकर्मी, अभिनेता, नाट्य निर्देशक तथा संस्कृतिकर्मी के रूप में अपने जीवन को विविध आयामों के साथ जिया और प्रत्येक क्षेत्र में अपना अविस्मरणीय योगदान दिया।

ख्यातिप्राप्त सृजनधर्मी भीष्म साहनी का सम्पूर्ण साहित्य यद्यपि उस युग की विशिष्ट माँग थी तथापि आज भी उसके प्रेरक तत्व यथावत प्रभावी हैं। कहानी, नाटक और उपन्यासों के अप्रतिम रचयिता के रूप में वे अनन्तकाल तक विस्मृत नहीं हो सकते। उनकी रचनाएँ उस युग का यथार्थ चित्रण अपने में संजोए हुए आज भी दैदीप्यमान हैं। उनकी कहानियाँ हों या नाटक अथवा उपन्यास सभी में तत्कालीन समय का यथार्थ चित्रण हुआ है। उनकी कृतियाँ समसामयिक होने के साथ ही भविष्य की क्रान्तिकारी सम्भावनाओं से ओत-प्रोत भी हैं। इसीलिए वे आज भी अपने कालजयी स्वरूप में लोगों की प्रेरणा

और आकर्षण का प्रधान केन्द्र बने हुए हैं।

शब्द-शिल्पी भीष्म साहनी को लेखन की प्रतिभा ईश्वरीय वरदान के रूप में प्राप्त थी। यही कारण है कि उनकी लेखनी द्वारा उकेरा गया प्रत्येक चित्र समाज के प्रति संवेदनशील है। उनके साहित्य में पठनीयता अनवरत बनी रहती है। पाठक उनकी रचनाओं में पात्रों से सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेता है। यह विशेषता साहित्य को शाश्वत स्वरूप प्रदान करती है जो अन्य साहित्यकारों की रचनाओं में प्रायः दुर्लभ है। सहज, उदार तथा मुखर अभिव्यक्ति के धनी भीष्म साहनी ने साहित्य जगत को जो कुछ भी दिया है उसकी अपनी अलग महत्ता है। सामान्यतः जहाँ अधिकांश साहित्यकारों ने विभिन्न समस्याओं को अपनी रचनाओं में उजागर किया है वहीं भीष्म साहनी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। यही उनकी विशेषता है।

साहनी जी ने प्रारम्भ से ही अपनी रचनाओं में कल्पना का ऐसा ताना-बुना बुना जो यथार्थ के अत्यन्त निकट है। उन्होंने अपनी वैचारिक क्षमता से उन आदर्शों को भी यथार्थता प्रदान की है जो जनमानस के लिए सहज सम्प्राप्य नहीं है। उन्होंने जिस विषय को भी छुआ उसे माटी से कंचन तो बनाया ही साथ ही अपनी प्रतिभा की ऐसी सुगन्ध उसमें भरी जो सुधी पाठकों को भावजगत् में लाकर ऐसा रमा देती है जहाँ से वे निकलने का वैचारिक श्रम भी नहीं कर पाते और लेखक की रचनाओं के पात्रों से अपनत्व के बंधन में बँध जाते हैं। उनकी वैचारिक शृंखला इतनी सुदृढ़ हे कि उसमें आबद्ध होकर पाठक उन्हीं का होकर रह जाता है। उन्होंने जो भी लिखा उसमें सरलता और सहजता के साथ-साथ बोधगम्यता भी है। वे निःस्वार्थ, निर्लिप्त तथा प्रगाढ़ देशभक्त थे। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने देश और समाज को बहुत कुछ दिया है जो आज भी पाठकों की स्मृति में विद्यमान है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में ऐसा कुछ भी नहीं है जो जनमानस द्वारा देखा या सुना नहीं गया। वे जिस क्षेत्र में भी रहे उसमें उन्होंने एक ऐसी छाप छोड़ी जो आज भी अक्षुण्ण रूप से दैदीप्यमान है। उनका व्यक्तित्व सहज और मानवीय था।

भीष्म साहनी को हिन्दी साहित्य में उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचंद की परम्परा का अग्रणी कथाकार माना जाता है। मुंशी प्रेमचंद का अनुसरण करते हुए उन्होंने गाँवो, कस्बों तथा शहरों के लोगों के जीवन में घट रही छोटी से छोटी समस्याओं, घटनाओं व पीड़ाओं को अत्यन्त सलीके के साथ उठाया और उनके समाधान की दिशा भी निर्धारित की। उनकी कहानियों के केन्द्र में केवल मनुष्य और मनुष्यता है। उनके लेखन का उद्देश्य समाज में मानवीयता, सामंजस्य, सहिष्णुता तथा भाईचारा स्थापित करना है। 'भीष्म साहनी का कथा साहित्य' विषय पर पी-एच.डी. कर चुकीं डॉ. शुभिका सिंह के अनुसार, "साहनी जी पर मुंशी प्रेमचन्द और यशपाल की गहरी छाप है। उनकी कहानियों में अन्तर्विरोधों व जीवन के द्वंद्वों तथा विसंगतियों से जकड़े मध्यम वर्ग के साथ ही निम्न वर्ग की जिजीविषा और संघर्षशीलता को उद्घाटित किया गया है। जनवादी कथा आन्दोलन के दौरान भीष्म साहनी ने सामान्यजन की आशा, आकांक्षा, दुःख, पीड़ा, अभाव, संघर्ष तथा विडम्बनाओं को अपने उपन्यासों से ओझल नहीं होने दिया। नयी कहानी में उन्होंने कथा साहित्य की जड़ता को तोड़ कर उसे ठोस सामाजिक आधार दिया।... जहाँ तक नारी मुक्ति समस्या का प्रश्न है भीष्म जी ने अपनी रचनाओं में नारी के व्यक्तित्व विकास, स्वातन्त्र्य, एकाधिकार, आर्थिक स्वतंत्रता, स्त्री शिक्षा तथा सामाजिक उत्तरदायित्व और उसकी सम्मानजनक स्थिति का समर्थन किया है।... भीष्म जी की रचनाओं में सामाजिक अन्तर्विरोध पूरी तरह उभर कर सामने आया है। राजनैतिक मतवाद अथवा दलीयता के आरोप से दूर भीष्म साहनी ने भारतीय राजनीति में निरन्तर बढ़ते भ्रष्टाचार, नेताओं की पाखण्डी प्रवृत्ति, चुनावों की भ्रष्ट प्रणाली, राजनीति में धार्मिक भावना, साम्प्रदायिकता, जातिवाद का दुरुपयोग, भाई-भतीजावाद, नैतिक मूल्यों का ह्रास, व्यापक स्तर पर आचरण भ्रष्टता, शोषण की षड्यंत्रकारी प्रवृत्तियाँ तथा राजनैतिक आदर्शों के खोखलेपन आदि का चित्रण बड़ी प्रामाणिकता और तटस्थता के साथ किया है। उनका सामाजिक बोध व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित था। उनके उपन्यासों में शोषणहीन समतामूलक प्रगतिशील समाज की रचना, पारिवारिक स्तर, रूढ़ियों का विरोध तथा संयुक्त परिवार के पारस्परिक विघटन की स्थितियों के प्रति असंतोष व्यक्त हुआ है। भीष्म जी का सांस्कृतिक दृष्टिकोण नितान्त वैज्ञानिक और व्यावहारिक है जो निरन्तर परिष्करण, परिशोधन तथा परिवर्धन की प्रक्रिया से गुजरता है। प्रगतिशील दृष्टि के कारण वह मूल्यों पर आधारित ऐसी धर्मभावना के पक्षधर हैं जो मानवमात्र के कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध और उपादेय है।.... भीष्म जी मुंशी प्रेमचन्द के समान जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति प्रदान

करते हैं। भले ही वह मुंशी प्रेमचन्द की भाँति ग्रामीण वस्तुस्थिति को नहीं पकड़ पाये किन्तु परिवेश की समग्रता में वस्तु और पात्र के अन्तःसम्बन्धों को जिस प्रकार खोलते हैं और इन सम्बन्धों में जनता के मुक्तकामी संघर्षों को रूपायित करते हैं वह निश्चित रूप से उन्हें न केवल मुंशी प्रेमचन्द के निकट पहुँचाता है अपितु उसमें नया भीष्म भी जुड़ जाता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में जहाँ जीवन के कटुतम यथार्थों का प्रामाणिक चित्रण किया है वहीं जनसामान्य का मंगल-विधान करने वाले लोकोपकारक आदर्शों को भी रेखांकित किया है। अपनी इन्हीं कालजयी रचनाओं के कारण वह हिन्दी साहित्य में युगान्तकारी उपन्यासकार के रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे।"

नयी कहानियों के लेखकों में भीष्म साहनी का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी कहानियों में न तो किसी प्रकार की बनावट है और न ही वे अतिरंजित हैं। उनकी कहानियों में इतनी सहजता और आत्मीयता है कि वे हमारे आस-पास ही कहीं घटी हुई प्रतीत होती हैं। वे कहानी के चरित्र, विचार और अनुभव को इतनी कुशलता के साथ गढ़ते हैं कि वह उनके कथा-संसार की अभिनव-कृति का रूप ले लेती है। उनके रचना-संसार का फलक अत्यन्त व्यापक है। उनकी प्रत्येक रचना में उनकी असाधारण लेखन क्षमता का भरपूर उपयोग हुआ है। इसीलिए उनकी कहानियाँ 'भोगा हुआ यथार्थ' लगती हैं। वे अपनी कहानियों के माध्यम से समाज की दोहरी मानसिकता को बेनकाब करके उसका वास्तविक चेहरा सामने रखते हैं। उनकी कहानियाँ केवल कहानियाँ न होकर वास्तव में एक आईना हैं जिसमें समाज का वास्तविक चेहरा दिखाई पड़ता है।

भीष्म साहनी की कहानियों में कथा कहने का कौशल और भाषा की अभूतपूर्व सादगी देखते ही बनती है। उनकी कहानियाँ मध्यमवर्गीय परिवारों के जीवन की पड़ताल करती हैं। उनकी कहानियों में समय और समाज के वास्तविक संघर्ष का उत्कृष्ट चित्रांकन है। उनके साहित्य में मानवीय मूल्यों का पतन, भ्रष्टाचार, जातिवाद, अवसरवादिता, रूढ़ियाँ, साम्प्रदायिकता, पाखण्ड, अमानवीयता, विसंगतियाँ, कट्टरता तथा कायरता आदि का डटकर मुकाबला किया गया है और अन्ततोगत्वा मनुष्यता का जयगान किया गया है। वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र के अनुसार, "... आधुनिकतावाद के आकर्षण के दौर में ये अपने देशी परिवेश से जुड़े रहे और अवधारणाओं के स्थान पर अपने उस परिवेश से उनका लगाव रहा जिसमें ये अवधारणाएँ चरितार्थ होती हैं। भीष्म साहनी की कहानियों में आधुनिकता है, आधुनिकतावाद नहीं। यह आधुनिकता एक नयी सामाजिक समझ, विवेक-दृष्टि और अभिशप्त-शोषित मनुष्य के प्रति गहरे लगाव के रूप में दिखाई पड़ती है, किसी सिद्धान्त या अवधारणा के रूप में नहीं।... भीष्म का कथा-संसार अधिक व्यापक है।... परिवेश के साथ निरन्तर जीवन्त सरोकार बनाये रखने के कारण वे निरन्तर अच्छा लिखते रहे।... भीष्म जी की कहानी-शैली मुख्यतः वर्णनात्मक और निराडंबर है। उसमें सादगी और सहजता है। वर्णनात्मक शैली की अपनी शक्ति है, अपनी अशक्ति है। जहाँ इन कहानियों का कथ्य सशक्त होता है वहाँ वर्णनात्मक सादगी अद्भुत शक्ति पा लेती है और कथ्य की वर्तुलता और संश्लिष्टता वर्णनात्मकता को नाटकीय तनावों और छोटे-छोटे परिचित बिम्बों से भर देती है और ऊपर-ऊपर से सपाट दीखने वाली शैली और भाषा में अर्थ-वक्रताएँ तथा संकेत भरे होते हैं। इन वक्रताओं और संकेतों को पकड़े बिना कहानी के कथ्य की पूरी पहचान नहीं हो पाती। शिल्प और कथ्य दोनों परस्पर रचे-पचे होते हैं। शिल्प कथ्य-निरपेक्ष होकर अपनी वैसी भंगिमाएँ नहीं दिखाता जैसी कुछ प्रयोगवादी लेखकों का शिल्प दिखाता है।... भीष्म साहनी का शिल्प उनके कथ्य में इतना जज़्ब होता है कि उसे अलग से नहीं पहचाना जा सकता। और चूँकि वे सामाजिक जीवन-चिन्ता के लेखक हैं इसलिए उनका शिल्प निरपेक्ष भाव से अपनी नवीनता, अपनी शक्ति, अपनी विशिष्टता खींचता है जाने-पहचाने परिवेश से ही। इसलिए वह नवीन होकर भी चौंकाता नहीं, विशिष्ट होकर भी सामान्य को आतंकित नहीं करता।"

'चीफ़ की दावत', 'नीली आँखें', 'साग-मीट', 'अमृतसर आ गया है', 'वाङ्‌चू', 'अभी तो मैं जवान हूँ', 'मौकापरस्त', 'पिकनिक', 'राधा-अनुराधा', 'खंडहर', 'धरोहर', 'पहला पाठ', 'काँटे की चुभन', 'ढोलक', 'पैरों के निशान', 'तस्वीर', 'पटरियाँ', 'ललक', 'रास्ता', 'मालिक का बंदा', 'ओ हरामजादे', 'त्रास', 'गलमुच्छे', 'नया मकान', 'भाग्यरेखा', 'भटकती राख', 'शोभायात्रा', 'निशाचर', 'पाली' उनकी प्रसिद्ध और विशिष्ट कहानियाँ हैं। इन कहानियों के अतिरिक्त उनकी प्रायः सभी कहानियाँ अपने में किसी न किसी विशेषता को समाहित किए हुए हैं।

'चीफ़ की दावत' उनकी सबसे लोकप्रिय और प्रसिद्ध कहानी है। इस कहानी में शामनाथ अपनी प्रोन्नति के लिए अपने साहब को अपने घर पर दावत देता है। शामनाथ अपनी बूढ़ी माँ को साहब

की दृष्टि से बचाना चाहता है जिससे उसके ऊपर कोई दुष्प्रभाव न पड़े फिर भी घटनाक्रम कुछ ऐसा होता है कि साहब की दृष्टि बूढ़ी माँ पर पड़ जाती है जो शामनाथ के लिए वरदान साबित होती है और अन्ततः उसकी पदोन्नति का रास्ता साफ हो जाता है। माँ पहले छिपाने की वस्तु थी लेकिन साहब के विचार जानने के बाद वह शामनाथ के लिए गर्व का प्रतीक बन जाती है। बूढ़ी माँ के प्रति साहब की सहजता, उदारता तथा निष्ठा कहानी के अन्त को मार्मिक बना देती है।

'चीफ़ की दावत' कहानी समाज के तथाकथित मध्यमवर्ग से सम्बन्धित है। इसमें पुरानी और नयी पीढ़ी के वर्ग संघर्ष का स्वाभाविक चित्रण दर्शाया गया है। यह कहानी सामाजिक मूल्यों के निरन्तर पतन और मानवीय सम्बन्धों के क्षरण को रेखांकित करती है। यह कहानी पात्रों के अनुसार अपना रूप तो बदलती है परन्तु उसका सहज प्रवाह और सरलता बनी रहती है। कहानी के सभी पात्र एक मर्यादा में बँधे-से प्रतीत होते हैं और जो कुछ घटित होता है वह सब इतना अनायास किन्तु क्रमबद्ध है जिससे कहानी में स्वाभाविकता आ जाती है। यही कारण है कि यह कहानी आज भी लोगों के मन को छूती है। कहानी में जिस तरह स्थान, वातावरण और परिदृश्य का गुंफन किया गया है वह अपने में अद्वितीय और कालजयी है क्योंकि शामनाथ जैसे लोगों की समाज में कमी नहीं है जबकि शामनाथ की माँ का चरित्र एक ऐसा अद्भुत चरित्र है जो अपने पुत्र के लिए तथा पुत्र की पदोन्नति के लिए दुर्बल काया और धुँधली दृष्टि होने के बावजूद अपनी क्षमता से परे कार्य करने की हामी भर देती है। इस प्रकार यह कहानी एक ऐसे संसार की सृष्टि करती है जिसे हम यथार्थ की कसौटी पर खरा कह सकते हैं।

'अमृतसर आ गया है' भारत के विभाजन की त्रासदी पर आधारित एक श्रेष्ठ कहानी है। इस कहानी में लाहौर से अमृतसर आती हुई गाड़ी के डिब्बे में बहुत ज्यादा यात्री नहीं हैं। जो हैं उनमें सरदार भी हैं और तीन पठान व्यापारी हैं तथा एक वृद्ध महिला भी है। सरदार जी लाम के दिनों में बर्मा की लड़ाई में भाग ले चुके हैं और वहाँ के किस्से रोचकता के साथ सुना कर हँसते हैं और गोरे फौजियों की खिल्ली उड़ाते हैं। तीन पठान व्यापारियों में से एक हरे रंग की पोशाक पहने ऊपर वाली बर्थ पर लेटा हुआ है। वह व्यापारी बड़ा हँसमुख है और नीचे वाली बर्थ पर एक दुबले से बाबू के साथ हँसी-मजाक करता है। बुढ़िया मुँह-सिर ढक कर बैठी है और काफी देर से माला जप रही है। इनके अतिरिक्त कुछ और यात्री भी हैं। इसी गाड़ी में भयभीत और सहमा हुआ एक हिन्दू यात्री भी है। हिन्दू यात्रा इस बात को लेकर भयग्रस्त है कि कहीं उसके साथ यात्रा करने वाले मुस्लिम सहयात्रा उसे मार न डालें। जब गाड़ी पाकिस्तान की सीमा को लाँघ कर अमृतसर आ जाती है तब वह यात्री गर्व के साथ अत्यन्त उत्साहित हो जाता है और मुख पर विजयी भाव लिए उन यात्रियों की ओर देखने लगता है जिनसे वह अभी तक भयभीत था। इस कहानी में यह चित्रण किया गया है कि परिस्थितियाँ परिवर्तित होते ही व्यक्ति की मानसिकता भी कितनी जल्दी परिवर्तित हो जाती है।

'वाङ्चू' उनकी लम्बी कहानियों में से एक है। इस कहानी का केन्द्र-बिन्दु एक बौद्ध-भिक्षु है। कहानी के माध्यम से राजनीतिक अन्तर्विरोधों की पड़ताल की गयी है। 'वाङ्चू' भारत में शिक्षा ग्रहण करने वाला प्रवासी छात्र है जो मूल रूप से चीन का निवासी है। वह सामयिक गतिविधियों और घटनाओं से निर्लिप्त रहकर गहन अध्ययन में जुटा रहता है। वह अपने आप में लीन रहकर स्वयं को सुखी अनुभव करता है। वह भारतीयों की सहानुभूति और स्नेह का पात्र भी है। चीन और भारत का युद्ध प्रारम्भ होने पर वह चीन जाता है तो वहाँ की सरकार उसे संदेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए प्रश्नों के चक्रव्यूह में घेर लेती है। वह उनके पेचीदा और तार्किक प्रश्नों के उत्तर न देने पाने फलस्वरूप यातना की परिधि में आ जाता है। चीन से ऊब कर वह भारत लौट कर आता है तो यहाँ भी पहले जैसी स्थिति नहीं पाता और एक चीनी नागरिक होने के कारण संदेह की दृष्टि से देखा-परखा जाता है। वह यह नहीं समझ पाता कि आखिर उसके साथ क्या हो रहा है? दो देशों के बीच युद्ध होने के कारण उपजी त्रासदी में गेहूँ के साथ घुन की तरह पिसता है एक निर्दोष और निस्पृह व्यक्ति। दो राष्ट्रों के मध्य होने वाले राजनीतिक अन्तर्विरोधों का शिकार होता है शिक्षा और संस्कृति की मौन साधना में रत एक अबोध एकान्तवासी।

'मौकापरस्त' कहानी दिन-प्रतिदिन विद्रूपित होती राजनीति का कटु सत्य हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। कहानी के माध्यम से उन राजनीतिज्ञों पर गहरा व्यंग्य किया गया है जो किसी की लाश को भी अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रयोग करने में रंच मात्र भी संकोच नहीं करते। राजनैतिक दलों के नेता भावुकता और मानवीयता से कोसों दूर सिर्फ अवसरवादी होते हैं और ऐसे अवसरों की तलाश में रहते हैं जहाँ वे अपनी राजनैतिक रोटियाँ सेंक सकें। उनका किसी से न कोई

रिश्ता होता है और न कोई सम्बन्ध। वे सिर्फ और सिर्फ राजनीतिज्ञ होते हैं। कहानी में रामलाल जैसे मँजे हुए राजनीतिज्ञ किसी भी प्रकार का कार्य-निष्पदन मनोभावना के वशीभूत होकर नहीं करते बल्कि उसके पीछे उनका एक सुनियोजित षड्यन्त्र होता है। इस कहानी का केन्द्र-बिन्दु एक साधारण पार्टी कार्यकर्त्ता शंभू का शव है। रामलाल पार्टी का दलाल है। रामलाल के प्रयासों से शंभू के शव की मोटर-यात्रा प्रारम्भ होती है। प्रारम्भ में वह सामान्य शव-यात्रा होती है लेकिन बाद में ट्रक, बैंड, माइक, पार्टी कार्यकर्त्ता उससे जुड़ते जाते हैं। माइक से चुनावी नारे बुलन्द किए जाते हैं और शव के साथ विरोधी के मोहल्ले में प्रवेश कर वहाँ के निवासियों की सहानुभूति अर्जित की जाती है। शव के माध्यम से रामलाल की राजनैतिक स्वार्थ-सिद्धि के उपरान्त केवल कुछ बचे-खुचे लोग ही शेष रह जाते हैं जो शव लेकर श्मशान पहुँचते हैं जहाँ शंभू की पत्नी कई घंटों से प्रतीक्षारत होती है। रामलाल शव-यात्रा के प्रारम्भ से अन्त तक ऊँघता रहता है।

'साग-मीट' एक मध्यमवर्गीय परिवार में साग-मीट बनाने वाले घरेलू नौकर जग्गा की कहानी है। इस परिवार के मुखिया को जग्गा इसलिए बहुत प्रिय है कि वह साग-मीट बढ़िया बनाता है। परिवार के मुखिया का छोटा भाई जग्गा की पत्नी से बलात्कार करता है तो वह क्षुब्ध होकर आत्महत्या कर लेती है। जग्गा इस परिवार द्वारा अपने ऊपर किए गए अत्याचार की कथा किसी से न कह कर उसे मन में दबाये वहाँ से पलायन कर जाता है। मुखिया परिवार जग्गा की पत्नी द्वारा की गयी आत्महत्या को कुछ और रंग देकर इस घटना को दबा देता है। इतना सब

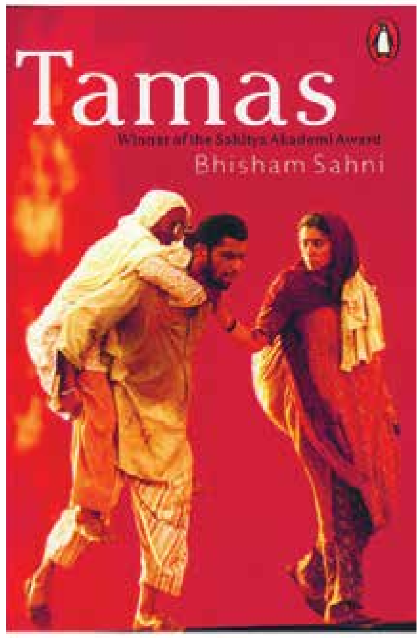

होने के बावजूद वह जग्गा का स्मरण करता है तो सिर्फ इसलिए कि वह बहुत बढ़िया साग-मीट बनाता था।

'तमस' भीष्म साहनी का सबसे प्रसिद्ध, चर्चित और लोकप्रिय उपन्यास है। उन्होंने इस उपन्यास में स्वतन्त्रता से ठीक पहले साम्प्रदायिकता की बैसाखियाँ लगा कर पाशविकता का नंगा नाच किए जाने का चित्रण किया है। समय-विस्तार की दृष्टि से यह केवल पाँच दिनों की कहानी है। पागलपन के घोर अन्धकार में डूबी हुई इस पाँच दिन की कहानी का ताना-बाना लेखक ने इस कलात्मकता के साथ बुना है कि साम्प्रदायिकता का प्रत्येक पहलू तार-तार होकर उद्घाटित हो जाता है और पाठक सम्पूर्ण उपन्यास एक ही बार में पढ़ने के लिए विवश हो जाता है। भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या एक युग पुरानी है और इसके दानवी पंजों से अभी तक देश को मुक्ति नहीं मिल सकी है। स्वतन्त्रता से पूर्व विदेशी शासकों ने भारत-भूमि पर अपने पैर मजबूत करने के लिए साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारकर उन्हें अपनी स्वार्थपूर्ति का माध्यम बनाया था और स्वतन्त्रता के बाद हमारे देश के कतिपय राजनीतिक दल भी इसका वैसा ही घृणित प्रयोग कर रहे हैं। इस समस्त प्रक्रिया में जो तबाही हुई है उसका शिकार बनते रहे हैं वे निर्दोष और निर्धन लोग जो न हिन्दू हैं न मुसलमान बल्कि सिर्फ इन्सान हैं और हैं भारतीय नागरिक। भीष्म साहनी से स्वतन्त्रता से पहले हुए साम्प्रदायिक दंगों को आधार बना कर इस समस्या का सूक्ष्म विश्लेषण किया है और उन विकृत मनोवृत्तियों को उघाड़कर सामने रखा है जिनका दुष्परिणाम भोगने के लिए जनसाधारण को विवश होना पड़ता है।

'तमस' इतना ज्यादा लोकप्रिय हो गया कि भीष्म साहनी ख्यातिलब्ध हो गये। इस उपन्यास के हिन्दी में कई संस्करण प्रकाशित हुए और अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया। 'तमस' नाम से दूरदर्शन धारावाहिक बनाया गया तथा बाद में इसी नाम से फिल्म भी बनायी गयी। साहनी जी को उनकी कई कृतियों के कारण जाना जाता है लेकिन कालजयी उपन्यास 'तमस' के लेखन के लिए उनको सदैव स्मरण किया जायेगा। राजनीतिक कुचक्रों, सामाजिक विद्रूपताओं, विसंगतियों और विभीषिकाओं का दस्तावेज है 'तमस'। ऐतिहासिक होते हुए भी इसमें यथार्थवादी संकल्पनाओं की कमी नहीं है। इसमें देश के बँटवारे को लेकर जो कुछ हुआ उसका यथार्थ चित्रण करने में लेखक ने कोई कोताही नहीं की है। उपन्यास में पात्रों का चयन और चरित्र-चित्रण भी सटीक, समीचीन और सारगर्भित है तथा समय सम्बन्धी पूर्ण सावधानी बरती गयी है। तत्कालीन समस्या पर आधारित होने के कारण इसे समस्या प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास कहा जाना उचित ही है।

भीष्म साहनी अपनी रचनाओं के माध्यम से जो संदेश देना चाहते हैं वह प्रतीकात्मक ढंग से देते हैं। वे पात्रों के माध्यम से उसकी अत्यन्त सूक्ष्म अभिव्यक्ति करते हैं। व्यंग्य उनका सबसे सशक्त माध्यम है। उनके एक अन्य उपन्यास 'कुंतो' की मुख्य पात्र कुंतो है। वास्तव में यह संयुक्त परिवार की त्रासदी की कथा है। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और एकल परिवार का चलन बढ़ रहा है। दूसरों के जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप करने एवं परामर्श देने पर उत्पन्न संकटों, विसंगतियों तथा त्रासदियों का सटीक चित्रण 'कुंतो' में किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि हम न जाने कितने लोगों को अनावश्यक सलाह देकर उनके जीवन को सुखों की जगह दुःखों से भर देते हैं। लोगों को चाहिए कि वे इससे बचें।

'तमस' के बाद 'कुंतो' उनका प्रमुख उपन्यास है। इस उपन्यास में जयदेव अपनी मौसेरी बहन सुषमा की ओर आकर्षित है और उससे विवाह का भी इच्छुक है। जब उसे यह जानकारी होती है कि सुषमा का विवाह कहीं और किया जा रहा है तो वह अपने छोटे भाई सहदेव के सहयोग से वर से सम्बन्धित मिथ्या सूचना देकर सम्बन्ध तुड़वा देता है। द्वार पर आयी बारात अपमान का घूँट पीकर वापस चली जाती है। जयदेव का कॉलेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर के प्रति सम्मान का भाव है। प्रोफेसर जयदेव का सुषमा के प्रति लगाव देख कर उसे दूर करने में लग जाते हैं। वे जयदेव को ऊँच-नीच समझाते हुए कहते हैं कि उसका सुषमा से विवाह करना भारतीय संस्कृति और परम्परा के अनुसार पूर्णरूपेण अशोभनीय है क्योंकि वह उसकी मौसेरी बहन है। प्रोफेसर के इस कथ्य के पीछे उनका स्वार्थ छिपा हुआ है। वे जयदेव की योग्यता देख कर उसका विवाह अपनी छोटी बहन कुंतो से करना चाहते हैं। प्रोफेसर अपने उद्देश्य में सफल हो जाते हैं और जयदेव का विवाह कुंतो से हो जाता है किन्तु विवाहोपरान्त भी जयदेव का सुषमा के प्रति भटकाव बना रहने से विवाह सफल नहीं होता। कुंठाग्रस्त जयदेव आजीविका के लिए कुंतो सहित मुम्बई चला जाता है। इस भटकाव में कुंतो और उनके दोनों बच्चे उपेक्षित जीवन व्यतीत करते हैं। अन्ततः कुंतो की मृत्यु हो जाती है और जयदेव प्रायश्चित करता रह जाता है। अपराधबोध से ग्रस्त जयदेव अपने मित्र गिरीश पर सुषमा से विवाह करने के लिए दबाव डालता है। गिरीश का विवाह सुषमा से हो जाता है किन्तु वह सफल नहीं होता। सुषमा गिरीश के सामीप्य के लिए तड़पती रहती है लेकिन वह अपनी किसी विधवा दीदी के प्रति आकर्षित है और सुषमा के अनुनय-विनय करने पर भी उसे ठुकरा कर चला जाता है। सुषमा के हिस्से में आता है अपमान और दुःख भरा जीवन।

प्रोफेसर का छोटा भाई धनराज है। वह सिंगापुर में सात वर्ष व्यतीत कर डॉक्टर बन कर भारत लौटा है। भारत में उसकी बेडौल पत्नी थुलथुल प्रतीक्षारत है। धनराज उसकी उपेक्षा करके अपनी प्रेमिका डार्की डार्लिंग के पास सिंगापुर जाने की जुगाड़ में है। प्रोफेसर डार्की डार्लिंग तक यह जानकारी पहुँचा देता है कि धनराज भारत में पहले से विवाहित है। यह पता चलने पर डार्की डार्लिंग उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेती है। प्रोफेसर धनराज का ध्यान डार्की डार्लिंग की तरह एक स्थानीय लड़की कोकिला की ओर आकर्षित कर देते हैं। प्रोफेसर थुलथुल को यह समझाते हैं कि वह प्रयास कर धनराज से संतान प्राप्त कर उसे अपने से बाँध ले। धनराज को जब थुलथुल के गर्भवती होने की जानकारी मिलती है तो वह उसे ठुकरा देता है। इससे क्षुब्ध होकर थुलथुल जल कर मर जाती है। थुलथुल की मृत्यु होते ही वह कोकिला से विवाह कर लेता है। जयदेव जलवायु परिवर्तन के लिए अपनी विद्या के घर श्रीनगर (कश्मीर) जाता है। वहाँ वह विद्या को अल्पायु में चार-चार बच्चों को जन्म देने पर व्यंग्य करता है। विद्या को यह व्यंग्य चुभता रहता है। जब विद्या को यह पता चलता है कि वह पाँचवीं बार गर्भवती है तो गर्भपात कराने के प्रयास में उसकी मृत्यु हो जाती है। विद्या का सम्पूर्ण परिवार रोता-बिलखता रह जाता है। इस प्रकार अपनों के द्वारा निकटवर्ती लोगों के जीवन में अनावश्यक ताक-झाँक तथा दख़लंदाजी के कारण अनेक परिवारों की बरबादी की कथा है 'कुंतो'।

भीष्म साहनी को उनके उपन्यासों के साथ-साथ नाटकों के लिए भी जाना जाता है। नये दौर के नाटककारों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। उनके नाट्य-जीवन का प्रारम्भ रावलपिण्डी के एक कॉलेज से हुआ। भीष्म के बड़े भाई और सुप्रसिद्ध फिल्म अभिनेता बलराज साहनी उनके सहयोगी बने। इसके बाद बलराज साहनी के साथ ही भीष्म साहनी भी 'इंडियन पीपुल्स थियेटर एसोसिएशन' (इप्टा) से जुड़े। भीष्म साहनी ने इप्टा से जुड़कर उसके लिए एक नाटक 'भूलगाड़ी' तैयार किया। इस नाटक को सुप्रसिद्ध फिल्म निर्माता ख़्वाजा अहमद अब्बास ने साम्प्रदायिकता विरोधी नाटक बना कर प्रस्तुत किया।

'हानूश', 'कबिरा खड़ा बाजार में' तथा 'माधवी' उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'साठोत्तर हिन्दी नाटक में मिथक तत्व' शीर्षक से भीष्म साहनी के इन नाटकों को शोध का विषय बनाकर पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त कर चुकीं डॉ. नीलम राठी के अनुसार, "...नाटक पढ़े तो पढ़ती ही रह गयी। वहीं मुझे भीष्म साहनी को एक नाटककार के रूप में जानने का अवसर मिला। मैंने उनके नाटक देखते हुए उन्हें एक दर्शक के रूप में भी समझा। शोध के दौरान उनसे मिलना हुआ, वे बड़े तपाक से मिले। उनसे बातचीत में पता चला कि वे प्रगतिशील विचारधारा के हैं लेकिन साहित्य में उनकी विचारधारा सिर्फ और सिर्फ मानवीय है। समाज में जहाँ कहीं वे अराजकता देखते थे उनकी लेखनी अपना काम करना शुरू कर देती थी। उनके नाटकों में समाजबोध की अभिव्यक्ति जीवन की संवेदना के रूप में हुई है। उनके नाटकों के केन्द्र में शोषित जनता है।"

'हानूश' उनका चर्चित नाटक है। यह एक चेक दंतकथा पर आधारित नाटक है। यह नाटक एक मीनारी घड़ी बनाने वाले घड़ी के कारीगर हानूश की संघर्ष-गाथा है। नाटक में मध्य युग की अमानवीयता को दर्शाया गया है। नाटक में हानूश का कला-कौशल भी देखते ही बनता है। इसमें बादशाह द्वारा अन्धा करवा दिए जाने के बावजूद वह अपनी बनायी परन्तु खराब हो चुकी घड़ी को ठीक करने में सफल हो जाता है। घड़ीसाज जब अपना देश छोड़ कर जाना चाहता है तो उसकी पत्नी उसके साथ जाने से मना कर देती है क्योंकि वह राज्याश्रित है। अन्त में हानूश अपने मित्रों की सहायता से देश छोड़ कर चला जाता है।

'माधवी' महाभारत की एक कथा पर आधारित उनका चर्चित नाटक है। नाटक में विश्वामित्र का एक शिष्य गालव अपनी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण करने के उपरान्त गुरु-दक्षिणा देने का बाल-हठ करता है। विश्वामित्र गालव के निरन्तर बाल-हठ करने पर क्रोधित होकर उससे आठ सौ अश्वमेधी घोड़े माँग लेते हैं। गालव अश्वमेधी घोड़ों की खोज करते हुए दानवीर राजा ययाति के पास पहुँचता है और उन्हें विश्वामित्र को गुरु-दक्षिणा में आठ सौ अश्वमेधी घोड़े देने की बात बताता है। राजा ययाति राज-काज से मुक्त हो चुके थे। वे एक साथ इतने घोड़ों की व्यवस्था कैसे करें और ऐसा न करने पर उनकी दानवीरता की छवि धूमिल होने का भय था। राजा ययाति सोच-विचार कर अन्त में एक युक्ति निकालते हैं। ययाति की पुत्री माधवी विलक्षण गुणों से परिपूर्ण थी। ययाति माधवी को गालव को यह कह कर सौंप देते हैं कि जो राजा आठ सौ अश्वमेधी घोड़ों की व्यवस्था कर सके वह उस राजा को माधवी सौंप कर घोडे ले ले और अपनी गुरु-दक्षिणा की प्रतिज्ञा को पूर्ण करे। माधवी को वरदान था कि उसके गर्भ से उत्पन्न बालक चक्रवर्ती राजा बनेगा। गालव माधवी को तीन राजाओं के पास पुत्र उत्पन्न करने के लिए भेजता है। अपना कार्य पूर्ण करने के बाद वापस लौटने पर वह गालव के साथ रहना चाहती है लेकिन गालव उसे ठुकरा देता है। माधवी गालव के सामने एक प्रश्नचिन्ह छोड़ कर चली जाती है। वास्तविकता तो यह है कि भीष्म साहनी ने 'माधवी' के माध्यम से जो संदेश दिया है उससे पाठक के मन में भविष्य के सामाजिक आन्दोलनों की परिकल्पना सहज ही उद्घाटित हो जाती है। 'साहित्य में स्त्री-विमर्श' वर्तमान समय का महत्वपूर्ण मुद्दा है लेकिन यह मुद्दा आज से तीन दशक पूर्व उनके द्वारा सृजित नाटक 'माधवी' में उठाया जा चुका है। इसीलिए उनका साहित्य कालजयी और समय-सीमाओं से परे है। अपने अविकल साहित्य में उन्होंने आदर्श व्यक्ति और आदर्श समाज के स्वरूप को शाश्वत बनाये रखा है।

'मुआवजे' उनका एक अन्य लोकप्रिय नाटक है। यह नाटक भ्रष्टाचार में लिप्त मन्त्री, अधिकारी, नेता और जनता की विद्रूपताओं को रेखांकित करता है। नाटक शहर में दंगा भड़कने की आशंका से प्रारम्भ होता है। बटन फैक्टरी का मालिक नागरिकों के प्रतिनिधि मंडल का अगुआ बन कर पुलिस कमिश्नर से भेंट करता है। पुलिस कमिश्नर दंगे से पहले ही उसके बाद की तैयारियों में व्यस्त है। मन्त्री भी दंगे से पूर्व ही दंगें के बाद जारी किया जाने वाला बयान लिखवा कर रख लेते हैं। उनका सचिव सक्सेना पूर्व में भड़के दंगों के अवसर पर पिछले मंत्री के लिए लिखे गये बयान को पहले से सँभाल कर रखता आया है। पुलिस कमिश्नर से भेंट कर यह अनुरोध किया जाता है कि दंगों को रोका जाये। इसी बीच एक शातिर अपराधी नेता बन जाता है। दंगों का सबसे ज्यादा दुश्प्रभाव निम्न वर्ग पर पड़ता है। दंगों के बाद निम्न वर्ग में मुआवजे लेने की प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाती है।

भीष्म साहनी ने कहानी, उपन्यास, नाटक के साथ-साथ बच्चों के लिए भी कहानियाँ लिखीं जो बहुत लोकप्रिय हुईं। 'गुलेल का खेल' उनकी सर्वाधिक चर्चित बाल कहानी है। 'वापसी', 'अनोखी हड्डी', 'गड़ा हुआ खजाना' उनकी अन्य प्रसिद्ध बाल कहानियाँ हैं। उनकी इन कहानियों को राजकमल प्रकाशन, 'नंदन' तथा

'बाल भारती' आदि पत्रिकाओं द्वारा धरोहर के रूप में पुनः प्रकाशित किया गया है। उन्होंने इन बाल कहानियों के अतिरिक्त 13 अप्रैल, 1919 को घटित हुए जलियाँवाला बाग हत्याकांड की हृदय-विदारक घटना को कथा के रूप में लिखा है। इस कहानी को नेशनल बुक ट्रस्ट (एन.बी.टी.), नयी दिल्ली ने नेहरू बाल पुस्तकालय योजना के अन्तर्गत प्रकाशित किया है। उनकी बाल कहानियों में नैतिकता का संदेश दिया गया है जो बालकों को कर्त्तव्य-पथ पर निरन्तर गतिशील बने रहने की प्रेरणा देता है।

रंगमंच के कुशल अभिनेता तथा निर्देशक होने के कारण अभिनय उनकी रग-रग में समाया हुआ था। अपने बड़े भाई और विख्यात फिल्म अभिनेता बलराज साहनी के कारण उनका फिल्म जगत से जुड़ाव होना स्वाभाविक ही था। यद्यपि उन्होंने गिनी-चुनी फिल्मों में ही अभिनय किया लेकिन वे सभी भारतीय सिनेमा के इतिहास में मील का पत्थर सिद्ध हुईं। सईद अख़्तर मिर्जा की भीष्म साहनी द्वारा अभिनीत पहली फिल्म 'मोहन जोशी हाजिर हो' (1984) देश की लचर कानून व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करती है। इस फिल्म में भीष्म साहनी ने मोहन जोशी की भूमिका निभायी थी। इस फिल्म को सामाजिक उद्देश्यपूर्ण फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था। उनकी कालजयी कृति 'तमस' पर आधारित सुप्रसिद्ध फिल्कार गोविन्द निहलानी द्वारा इसी नाम से बनायी गयी फिल्म 'तमस' (1988) भारत विभाजन की त्रासदी पर बनी एक अत्यन्त संवेदनशील तथा मार्मिक फिल्म है। इस फिल्म में भीष्म साहनी ने हरनाम सिंह का रोल किया था। इस फिल्म की गिनती सर्वकालिक श्रेष्ठ हिन्दी कला फिल्मों में की जाती है। कुमार साहनी की फिल्म 'कस्बा' (1991) सुप्रसिद्ध रूसी लेखक अंतोन चेखव की चर्चित कृति 'इन द रेवाइन' पर आधारित है। यह फिल्म भ्रष्टाचार और अपराध के बीच जीवन को ढो रहे कलाकारों के अन्तर्मन की व्यथा को रेखांकित करती है। इस फिल्म में उन्होंने एक छोटी-सी भूमिका निभायी थी। राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम (एन.एफ.डी.सी.) के सहयोग से बनी इस फिल्म को 'फिल्म फेयर' का 'बेस्ट क्रिटिकल एक्लैम्ड फिल्म' का अवार्ड मिला था।

'लिटिल बुद्धा' (1993) बरनार्डो बार्टोलूसी द्वारा निर्देशित एक इतालवी-फ्रेंच फिल्म है। इस फिल्म में उन्होंने एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था। यह फिल्म बौद्ध गुरु लामा दोरजी के पुनर्जन्म से सम्बन्धित है। 'मिस्टर ऐंड मिसेज अय्यर' (2002) भीष्म साहनी द्वारा अभिनीत अति विशिष्ट फिल्मों में से एक है। इस फिल्म में उन्होंने एक मुस्लिम पात्र इकबाल अहमद की भूमिका निभायी थी। यह फिल्म साम्प्रदायिकता, धार्मिक उन्माद, कट्टरता और रूढ़िवादिता पर

कठोर प्रहार करती है। सुप्रसिद्ध फिल्म निर्देशक अपर्णा सेन द्वारा निर्देशित यह फिल्म उस्ताद जाकिर हुसैन के पार्श्व संगीत तथा कलाकारों के बेहतरीन अभिनय के लिए आज भी याद की जाती है।

कथाकार, नाटककार, अनुवादक तथा फिल्म निर्माता एवं निर्देशक डॉ. गौरी शंकर रैणा ने भीष्म साहनी की सुप्रसिद्ध कहानी 'चीफ़ की दावत' पर आधारित टेली फिल्म 'चीफ़ की दावत' (2004) का निर्माण व निर्देशन किया है। टेली फिल्म 'चीफ़ की दावत' का प्रसारण कई बार दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर किया जा चुका है। इस टेली फिल्म को बहुत प्रसिद्धि मिली थी। इस फिल्म में आशा शर्मा, योगेन्द्र टिक्कू, तरन्नुम आदि ने अभिनय किया था। फिल्म निर्माता व निर्देशक एम.के. रैणा ने भीष्म साहनी के नाटक 'कबिरा खड़ा बाजार में' पर आधारित टेली फिल्म का निर्देशन किया है। सबा जैदी द्वारा 1984 में निर्मित यह टेली फिल्म अपनी सामाजिक स्वीकार्यता के कारण दूरदर्शन के राष्ट्रीय चैनल पर कई बार प्रसारित की जा चुकी है।

भीष्म साहनी आधुनिक काल के भारतीय लेखकों में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वे मुंशी प्रेमचन्द के बाद की परम्परा के संवाहक हैं। सही अर्थों में वे एक समर्पित लेखक थे। उन्होंने साहित्य की जिस विधा में भी लिखा उसी में उत्कृष्ट रचनाएँ दी। उन्होंने अपनी अलग लेखन शैली अपना कर श्रेष्ठ साहित्य की रचना की। उनके द्वारा लिखी गयी अधिकांश पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध और चर्चित हुईं। उनकी पहली कहानी 'नीली आँखें' मुंशी प्रेमचन्द द्वारा स्थापित तथा अमृत राय के सम्पादन में प्रकाशित होने वाली सुप्रसिद्ध पत्रिका 'हंस' में प्रकाशित हुई थी। 'झरोखे' (1967), 'कड़ियाँ' (1971), 'तमस' (1973), 'बसंती' (1979), 'मय्यादास की माड़ी' (1987), 'कुंतो' (1993), 'नीलू नीलिमा नीलोफर' (2000) उनके उपन्यास हैं। 'भाग्यरेखा' (1953), 'पहला पाठ' (1956), 'भटकती राख' (1965), 'पटरियाँ' (1973), 'वाङ्चू' (1978), 'शोभा यात्रा' (1981), 'निशाचर' (1983), 'पाली' (1989), 'डायन' (1996), 'प्रतिनिधि कहानियाँ' (2005), 'मेरी प्रिय कहानियाँ' (2005), 'हिन्दी कहानी संग्रह' (2014) उनके कहानी संग्रह हैं। 'आधुनिक हिन्दी उपन्यास' (1976) उनके द्वारा सम्पादित महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'हानूश' (1977), 'कबिरा खड़ा बाजार में' (1981), 'माधवी' (1982), 'मुआवजे' (1993), 'रंग दे बसन्ती चोला' (1988), 'आलमगीर' (1999) उनकी नाट्य कृतियाँ हैं। 'मेरे भाई बलराज' (1985) उनकी जीवनी है। 'अपनी बात' (1990) उनका निबन्ध संग्रह है तो 'आज के अतीत' (2003) उनकी आत्मकथा। 'गुलेल का खेल' (1981) उनकी बाल कथा है। उन्होंने रूसी लेखकों टालस्टॉय, आस्ट्रोवस्की, चिंगीज आइतमातोव की अनेक पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया। कथाकार यशपाल, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर तथा रमाकान्त की कहानियों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। अपने उपन्यास 'तमस' और 'मय्यादास की माड़ी' का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इसके साथ ही आकाशवाणी (ऑल इंडिया रेडियो) तथा दूरदर्शन के लिए अपनी चौदह प्रसिद्ध कहानियों 'चीफ़ की दावत', 'साग-मीट', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'निमित्त', 'खिलौने', 'आवाज', 'झूमर', 'झुटपुटा', 'मकबरा शाह शेर अली', 'गंगो का जाया', 'खून का रिश्ता', 'समाधि भाई रामसिंह', 'तद्गति', 'कंठहार' का रेडियो और टेली रूपान्तर किया।

भीष्म साहनी ने अपने कैरियर का प्रारम्भ रावलपिण्डी (अब पाकिस्तान) में अपने पैतृक व्यापार से किया। इसके साथ ही साथ उन्होंने रावलपिण्डी के डिग्री कॉलेज में ऑनरेरी प्रोफेसर से अपने जीवन का सफर शुरू किया। देश के विभाजन के बाद उन्होंने भारत आकर पत्रकारिता का कार्य किया। अम्बाला के एक कॉलेज और अमृतसर के खालसा कॉलेज में प्रोफेसर रहे। इसके बाद वे दिल्ली विश्वविद्यालय के दिल्ली कॉलेज (अब डॉ. जाकिर हुसैन कॉलेज) में अंग्रेजी साहित्य के प्रोफेसर रहे और वहीं से सेवानिवृत्त हुए। उन्होंने सन् 1957 से 1963 तक विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को (रूस) में अनुवादक का कार्य किया। सन् 1965 से 1967 तक लोकप्रिय कथा प्रधान पत्रिका 'नयी कहानियाँ' के सम्पादक रहे। सन् 1948 में 'इंडियन पीपुल्स थियेटर एसोसिएशन' (इप्टा) के सदस्य बने। सन् 1973 से 1986 तक वे प्रगतिशील लेखक संघ के राष्ट्रीय महासचिव रहे। सन् 1980-81 में थियेटर दल 'प्रयोग' के अध्यक्ष रहे। साहित्य अकादमी की पत्रिका 'उत्तरा' के सम्पादक रहे।

सन् 1975 में उन्हें 'तमस' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। सन् 1975 में ही उन्हें पंजाब सरकार के भाषा विभाग की ओर से शिरोमणि लेखक सम्मान दिया गया। सन् 1980 में एफ्रो एशियन राइटर्स एसोसिएशन का लोटस अवार्ड दिया गया। सन् 1983 में सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार प्रदान किया गया। सन् 1983 में ही 'बसन्ती' उपन्यास पर उत्तर प्रदेश सरकार के स्वायत्तशासी

संस्थान उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का प्रेमचन्द पुरस्कार प्रदान किया गया। सन् 1988 में अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा संस्थान, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) ने उन्हें डी.लिट्. की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया। सन् 1998 में राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने उन्हें साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए पद्म भूषण सम्मान प्रदान कर गौरवान्वित किया। सन् 1999 में दिल्ली सरकार के स्वायत्तशासी संस्थान हिन्दी अकादमी का शलाका सम्मान प्रदान किया गया। सन् 2000 में उन्हें मध्य प्रदेश सरकार का मैथिलीशरण गुप्त सम्मान दिया गया। सन् 2001 में संगीत नाटक अकादमी अवार्ड प्रदान किया गया। सन् 2002 में बेस्ट हिन्दी फिक्शन राइटर के लिए सर सैय्यद नेशनल अवार्ड दिया गया। सन् 2002 में ही उन्हें भारत सरकार के स्वायत्तशासी संस्थान साहित्य अकादमी के अध्यक्ष रमाकान्त रथ द्वारा साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्यता प्रदान की गयी। सन् 2004 में रूस में हुए इंटरनेशनल थियेटर फेस्टिवल में उनके नाटक 'माधवी' के लिए कलर ऑफ नेशन अवार्ड दिया गया। मध्य प्रदेश साहित्य कला परिषद् की ओर से उनके नाटक 'हानूश' के लिए सम्मान प्रदान किया गया। भारत के अनेक विश्वविद्यालयों ने उनकी रचनाधर्मिता का सम्मान करते हुए उन्हें डी.लिट्. की उपाधि से सम्मानित किया। देश-विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध कार्य हो चुके हैं और हो रहे हैं। 11 जुलाई, 2003 को 88 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया।

भीष्म साहनी अपने युग के वरिष्ठ लेखकों में से एक थे। उन्होंने न केवल साहित्य की प्रत्येक विधा में महत्वपूर्ण कृतियों की रचना की वरन् लेखक के समानान्तर भारतीय रंगमंच और सिनेमा में भी उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक विषमता व रूढ़िवादिता के बंधनों को तोड़ कर आगे बढ़ने का संदेश दिया। उनकी कृतियों में मानवीय मूल्यों, करुणा व नैतिकता के दर्शन होते हैं। वामपंथी विचारधारा से जुड़े होने के बावजूद वे मानवीय मूल्यों को कभी आँखों से ओझल नहीं होने देते थे। आपाधापी और उठापटक के इस युग में उनका व्यक्तित्व एकदम अलग था। उन्हें उनके लेखन के लिए तो स्मरण किया ही जाएगा साथ ही अपनी सहृदयता के लिए भी वे चिरस्मरणीय रहेंगे। वे भारतीय कथा साहित्य के गौरव हैं। आने वाली पीढ़ियाँ उनके लेखन से सदैव प्रेरणा लेती रहेंगी। एक निष्ठावान साहित्यकार के नाते वे पाठकों के मनो-मस्तिष्क पर सदैव अपना जादुई प्रभाव छोड़ने में सफल रहे हैं। उनका विराट् लेखन अनन्तकाल तक उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखेगा।

सलाहकार (राजभाषा),
भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण,
मोहल्ला-हाता करम खाँ,
फर्रुखाबाद-209625 (उत्तर प्रदेश)

नलिन विलोचन शर्मा

प्रो. गोपेश्वर सिंह

प्रो. गोपेश्वर सिंह हिन्दी के प्रज्ञावान आलोचक तथा लिखित व दिखित प्राध्यापक हैं। साहित्य के साथ सामाजिक-सांस्कृतिक विषयों पर हिन्दी की प्राय: सभी महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेखन। साहित्य अकादमी से प्रकाशित 'नलिन विलोचन शर्मा' मोनोग्राफ, साहित्य से संवाद और आलोचना का नया पाठ के अतिरिक्त 'भक्ति आन्दोलन के सामाजिक आधार', 'नलिन विलोचन शर्मा' संकलित निबंध और 'कल्पना का उर्वशी विवाद' संपादित पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं।

आचार्य नलिन विलोचन शर्मा का जन्म 18 फरवरी, 1916 को पटना में हुआ था और मृत्यु मात्र साढ़े पैंतालीस साल की उम्र में 12 सितम्बर, 1961 को पटना में ही हुई। वे दर्शन और संस्कृत के महान विद्वान महामहोपाध्याय पं. रामवतार शर्मा के ज्येष्ठ पुत्र थे। कहावत है कि बरगद की छाया में उगा हुआ पौधा बड़ा वृक्ष नहीं बनता, लेकिन नलिन जी इसके अपवाद सिद्ध हुए। वे स्वनाम धन्य पिता के स्वनाम धन्य पुत्र थे। उनके व्यक्तित्व-निर्माण में पिता के पांडित्य और उनकी प्रगतिशील दृष्टि की महत्वपूर्ण भूमिका थी। रामावतार शर्मा संस्कृत और दर्शन के ख्यातिप्राप्त विद्वान तो थे ही, संस्कृत, अंग्रेजी, लैटिन, फ्रैंच, जर्मन आदि भाषाओं पर भी अधिकार रखते थे। नलिन जी को पिता का भाषा-ज्ञान विरासत में मिला। संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी तीनों भाषाओं पर उनका एक-सा अधिकार था। कामचलाऊ ज्ञान जर्मन और फ्रेंच का भी था। लेकिन उनके व्यक्तित्व-निर्माण में पिता की पदार्थवादी दृष्टि की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। यूँ तो रामावतार शर्मा संस्कृत वांग्मय के प्रकांड पंडित थे, लेकिन अन्य पंडितों की तरह वे दकियानूश और पोंगापंथी नहीं थे। वे पदार्थवादी थे और शास्त्र के नाम पर पोंगापंथ और अंधविश्वास का प्रचार करने वाले पंडितों से बराबर लोहा लिया करते थे। वे हिन्दी नवजागरण के अग्रदूतों में से एक थे और 1916 में जबलपुर में सम्पन्न हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 16वें अधिवेशन की उन्होंने अध्यक्षता की थी। नलिन जी के व्यक्तित्व-निर्माण में उस विद्वान पिता की पदार्थवादी और प्रगतिशील दृष्टि की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता।

नलिन जी ने पहले संस्कृत में एम.ए. किया और जैन कॉलेज, आरा में संस्कृत के प्राध्यापक हो गए। बाद में उन्होंने हिन्दी से एम.ए. किया और उनकी नियुक्ति पटना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में हो गई, जहाँ वे प्रोफेसर और अध्यक्ष हुए। आमतौर से हिन्दी अध्यापकों की अंग्रेजी और संस्कृत में स्थिति अधिक मजबूत नहीं होती, लेकिन नलिन जी इसके अपवाद थे। हिन्दी के साथ उनका समान अधिकार संस्कृत और अंग्रेजी भाषा पर भी था। यही कारण है कि युवाकाल में ही उनके नाम में आचार्य विशेषण लगाकर लोग संबोधित करने लगे। संस्कृत भाषा पर सहज अधिकार होने के कारण नलिन जी भारतीय वांग्मय की प्राणधारा का संधान करने में सहज ही सक्षम थे। इसलिए उनके चिंतन और लेखन में भारतीय वांग्मय की पदार्थवादी परम्परा का प्रवाह है। अंग्रेजी ज्ञान के कारण पश्चिम के साहित्य और वहाँ साहित्य-दृष्टि में आ रहे बदलावों का उन्हें अच्छा ज्ञान था। इस कारण उनकी रचना और आलोचना में विलक्षण नवीनता और मौलिकता प्रकट हुई, जिसे न तब ठीक-ठीक समझा गया और अब भी कम ही समझा जाता है।

नलिन विलोचन शर्मा को बहुत कम उम्र मिली। मात्र साढ़े पैंतालीस साल की उम्र में उनकी मृत्यु हो गयी, लेकिन कम उम्र के बावजूद कविता, कहानी, आलोचना, निबंध, जीवनी आदि विधाओं में उन्होंने भरपूर लेखन किया। उनके जीवन-काल में 'दृष्टिकोण', 'साहित्य का इतिहास-दर्शन' शीर्षक पुस्तकें आलोचना और इतिहास की प्रकाशित हुईं। 'नकेन के प्रपद्य' शीर्षक से प्रपद्यवादी कविताओं का समवेत संग्रह प्रकाशित हुआ। 'विष के दाँत' तथा 'सत्रह अप्रकाशित पूर्व छोटी कहानियाँ' नामक कहानी संकलन प्रकाशित हुए। अंग्रेजी में लिखी जगजीवन राम की जीवनी भी उनके जीवन-काल में प्रकाशित हुई। उनके निधन के बाद 'मानदंड', 'हिन्दी उपन्यास-विशेषतः प्रेमचन्द', 'साहित्य तत्व और आलोचना' तथा 'नलिन विलोचन शर्माः संकलित निबंध'

नामक आलोचना पुस्तकें प्रकाशित हुईं। 'नकेन-2' शीर्षक से प्रपद्यवादी कविताओं का संग्रह भी छपा, लेकिन ये सारी किताबें भी आज ठीक से पाठकों के लिए उपलब्ध नहीं हैं। उनकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं जिन्हें संग्रहित करना एक बड़ा काम है। उनती पत्नी कुमुद शर्मा ने छः खंडों में उनकी रचनावली तैयार की थी और एक प्रकाशक को प्रकाशनार्थ सौंपा भी था, लेकिन उस प्रकाशक की लापरवाही और एक विश्वविद्यालय की कृपा से वह पांडुलिपि गायब हो गयी। इस तरह हिन्दी का एक बहुत ही महत्वपूर्ण आलोचक और रचनाकार अपनी सम्पूर्णता में हिन्दी जगत के सामने नहीं आ सका। नलिन विलोचन शर्मा के मूल्यांकन में उनके साहित्य की अनुपलब्धता एक बड़ी चुनौती है।

नलिन विलोचन शर्मा ने अनेक विधाओं में लिखा है, लेकिन मुझे लगता है कि हिन्दी साहित्य को उनकी सबसे बड़ी देन उनकी आलोचना के क्षेत्र में है। मौलिक दृष्टि, दुर्लभ वैदुष्य और चिंतनपूर्ण लेखन के द्वारा उन्होंने आलोचना का नया मानदंड निर्मित किया। अपने चिंतनपूर्ण और बहसतलब आलोचनात्मक लेखों, साहित्यिक टिप्पणियों और पुस्तक समीक्षाओं के द्वारा वे हिन्दी संसार को नए ढंग से आन्दोलित करते रहे। वे नए-पुराने सभी लेखकों के बीच आलोचक-रूप में समान रूप से प्रतिष्ठित थे। पुराने साहित्य पर यदि उनकी राय सुनी जाती थी तो नए साहित्य पर भी। उनकी दूसरी देन कहानीकार के रूप में है। नलिन विलोचन शर्मा हिन्दी के विलक्षण कहानीकार थे। उनका रचनाकार व्यक्तित्व कविता के साथ कहानी लेखन के क्षेत्र में भी समान रूप से सक्रिय था। उनकी साहित्यिक देन का तीसरा क्षेत्र कविता है, जिसमें उन्हें ज्यादा प्रसिद्धि मिली। प्रपद्यवाद के प्रवर्तकों में से पहला नाम उन्हीं का आता है। नलिन विलोचन शर्मा की चौथी देन निबंधों के क्षेत्र में हैं। जहाँ उनकी आधुनिक दृष्टि के दर्शन होते हैं। लेकिन आइए सबसे पहले प्रपद्यवादी कवि के रूप में उनका परिचय प्राप्त करें।

प्रपद्यवाद को नकेनवाद भी कहा जाता है। प्रपद्यवादी कविताओं का पहला संकलन 'नकेन के प्रपद्य' शीर्षक से 1956 में प्रकाशित हुआ। जिसमें नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश की कविताएँ संकलित थीं। नकेन इन तीनों कवियों के नामों के प्रथमाक्षरों को मिलाने से बना था। इसलिए इनकी कविताएँ प्रपद्यवाद और नकेनवाद दोनों नामों से पुकारी जाती हैं। पद्य में 'प्र' उपसर्ग लगाने से प्रपद्य बना है जिसका अर्थ किया गया है–प्रयोगवादी पद्य। प्रपद्यवादी अपने को वास्तविक प्रयोगवादी और अज्ञेय आदि को प्रयोगशील कवि मानते थे। प्रपद्यवादियों के अनुसार प्रयोग उनका साध्य है, जबकि अज्ञेय आदि के लिए साधन। प्रपद्यवाद छायावाद की तरह कोई स्वतः स्फूर्त आन्दोलन नहीं था। यह एक संगठित और सुविचारित काव्यान्दोलन था। यह संगठन मात्र तीन कवियों का था और ये तीनों कवि एक ही नगर पटना में रहते थे। तीनों सुशिक्षित थे और देश-विदेश के काव्यान्दोलनों के गहरे अध्येता था। उन्होंने प्रपद्यवाद नाम से जिस काव्यान्दोलन का सूत्रपात किया उसका एक-एक शब्द और सिद्धांत सुविचारित था। वे सचेत ढंग से हिन्दी कविता को अपनी प्रपद्यवादी कविताओं के जरिए विश्व कविता के बौद्धिक धरातल तक ले जाना चाहते थे। वे कविता में भावुकता के विरोधी थे और उसमें बौद्धिकता तथा वैज्ञानिकता के योग से नयापन पैदा करने के पक्षधर थे। नलिन विलोचन शर्मा ने विनोद भाव से एक द्विपदी लिखी थी जो प्रपद्यवादी कविता के नए मिज़ाज़ की सूचना देती थी--

"दिल तो अब बेकार हुआ
जो कुछ है सो ब्रेन,
गाय हुई बकेन है,
कविता हुई नकेन।"

तात्पर्य यह कि कविता बौद्धिक रूप से सघन और गाढ़ी होनी चाहिए, उसमें भावुकता की मिलावट बिलकुल नहीं होनी चाहिए।

प्रपद्यवाद या नकेनवाद आलोचकों की दी हुई संज्ञा नहीं है। ये दोनों नाम तीनों कवियों द्वारा अपने लिए अपनाए गए नाम हैं। 'नकेन के प्रपद्य' नामक काव्य संकलन में प्रपद्यवाद के सिद्धांत-सूत्रों की घोषणा 'प्रपद्य द्वादश सूत्री' शीर्षक से की गई है। यह 'प्रपद्य द्वादश सूत्री' उन कवियों के अनुसार 'प्रपद्यवाद के घोषणापत्र का प्रारूप' है। प्रपद्यवादी कविताओं को समझने के लिए इन सिद्धांत-सूत्रों को समझना आवश्यक है। ये सिद्धांत-सूत्र हैं–

1. प्रपद्यवाद भाव और व्यंजना का स्थापत्य है।

2. प्रपद्यवाद सर्वतंत्र-स्वतंत्र है, उसके लिए शास्त्र या दल निर्धारित अनुपयुक्त है।

3. प्रपद्यवाद महान पूर्ववर्तियों की परिपाटियों को भी निष्प्राण मानता है।

4. प्रपद्यवाद दूसरों के अनुकरण की तरह अपना अनुकरण वर्जित मानता है।

5. प्रपद्यवाद को मुक्त काव्य नहीं, स्वच्छंद काव्य की स्थिति अभीष्ट है।

6. प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है, प्रपद्यवादी साध्य।

7. प्रपद्यवाद की दृक्वाक्यपदीय प्रणाली है।

8. प्रपद्यवाद के लिए जीवन और कोष कच्चे माल की खान हैं।

9. प्रपद्यवादी के प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छंद का स्वयं निर्माता है।

10. प्रपद्यवाद दृष्टिकोण का अनुसन्धान है।

11. प्रपद्यवाद मानता है कि पद्य में उत्कृष्ट केन्द्रण होता है और यही गद्य और पद्य में अंतर हैं।

12. प्रपद्यवाद मानता है कि चीजों का एकमात्र सही नाम होता है।

बाद में 'नकेन-2' का जब प्रकाशन हुआ तो द्वादश सूत्रों के साथ छः और सूत्र जोड़कर 'प्रपद्य अष्टादश सूत्री' की घोषणा की गई। बाद में जोड़े गए सूत्र थे–

13. प्रपद्यवाद आयाम की खोज है और अभिनिष्क्रमण भी, ठीक वैसे, जैसे वह भाव और व्यंजना का स्थापत्य है और उससे अभिनिष्क्रमण भी।

14. प्रपद्यवाद चित्रेतना है।

15. प्रपद्यवाद मिथक का संयोजक नहीं, स्रष्टा है।

16. प्रपद्यवाद बिम्ब का काव्य नहीं, काव्य का बिम्ब है।

17. प्रपद्यवाद सम्पूर्ण अनुभव है।

18. प्रपद्यवाद अविभक्त काव्य-रुचि है।

इन अठारह सूत्रों के अलावा 'नकेन के प्रपद्य' में 'पसपशा' शीर्षक से केसरी कुमार ने प्रपद्यवाद की व्याख्या की। उन्होंने लिखा है, "प्रपद्यवाद प्रयोग का दर्शन है... प्रयोग के वाद से तात्पर्य यह है कि वह भाव और भाषा, विचार और अभिव्यक्ति, आवेश और आत्मप्रेषण, तत्व और रूप, इनमें से कई में या सभी में प्रयोग को अपेक्षित मानता है।" इस कथन के साथ केसरी कुमार ने यह भी दुहराया है कि सतत प्रयोग करना ही प्रपद्यवाद है। प्रपद्यवादियों का मानना था कि कविता भाव, विचार या दर्शन से नहीं लिखी जाती... वह नए विचारों या नए शब्दों से भी नहीं लिखी जाती। नकेन अनुसार कविता नए विचारों, नए शब्दों के केन्द्रण से बनती है। दैनंदिन की भाषा की व्यवस्था को व्यतिरेकित करके ही इसे प्राप्त किया जा सकता है। हमारे दैनंदिन जीवन की भाषा और अनुभव के आगे की भाषा तथा अनुभव को कविता प्रकट करती है। प्रपद्यवादी मानते हैं कि कविता के लिए जीवन की प्रतिष्ठित व्यवस्था आवश्यक नहीं है, बल्कि जीवन की जागृति आवश्यक है।

प्रपद्यवादियों के लिए साधारणीकरण कोई समस्या नहीं है। साधारणीकरण की प्रक्रिया में रचनाकार और पाठक का एक ही भाव-सत्ता में होना आवश्यक है। लेकिन प्रपद्यवादी न तो भाव-सत्ता को स्वीकारते हैं, न रसानुभूति को। उनके लिए कविता वैयक्तिक चीज है, सार्वजनिक नहीं। प्रपद्यवादी कविता में जिस वैयक्तिक अनुभूति, शब्द और अर्थ पर जोर देते हैं, उसमें साधारणीकरण के लिए कोई जगह नहीं है। वे साधारणीकरण के स्थान पर विशिष्टीकरण को महत्वपूर्ण मानते हैं। विशिष्टीकरण का आधार विज्ञान है। जिस तरह से ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में विशिष्टीकरण आवश्यक है, उसी तरह से कविता में भी। नलिन विलोचन शर्मा कवि के लिए 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' तथा 'विज्ञान-सम्मत दर्शन' की जरूरत पर बल देते हैं। वे मानते हैं कि कविता का उद्देश्य सत्य का संधान है।

प्रपद्यवादी काव्य-सिद्धांत के अनुसार काव्य-रचना के लिए बुद्धि आवश्यक है। बौद्धिकता को कविता का आवश्यक गुण स्वीकार करते हुए केसरी कुमार ने लिखा है, "जब कविता अपने समय की बौद्धिकता से संपर्क-विच्छेद कर लेती है, तब भाव-प्रवण, जाग्रत-मति समाज की उसमें दिलचस्पी नहीं रह जाती। यह अत्यंत खेदजनक स्थिति है, क्योंकि यह समाज यद्यपि अल्पसंख्यकों का होता है, पर यही बड़े समाज को गति देने वाला सिद्ध होता है।"

प्रपद्यवाद की काव्य-पूँजी थोड़ी है। नलिन विलोचन शर्मा की भी काव्य-पूँजी मात्रा रूप में कम ही है। प्रपद्यवादी काव्यधारा में दूसरे कवि शामिल नहीं हुए। वह इन्हीं तीन कवियों तक सीमित रही। कोई भी आन्दोलन तभी विस्तार और दीर्घ जीवन पाता है, जब उसमें अधिक से अधिक लोगों की समाही होती है। हिन्दी कविता के इतिहास में जगह बनाने के लिए जिस मात्रा की आवश्यकता होती है, वह मात्रा न तो प्रपद्यवाद के पास है, न नलिन जी के पास। लेकिन अल्पमात्रा के बावजूद अपनी विशिष्ट भंगिमा के कारण प्रपद्यवादी कविताओं ने 1960 के दशक में हिन्दी कविता को नई चमक से भर दिया था। यह कविता की नई भंगिमा थी और नई जमीन थी। अज्ञेय ने नलिन विलोचन शर्मा और केसरी कुमार की काव्य-नवीनता को रेखांकित करते हुए लिखा है, "वैसी कविताएँ जैसी केसरी कुमार की 'साँझ' अथवा नलिन विलोचन शर्मा की 'सागर संध्या' है, ऐसे बिम्ब उपस्थित करती हैं, जिनके लिए परम्परा ने हमें तैयार नहीं किया है और जो उस अनुभव के सत्य को उपस्थित करना चाहते हैं, जो उसी अर्थ में अनन्य है, जिस अर्थ में एक व्यक्ति अनन्य होता है।" नलिन जी की 'सागर संध्या' शीर्षक कविता को उनके काव्य-उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है–

"बालू के ढूह हैं जैसे
बिल्लियाँ सोई हुई,
उनके पंजों से लहरें दौड़ भागतीं।

सूरज की खेती चर रहे मेघ-मेमने
विश्रब्ध, अचकित।
मैं महाशून्य में चल रहा...
पीली बालू पर जंगम बिंदु एक--
तट-रहित सागर एवं
अम्बर और धरती के
काल-प्रत्न त्रयी-मध्य से होकर।
मेरी गति के अवशेष एकमात्र
लक्षित ये होतेः
सिगरेट का धुँआ वायु पर;
पैरों के अंक बालू पर
टंकित, जिन्हें ज्वार भर देगा आकर।"

कविता के अलावा लगभग चार दर्जन कहानियाँ नलिन जी की लिखी हुई मिलती हैं। कविता के क्षेत्र में उन्होंने जिस तरह मौलिक और विशिष्ट प्रयोग किए, उसी तरह कहानी के क्षेत्र में भी किए। उनकी कहानियों में सामाजिकता और मनोवैज्ञानिकता का बड़ा ही सफल गुम्फन हुआ है। भाषा, भाव और शिल्प हर स्तर पर उनकी कहानियाँ उनकी कविताओं की ही तरह ठोस स्थापत्य की हैं। 'विष के दाँत तथा अन्य कहानियाँ' और 'सत्रह असंग्रहित पूर्व छोटी कहानियाँ' नामक संग्रहों में लगभग तीस कहानियाँ मिलती हैं, जबकि शेष कहानियाँ अभी भी पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं। उन्होंने कुल 55 कहानियाँ लिखी थीं। नलिन जी कहानी में सामाजिक सत्य को मनोवैज्ञानिक सत्य के साथ प्रतिष्ठित करना चाहते थे। केसरी कुमार ने लिखा है, "वे विज्ञान और दर्शन के मिलन-बिंदु के विरल कवि तथा दुर्लभ मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों के कहानीकार थे।" विषय के आधार पर उनकी कहानियों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है– (1) सामाजिक विषयों से सम्बन्धित कहानियाँ, (2) मनोग्रंथि से सम्बन्धित कहानियाँ, (3) प्रेम कहानियाँ। वैसे यह विभाजन ऊपरी है। कहानियों के भीतर व्याप्त कथा-चेतना एक-सी है। वह चेतना है मानव-मनोविज्ञान के अध्ययन की। इसकी कमी नलिन जी हिन्दी कहानी में महसूस करते हैं। विष के दाँत, ये बीमार लोग, बरसाने की राधा और रोबोट जैसी अमर कहानियाँ लिखने का श्रेय नलिन विलोचन शर्मा को ही जाता है। मेरा अनुमान है कि इनको शामिल किए बिना हिन्दी कहानी का इतिहास पूरा नहीं होगा।

नलिन विलोचन शर्मा की वास्तविक देन आलोचना के क्षेत्र में है। उसी के साथ उन्होंने महत्वपूर्ण हस्तक्षेप साहित्य के इतिहास-दर्शन के क्षेत्र में भी किया। प्रगतिवादी और गैर-प्रगतिवादी आलोचना शिविर से अलग उन्होंने हिन्दी आलोचना की नई जमीन तैयार की। शीतयुद्धकालीन राजनीतिक शब्दावली का इस्तेमाल करें तो कह सकते हैं कि नलिन विलोचन शर्मा का हिन्दी आलोचना में वही स्थान और महत्व है जो शीतयुद्धकाल में गुट-निरपेक्ष आन्दोलन का था। नलिन विलोचन शर्मा आलोचना लिखते समय भारतीय साहित्य की पाँच महान परम्पराओं की चर्चा करते हैं। उन्होंने भौतिकता को भारतीय साहित्य की पहली विशेषता घोषित किया। उनके अनुसार दूसरी परम्परा यथार्थता की है। मानवता यानी ह्यूमनिज़्म, नलिन जी के अनुसार भारतीय साहित्य की तीसरी परम्परा है। मानववाद यानी ह्यूमेनिटेरियलिज्म को वे हिन्दी साहित्य की चौथी महान परम्परा मानते हैं। धार्मिकता, नलिन जी के अनुसार भारतीय साहित्य की पाँचवीं विशेषता है। भौतिकता को प्रथम और धार्मिकता को भारतीय साहित्य की अंतिम विशेषता मानने वाले नलिन विलोचन शर्मा की आलोचना-दृष्टि को अलग से समझने की जरूरत है। वे प्रगतिवादी और आधुनिकतावादी आलोचनात्मक प्रत्ययों से भिन्न नए मानदंड का निर्माण करते हैं। नलिन जी की आलोचनात्मक कसौटी के मुख्य आधार हैं–मुक्ति और स्वच्छंदता। इन दोनों में भी मुक्ति को वे मुख्य आलोचनात्मक कसौटी मानते हैं। उनके अनुसार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और बर्नार्ड शॉ में स्वच्छंदता के गुण हैं, जबकि निराला और वाल्ट व्हिटमैन में मुक्ति के। रचना में विषयगत नवीनता को वे रचना की मुक्ति से जोड़कर देखते हैं। स्वच्छंदता और मुक्ति की अपनी आलोचनात्मक कसौटी पर वे निराला को आधुनिक युग का सबसे बड़ा कवि और प्रेमचन्द को आधुनिक युग का सबसे बड़ा कथाकार घोषित करते हैं।

नलिन विलोचन शर्मा की वास्तविक देन उपन्यास की आलोचना के क्षेत्र में है। उन्होंने अपने चिन्तनपरक आलोचनात्मक लेखों के जरिए हिन्दी उपन्यास का शास्त्र विकसित करने की कोशिश की। वे मानते थे कि उपन्यास साहित्य की 'अन्त्यज विधा' है। अन्त्यज शब्द से ही उनकी साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि की नवीनता का पता चलता है। प्रेमचंद को उपन्यास के कलाकार के रूप में प्रतिष्ठित करने का अथक संघर्ष नलिन विलोचन शर्मा ने हिन्दी आलोचना में किया। वे मानते थे कि प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास की दुनिया में अहिंसक क्रान्ति के जरिए उसके पूरे स्थापत्य को बदल कर रख दिया। मुझे लगता है कि प्रेमचन्द की कला का नलिन विलोचन शर्मा जैसा पारखी आलोचक हिन्दी में दूसरा नहीं हुआ।

उपन्यास का शास्त्र तैयार करते हुए नलिन विलोचन जी ने कथा-भूमि की सभ्यता और संस्कृति से जोड़कर उसे देखा है। उन्होंने लिखा है, "हिन्दी उपन्यास का इतिहास, किसी भी देश के इतिहास की तरह हिन्दी-भाषी क्षेत्र की सभ्यता और संस्कृति के नवीन रूप के विकास का साहित्यिक प्रतिफलन है। समृद्धि और ऐश्वर्य की सभ्यता महाकाव्य में अभिव्यंजना पाती है,

जटिलता, वैषम्य और संघर्ष की सभ्यता उपन्यास में... हमारे उपन्यास यदि आज पश्चिमी उपन्यासों के समकक्ष सिद्ध नहीं होते तो मुख्यतः इसलिए कि हमारी वर्तमान सभ्यता अपेक्षतया आज भी कम जटिल, कम उलझी हुई और कहीं ज्यादा सीधी-सादी है।'' नलिन जी उपन्यास को अन्त्यज कहते हैं। अन्त्यज का अर्थ सबसे अंत में पैदा हुआ तो होता ही है, उसका अर्थ यह भी है कि उसका गहरा सम्बन्ध हाशिए पर रहने वाले समाज से है।

मुक्ति और स्वच्छंदता की कसौटी पर नलिन विलोचन शर्मा का सारा आलोचना-साहित्य टिका हुआ है। इसीलिए वे साहित्य में किसी भी तरह की विषयगत और रूपगत रूढ़ि को स्वीकार नहीं करते। वे नवीनता के आग्रही आलोचक थे। यही कारण है कि यदि उन्होंने अज्ञेय आदि के आधुनिकतावादी आग्रहों की आलोचना की तो प्रगतिवादी मान्यताओं पर भी प्रहार करने में वे पीछे नहीं रहे। उन्होंने साहित्य और समाज की रूढ़ियाँ तोड़ने के लिए और परम्परा का मूल्यांकन करने के लिए प्रगतिवादियों की प्रशंसा की तो उनकी निषेधकारी और एकांगी दृष्टि की कड़ी आलोचना भी की। 'प्रगतिवाद की मान्यताएँ' शीर्षक उनका एक प्रसिद्ध निबंध है, जिसमें उन्होंने प्रगतिवादियों की आलोचना करते हुए लिखा है, ''उन्होंने पुरानी जंजीरें तोड़ फेंकी हैं, लेकिन उन्होंने जिसे गले का हार समझकर प्रसन्नतापूर्वक पहना है, वह हाथ-पैर का नहीं, हृदय और मस्तिष्क का बंधन बन गया है। उन्होंने गुरु-पूजा का त्याग किया है, पर वीर-पूजा अपनाने के लिए, मूर्ति-पूजा से छुटकारा पाया है, किन्तु जन-पूजा के कर्मकांड में फंसने के लिए और शास्त्र की संकीर्णता के विरुद्ध सफल विद्रोह किया है, लेकिन सिद्धान्त की चारदीवारी में कैद हो जाने के लिए।'' इस टिप्पणी के साथ नलिन जी ने प्रगतिवादी लेखक पर चार आरोप लगाए, (1) वह वीर-पूजा करता है, (2) वह जन-पूजा में अन्धविश्वास रखता है, (3) वह कुछ सुचिन्तित सिद्धान्तों में बँधा हुआ है और (4) वह घृणा करता है। प्रगतिवाद के बारे में अपने इस निष्कर्ष के बाद उन्होंने सोवियत-व्यवस्था की आलोचना की, जहाँ नात्सी जर्मनी की तरह लेखकों को यातना दी जा रही थी।

इस तरह नलिन विलोचन शर्मा हिन्दी आलोचना में प्रगतिवादी और आधुनिकतावादी कसौटियों से भिन्न आलोचना का नया मानदंड निर्मित करते हैं। इस कसौटी पर वे रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द और निराला को आलोचना, कथा-साहित्य और कविता का शिखर रचनाकार घोषित करते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द और निराला के बारे में यही निष्कर्ष प्रगतिवादी आलोचक रामविलास शर्मा के भी हैं। लेकिन उसमें मुक्ति के अभाव के कारण रामविलास जी जहाँ 'मैला आँचल' का महत्व पहचानने से चूक जाते हैं, वहीं नलिन जी उसे 'गोदान' के बाद हिन्दी उपन्यास में आए गत्यवरोध को दूर करने वाला मानते हैं। लेकिन जब विषय और रूप का दुहराव वे उसी फणीश्वरनाथ 'रेणु' की 'परती परिकथा' में पाते हैं, तो उसकी कड़ी आलोचना भी करते हैं। ऐसा इसलिए कि नलिन जी आलोचना को 'सृजन' मानते थे, ऐसा सृजन जो किसी 'कृति का निर्माण' करे। आलोचना को परिभाषित करते हुए उन्होंने यह भी कहा है कि 'आलोचना कला का शेषांश' है। यही कारण है कि उनकी आलोचना में भाषा-शिल्प आदि पर जितना जोर है, उतना विषयवस्तु पर नहीं। वे 'कला के धरातल पर उन्नीत' हो जाने वाली आलोचना के समर्थक थे।

नलिन जी की महत्त्वपूर्ण देन साहित्य के इतिहास-दर्शन के क्षेत्र में भी है। जब हिन्दी में इतिहास-दर्शन की चर्चा से प्रायः लोग अनजान थे, तब उन्होंने 'साहित्य का इतिहास-दर्शन' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक लिखकर इतिहास-लेखन की आधारभूमि को मजबूती दी थी। वे मानते हैं कि साहित्य का इतिहास वस्तुतः गौण लेखकों का इतिहास है। बड़े-बड़े लेखकों के आधार पर साहित्य का इतिहास लिखने वाले इतिहास-दृष्टि से भिन्न यह नई इतिहास-दृष्टि थी। समाज या राष्ट्र का इतिहास राजाओं का इतिहास नहीं बल्कि जनता का इतिहास है, इस कथन से नलिन जी के कथन को मिलाकर देखना चाहिए, तब उनकी इतिहास-दृष्टि की सामाजिकता और व्यापकता दिखाई देगी। इतिहासकार के रूप में अपने प्रिय आलोचक आचार्य शुक्ल को नलिन जी वह महत्व नहीं देते जो हजारीप्रसाद द्विवेदी को देते हैं। इसका कारण यह है कि नलिन जी शुक्ल जी में विधेयवाद और पश्चिमी इतिहास-दृष्टि का आभास पाते हैं। जबकि हजारीप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि उन्हें ज्यादा भारतीय लगती है, क्योंकि उसमें मिथकों, पुराकथाओं, किम्वदन्तियों का आधार है, जो नलिन जी के अनुसार साहित्य के इतिहास-लेखन की जरूरी सामग्री है।

कोई कह सकता है कि नलिन जी रूपवादी थे, हालाँकि ऐसा कहना उनके साथ किंचित ज्यादती होगी। रूपवादी लेखक जहाँ भाववादी और प्रायः अवैज्ञानिक तर्कों के कायल होते हैं, वहीं नलिन विलोचन शर्मा विज्ञान के समर्थक और किसी भी अलौकिक शक्ति में न विश्वास करने वाले अनीश्वरवादी थे। उनका विश्वास समाजवाद में था और वे एम.एन. राय के रेडिकल ह्यूमनिस्ट आन्दोलन को पसंद करते थे।

प्रोफेसर (हिन्दी विभाग),
38/4, छात्र मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110007

नागा साहित्य में पर्यावरण की चिंता

रमणिका गुप्ता

लेखिका हमारे युग की परिचित साहित्यकार हैं। 'युद्धरत आम आदमी' की संपादक हैं तथा हिन्दी में आदिवासी विमर्श की पुरोधा हैं।

नागा लेखिकाओं के सृजनात्मक साहित्य के सैद्धांतिक ढाँचे की जड़ें उनके इतिहास और अनुभवों से जुड़ी हैं। जहाँ तक नागा परिवार व समाज की संरचना का प्रश्न है वह पितृप्रधान समाज है।

इस आलेख में हम नागा साहित्य जगत में पर्यावरण तथा उनकी अपनी आदिवासी विरासत को लेकर कतिपय मुखर गद्य व पद्य लेखिकाओं के रचनाकर्म व उनके सृजन पक्ष पर चर्चा व विचार करेंगे।

नागालैंड में नेचुरियाजो चुचा और सिवैस्टियन जुमवू ने नागा संस्कृति, जीवनशैली और नागालैंड की राजनैतिक हलचलों को चिन्हित किया है वहीं अपने लेखन में योमे अपने समुदाय (Community) और जनजातीय समूह अंगामी का प्रतिनिधित्व करती हैं और तुमसुला आओ, निनि विन्गूरियू लुंगालांम, ईस्टराईन इरालू तथा मोनालिसा चंकक़िज़ा स्त्री विमर्श के अतिरिक्त आदिवासी विरासत, पर्यावरण, जंगल व आदिवासी मिथकों विशेषतः नागा मिथकों की खोज और अपने समूह की पहचान के लिए भी चिन्तित हैं। वे चिन्तित हैं अपने आयकनों के लिए, पवित्र पहाड़ों के लिए और दर्शनीय स्थलों के लिए। हम कविता में उपरोक्त चारों कवयित्रियों की आदिवासी विरासत की चिन्ता के बारे में पड़ताल कर रहे हैं।

तेमसुला आओ

तेमसुला आओ के चार काव्य-संग्रह हैं। (1) 'साँगस दैट टैल' (गीत जो बताते हैं) 1988, (2) 'साँग्स दैट ट्राई टू से' (गीत जो कुछ कहने की कोशिश में हैं), (3) 'साँग्स ऑफ मैनी मूड्स' (बहुरंगी चित्तवृत्तियों के गीत), 1995, (4) साँग्स फ्रॉम द अदर लाईफ' (दूसरी जिंदगी के गीत) 2007।

तेमसुला अपनी कृति 'साँग्स दैट टैल' (Songs that tell) (1988) 'गीत जो बताते हैं' में अपनी जड़ों की खोज करती हैं। भारतीय अंग्रेजी कविता में यह रुझान काफी देर से चला आ रहा था।

उन्होंने अपनी कविता में जड़ों की खोज के साथ-साथ आदिवासी समूहों की दयनीय स्थिति, सामाजिक असमानता व अन्याय को भी अभिव्यक्ति दी है–

"यह एक ऐसी जगह है जहाँ/एक बर्लिन की दीवार विभाजित करती है/अमीर और वंचितों को/आदिवासी परिक्षेत्रों में/गगन चुम्बी इमारतों और मलिन बस्तियों में/सहअस्तित्व में रहते/असंगत बेमेल सामीप्य में/ हर एक अछूत/एक-दूजे के खिलाफ/स्वयं निर्धारित निर्वासन से।" (वही, पृ. 19)

गरीब वंचित शाश्वत मातहत लोगों की तरह जो कष्ट सहते हैं। वे इस संसार में सबसे ज्यादा सुखी हैं चूंकि वे अन्यायपूर्ण दुनिया की स्वार्थपरक दौड़ में शिरकत नहीं करते–

"सुखी हैं गरीब/फटे पुराने लत्तों में/ चूँकि वे वारिस होंगे/अमीरों द्वारा दिए हुए/टुकड़ों के/अमीर जो भूख को नहीं जानते/नहीं उठा सकते आनंद/अपनी खुशहाली का/हालाँकि कब्जे में हैं उनके/ पृथ्वी के अनाज का भंडार।"

कवयित्री प्रकृति के विनाश पर भी लिखती हैं, जो आज मनुष्य के लिए एक खतरा बन गया है। वे प्रतिक्रिया करती हैं–

"कभी धरती पर/एक जंगल था/हरा/ कुँआरा और जीवंत/लम्बे ऊँचे पेड़ों के साथ/अपने राजसी वैभव में/हाय यह जंगल/जो अब चुप पड़ा है/सुन्न और डगमगाता/अपने बलात्कार के/सबूत के साथ/ उसके वक्ष पर हाथी रौंदते/ गड़गड़ाहट के साथ दौड़ती लारियाँ/ उनका खजाना भरे हुए!" (वही)

'गीत जो कुछ कहने की कोशिश में हैं' तेमसुला की दूसरी कविता पुस्तक है।

इस पुस्तक में उन्होंने आदिवासी जीवन, मानवीय रिश्ते, अपनी खुद की जिंदगी, नागा जातिगत या जातीय संरचना, प्रकृति तथा कुछ क्षणिक अनुभवों को केन्द्र में रखकर रचना की है।

कवयित्री ने असम, नागालैंड तथा पूर्वोत्तर के अन्य पर्यटन स्थलों के वैभव पर भी खूब लिखा है। उन्होंने 'जतिंगा' में आकर आत्महत्या करने वाले पक्षियों पर लिखा है। जतिंगा में भारी संख्या में हर साल पक्षी आकर आत्महत्या करते हैं। इस रहस्य को भी उन्होंने अपनी कविता में जानने की कोशिश की है–

"कौन ले जाता है तुम्हें वहाँ/ओ अमर पक्षियो?/क्या यह है/तुम्हारे नन्हे पंखों की ताकत/या तुम्हारी मरती हुई रुलाई/तुम्हारे गीत गाते गलों की?/..../ कौन करता है तुम्हें मजबूर/ओ अमर पक्षियो?/ स्वेच्छा से हिम्मत करने की/ परम जाल में फँसने की/अपने अन्त तक पहुँचने की/वह भी केवल जतिंगा पर ही!" (वही)

तेमसुला की तीसरी पुस्तक 'साँग्स ऑफ मेनी मूड्स' (बहुरंगी चित्तवृत्तियों के गीत), 1955 में कवयित्री की बहुत दुखद और उदास दृष्टि की कविताएँ शामिल हैं।

पर्यावरण में आए बदलाव से भी कवयित्री बहुत दुखी है। वे अपनी पुरानी जिंदगी को याद करती हैं, जब सुहावने वातावरण से वे उल्लसित होती थीं। 'माई हिल्स' ('मेरी पहाड़ियाँ) में उन्होंने इसी दृश्य को दर्शाया है–

"ध्वनि और दृश्य बदल गए हैं/मेरी पहाड़ियों में/कभी वे गुनगुनाती थीं/ पक्षी-गीत/खुश गड़गड़ाती नदियाँ/चाँदी सी दौड़तीं/बहुत सी मछलियां के झुण्डों के साथ/कई-कई पेड़/खुश, सब्ज और हरिहर/मौसमें खेलतीं जादू के खेल/भव्य और चमकीले/लेकिन आज नहीं जानती मैं अपनी पहाड़ियों को/पक्षियों के गीत हो गए हैं खत्म/या उनकी जगह ले ली है/असम्बन्ध गतियों ने/अति परिष्कृत हथियार/दरया हो रहे हैं लाल/पहाड़ियाँ हो गई हैं नंगी और मौसम/खो चुके हैं अपना जादू।" (वही, पृष्ठ 49)

अपने कविता संग्रह 'साँग्स फ्रॉम हेअर एंड देअर' (यहाँ-वहाँ से गीत) में कवयित्री ने पर्यावरणीय असंतुलन तथा अपने क्षेत्र के प्रजातीय परिदृश्य को भी समाहित किया है। वे महसूस करती हैं कि प्रकृति मनुष्य की असंवेदनशीलता के खिलाफ प्रतिरोध में खड़ी होती है। एक मोनोलिथ, जो कहीं गाँव के एक कौने में अपमानित-सा खड़ा है, के लिए भी अपनी 'प्रार्थना' में वे प्रकृति के तत्वों से अपील करती हैं कि–

"ओ पंच तत्वो/जब तुम जंगल से गुजरो/और मेरी प्रिये जानना चाहे कुछ तुम से/बस इतना बतलाना उसे/मैं कीर्ति प्राप्त करने गया हूँ/लेकिन कृपया कभी भी न बतलाना उसे/मेरे अपमान की कहानी।" (2003:5)

तेमसुला सामाजिक ऐतिहासिक लेखिका तथा पर्यावरण मानवतावादी हैं। उनकी तीसरी पुस्तक है 'साँग्स ऑफ मैनी मूड्स' (1995) बहुरंगी चित्तवृत्तियों के गीत में भी पहली दो कृतियों के समान ही दुखद विजन हैं।

उनकी अद्यतन कविता पुस्तक है 'साँग्स फ्रॉम द अदर लाईफ' (दूसरी जिन्दगी के गीत), 2007। इस पुस्तक की कविताओं में उन्होंने नागा जनजाति के कई समूहों तथा 'आओ' जनजाति के मिथकों को कविता में बाँधा है। इनके माध्यम से वे अपने समूह की पहचान खोजने की चेष्टा करती हैं। नागा का वाचिक साहित्य अत्यन्त सशक्त है। इस वाचिक परम्परा के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था, इतिहास, धर्म और नैतिक ज्ञान लोगों की संस्कृति में रच-बस गया है। ये इसलिए चूँकि एक लोककथा है कि चमड़े पर लिपि, जो देखने और सीखने के लिए दीवार पर टँगी थी को एक कुत्ते ने खा लिया। किंवन्दती के अनुसार तब से ही ज्ञान का सारा भंडार वाचिक लोककथाओं में ही एकत्रित होने लगा। तेमसुला इस कथा को अपनी कविता 'द ओल्ड स्टोरी टेलर' (पुरातन कथावाचक) में यूँ कहती हैं–

"जब याद विफल हो जाती है और शब्द लड़खड़ाने लगते हैं/तो एक बहशी लालसा मुझे वश में कर लेती है/तो मैं/ चोरी करने की हिम्मत को खींच बाहर कर देना चाहती हूँ/उस मूल कुत्ते से/ और कर देती हूँ सुपुर्द अपनी समूची कहानियाँ/उस लिपि को, जो उसकी प्राचीन अन्तड़ियों का हिस्सा हैं।" (2007:13)

तेमसुला आओ की रहस्यवादी संवेदना उनकी कुछ कविताओं में दिखाई पड़ती हैं। कविता की लयबद्धता, संक्षिप्त अभिव्यक्ति और मृदुल भाषा उनकी कविता को सुखदायक बनाती है। जिंदगी का कठोर यथार्थ उनके रोमानी गीतों में प्रवाहित होता है। उनके इसी लयात्मक लेखन और सुरीले गीतों के चलते वे पूर्वोत्तर की नाइटिंगेल कहलाती हैं।

निनि विन्गूरियू लुंगालांग

निनि विन्गूरियू लुंगालांग (Nini Vinguriau Lungalang) 1948 में पैदा हुईं। ये एक मूल निवासी कवयित्री हैं। ये कोहिमा के नार्थफील्ड स्कूल में शिक्षिका हैं। ये अपनी कविताओं में जीवन, आदिवासियों की जीवन शैली, उपेक्षित लोग और उनके अपने पिता तथा कोहिमा के विस्तार, नागाओं की विरासत और अपने युवा दिनों के लिए चिंतित हैं। अपनी शुरुआती जिन्दगी के प्रति उनकी अपनी जिद व एक राय है–

"मैं अपने सुबह के वर्षों को देखती हूँ/जो पानी की तरह टकते रहे/मेरी लापरवाह उँगलियों के बीच/जब मैं होती थी आनंदित स्पर्श और स्वाद से/गरम और ठंडे से/धूप से रोशन उन/चिरस्थायी दिखते दिनों से।"

वे अपने पहाड़ों, नदियों को नहीं भूलतीं। उनके लिए ये उनके आयकन हैं–पवित्र स्थल हैं। 'पूलीबेड्जे पर' कविता में वे पूलीबेड्जे पहाड़ को नागाओं का पूर्वज होने के दावे की पुष्टि करती हैं। ये पहाड़ कोहिमा से दस किलोमीटर दूरी पर स्थित है। वे अपनी कौम को ताकीद करती हैं कि वे 'पूलीबेड्जे' पर्वत का आदर करें–

"कठोर पहरेदार पेड़ चुपचाप देते हैं पहरा/छिपी नाड़ी जो धड़कती है/पुरानी पुरखा पूलीबेड्जे की स्कर्ट्स के छोर पर/ध्यान से चलोः यहाँ पवित्र स्थल है/तुम्हारी पदचाप की ध्वनि/तिनके या पत्तों के मुरकने से ज्यादा न हो/टकराने दो धुँध की लटों को/पुरातन पूलीबेड्ज के किनारों से।"

एक कवि के नाते निनी प्रकृति की पुजारी हैं और निम्न वर्ग वाले मातहतों (सबआल्टर्न) की समर्थक हैं।

ईस्टराईन इरालू

ईस्टराईन इरालू (Easterine Iralu), 1959, नेहू के कोहिमा कैम्पस तथा नागालैंड विश्वविद्यालय कोहिमा में अंग्रेजी पढ़ाती थीं। आजकल वे नार्वे में रहती हैं। उनका प्रथम कविता-संग्रह तब प्रकाशित हुआ, जब वे मात्र 23 वर्ष की थीं। वे अतीत और वर्तमान के यथार्थ को मिश्रित करके लिखती हैं। अपनी विरासत पर उन्हें गर्व है। यूटोपिया केलोकेवीरा (Kelhoukevira) का नागा मिथक उनकी यादों से बार-बार टकराता है और अपने गौरवमय अतीत के प्रति आकर्षित करता है–

"किसी समय की बात करती है केवीसेली/जब उसकी पहाड़ियों को पालतू बनाया गया था/उसकी मिट्टी युवा और कुँआरी/और योग्य उसके सिपाही/पृथ्वी ने अच्छा महसूस किया था/ और वे उसके स्पर्श से पूर्ण और समृद्ध हो गई थी/उसकी बेटियाँ थीं साथ/जिसकी साँसों में पहाड़ों की हवा थी/उनके बाल कोमल गर्मी की रात के रंग के थे/हर शाम को वे आते थे/भरी-भरी टोकरियाँ लेकर/जमीन में पैदा हुई उपज की/तब वे एक घेरे में बैठते थे/और उनके गीतों में भर जाती थी पृथ्वी की गंध।"

ईस्टाराईन ने प्लेग के रोग का मानवीकरण कर दिया है जिसने उनकी गौरवशाली धरती पर तबाही मचा दी थी। ईस्टराईन के भीतर का देशभक्त अपने वीर कबीलों को ठंडा और कायर देखकर अपना क्षोभ यूँ प्रकट करता है–

"लपटों की रात फूल उठी/सारी इच्छा हो गईं/अनजानी अपर देशीय/और मैं अप्रार्थित खड़ी/पानियों के किनारे जो मेरे नाम पर नहीं/.../मेरे सोने जैसे लोग हो गए हैं ठंडे/मेरे होंठों, मेरे हाथों, मेरी आँखों को/करते घायल/मेरी कविता से बहाते खून/दोपहर की चुप्पी में/गीतों को कर रहे हैं अन्धा/चुप, तारा विहीन रातों में/रोओ, रोओ मेरी प्यारी पहाड़ियों/ताकि मुझे कुछ महसूस न हो।" (1982:9)

वे अपने आयकन हीरो केवीसेला की अन्तरात्मा में कुँआरी धरती और पर्यावरण के वैभव को महसूसती हैं और उसे महिमामंडित करती हैं–

"पहाड़ियों की आत्मा ने पाई है/तुझ में एक जवाबी आत्मा/तेरी फितरत दर्शाती जो विनम्र, शालीन प्रतिबिंब/उनकी समृद्ध विरासत का/उनके प्रतिरोध के गीत/गूँजते तेरी आत्मा के तीर्थ में.../ यह तुम हो केवीसेली, यह तुम हो।" (वही, 6)

पर्यावरण इतनी तेजी से विकृत हो रहा है कि कवि को इसकी एक छाप रखने की जरूरत महसूस होती है। इसके बारे में वे अपने बेटे को कहती हैं कि वे एक शानदार तस्वीर अंकित करेंगी ताकि कम से कम एक तस्वीर तो बची रहे इस गौरवशाली परिवेश को देखने और याद करने के लिए–

"इससे पहले कि तुम पैदा हो/एक सतत् बदलती दुनिया में/इससे पहले कि हरे पाइंस हो जाएं/लकड़हारा की कुल्हाड़ी के शिकार/और बचे रह जाएं बस केवल ठूँठ, रक्तमय/अवशेष/कभी सुन्दर एक पेड़ के/इससे पहले कि महाप्रतापी/डूबता सूर्य छिप जाए शहर की धुँध में/और यह सब जो देखा है/मैंने आज रात,/पड़ जाए फीका अटल यादों में/इससे पहले

कि बदलती दुनिया/राख से मथ जाए/ मुझे अंकित कर लेने दो।" (2001:111)

ईस्टराईन रोमांटिक और धार्मिक विषयों पर भी लिखती हैं। वे अपने लेखन में देशभक्त हैं और अपनी गौरवशाली आदिवासी विरासत को महिमामण्डित करती हैं पर नागा समाज की वर्चस्ववादी पितृसत्ता का विरोध करती हैं।

मोनालिसा चंककिज़ा

मोनालिसा चंककिज़ा 'नागालैंड पेज' अखबार की सम्पादक हैं। वे पर्यावरण को लेकर अति गम्भीर हैं। पक्की नारीवादी भी हैं।

समय की पहरेदार और पर्यावरणीय कालक्रम की अभिलेखिका चंककिज़ा प्रदूषण के कारण विलुप्त होती पत्तियों की प्रजातियों व पेड़ों की कटाई को लेकर क्षुब्ध हैं। वे अपनी कविता में कहती हैं–

"अब आती नहीं खुशबू देवदार की/ना ही सुनाई देते हैं तीतर और सारस/ विस्मित हूँ मैं तुम्हारी चुप्पी पर/जब मैं कहती हूँ हम भूखे हैं।"

पूर्वोत्तर के अन्य क्षेत्रों तथा नागालैंड की जैव विविधता में तेजी से आ रहे बदलाव के कारण पर्यावरण की अवनति व अधोगति हुई। फ्लोरा फोना भी विलुप्त हो गया है, जिसके कारण मानव की जीवन-शैली व आवास में पारिस्थितिकीय असन्तुलन हो गया है। इस पर भी कवयित्री ने अपनी कविता में विरोध जताया है--

"हाँ मैंने देखा है अपने धनखेतों को/ फैक्ट्रियों और मिलों में बदलते/हमारी हरी-हरी पहाड़ियों को/भूरे बंजरों में परिवर्तित होते/सूख गए हैं हमारे दरिया/ और हमारी चमचमाती मछलियाँ/मरी पड़ी हैं रेतीले किनारों पर/अब आती नहीं खुशबू देवदार की/ना ही सुनाई देते हैं तीतर और सारस!" (2007:29)

तीतर (Tragopan) और सारस (Hornbill) दोनों नागा विरासत के चिन्ह माने जाते हैं, जो आजकल विलुप्त हो रहे हैं।

उन्हें जर्नलिस्ट के नाते कई आतंकवादी गुटों ने जान से मारने की धमकी दी। 'उरू मेल' के सम्पादक की हत्या से भी वे बहुत दुःखित हुईं। वे अपनी कविता 'नॉट टू डेड' (मरे हुए को नहीं) में लिखती हैं–

"अगर कल/मेरा शरीर/गोलियों से/ छलनी हो जाए/तब भी मैं मरूँगी नहीं/ ना ही मैं/हारूंगी और ना ही रहूंगी चुप!" (एमएम 18)

नागा जनता को हथियारबन्द लोगों के डिक्टैट्स (निदेशों) के खिलाफ भी वे विद्रोह करती हैं और अपनी कविता 'ऑफ ए पीपल अनआन्सर्ड-III' (लोग जिन्हें जवाब नहीं मिला) में लिखती हैं–

"अपना समय नष्ट मत करो/निदेश और/गाइडलाइनें दे देकर/या मुझे कैसे अपनी जिन्दगी जीनी है/अथवा मेरे निजी राजनैतिक मामलों पर/और/बन्द करो यह दुःस्वप्न/जहाँ मुझे लिखना पड़े एक और बच्चे के अनाथ होने पर/एक और लड़की के बलात्कृत या एक और औरत के विधवा होने पर!"

मोनालिसा नागालैंड की उस धरती और उसके लोगों के ठोस यथार्थ पर लिखती हैं, जो आए दिन बन्दूकों और निदेशों से त्रस्त हैं। वे उन हथियारबन्द लोगों के खिलाफ आवाज उठाती हैं, जो देश और कौम के नाम पर घूमते हैं, जो नागा लोगों को व्यक्तिगत राय रखने की इजाजत तक नहीं देते–

"आगे बढ़ो, गोली दागो, बम से उड़ाते रहो हमें अनन्त तक/मैं वादा करती हूँ हम हिलेंगे तक नहीं/न ही अपने इरादे से और न ही/तुम्हारा ध्यान बँटाने के लिए/ शूट करो--कया रोक रहा है तुम्हें?" (एमएम 22)

संदर्भ--

आओ तेमसुला (1988) साँग्स देट टेल, कोलकाताः राईटर्स वर्कशॉप, प्रिंट (1992), साँग्स देट ट्राई टू से, कोलकाताः राईटर्स वर्कशॉप, प्रिंट (1995), साँग्स ऑफ मैनी मूड्स, नई दिल्लीः हर आनंद प्रिंट (2003), थ्री पोएम्स एन्थोलॉजी ऑफ कन्टेम्परेरी पोएट्री फ्रॉम नॉर्थईस्ट, इडीएस, किनफामसिं एंड न्गोनगोम, शिलोंगः नेहू (209-15), प्रिंट (2007)।

चंककिजा, मोनालिसा (1993), वेपन्स ऑफ वर्ड्स ऑन पेजेस ऑफ पैन, दीमापुरः राइट-ऑन पब्लिकेशन्स, प्रिंट (2003), थ्री पोएम्स एन्थोलॉजी ऑफ कन्टम्परेरी पोएट्री फ्रॉम नॉर्थईस्ट इडीएस, किनफामसिं एंड न्गोनगोम, शिलोंगः नेहू (216-218) प्रिंट (2007) मॉनसून मॉर्निंग दीमापुरः राइट-ऑन पब्लिकेशन्स, प्रिंट दास, निगमानन्दा (1998) 'इन्डियन इंग्लिश पोएट्री फ्रॉम नार्थईस्ट इंडिया', वाल्यूम-3 ऑफ एनईआईएफईएस प्रोसीडिंग्स तेजूः एनईआईएफईएस (21-31) प्रिंट।

ए-221, ग्राउंड फ्लोर, डिफेंस कॉलोनी,
नई दिल्ली-110024

नदी मेरे गाँव की

डॉ. जयकिशन शर्मा

डॉ. जयकिशन शर्मा मूलतः कश्मीरी हैं। जम्मू विश्वविद्यालय से संस्कृत में स्नातकोत्तर एवं काश्मीर शैव दर्शन में डॉक्टरेट। जम्मू-कश्मीर राज्य के शिक्षा विभाग में प्राचार्य के पद से सेवानिवृत्त। इनकी रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

नब्बे के दशक में घाटी से विस्थापित समुदाय के किसी भी व्यक्ति से उसके पैतृक घर का पता पूछने पर प्रायः उत्तर मिलता–खोये हुए गाँव से। परन्तु मैं अपने गाँव को कभी भूला ही नहीं हूँ। कोई दिन ऐसा नहीं बीतता जिस दिन नदी किनारे बसे अपने गाँव की याद नहीं आती। लेकिन जब से नए निवास के परिसर के मेन गेट पर 'लिद्दर' नाम की पट्टिका टांग दी, अपने पैतृक गाँव ओकुर (आकूरा) और लिद्दर नदी की रह-रह कर याद कुछ ज़्यादा ही सताने लगी है और रात को करवट-करवट कचोटती रहती है। हर श्वास के साथ मानसरोवर में उठी सतीसर की यादों की तरंगें प्रत्येक निश्वास के साथ मस्तिष्क के किनारों से टकराती रहती हैं। मुझे नहीं मालूम मेमोरी के कितने गीगा बाइट इन यादों को समर्पित हैं पर 'टच स्क्रीन' होते ही सारे दृश्य आँखों के सामने प्रकट हो जाते हैं।

इसे जनश्रुति कहें या लोकापवाद पर आकूरा से संबंधित यह बात कश्मीर में प्रचलित है कि एक आलसी और कामचोर व्यक्ति ने जीविका उपार्जन के लिए एक सरल तरीका अपना लिया। वह श्रीनगर के एक व्यस्त बाजार में सूरदास बन कर भीख माँगने लगा। एक दिन किसी व्यक्ति को उसके अन्धा न होने का शक हुआ। असलियत जानने के लिए वह उस नकली सूरदास के निकट गया। आलसी व्यक्ति ने भीख के लिए हाथ आगे बढ़ाया। उस व्यक्ति ने काँगड़ी में पहले से ही रखे एक ताँबे के गर्म सिक्के को उसकी हथेली पर ज्यूँ ही रखा त्यूँ ही उसने गर्म सिक्के को नीचे झटक कर आँखें खोली और कहा, "छुखै बट्टह तँ ओकर्युक" (अगर हो कश्मीरी हिन्दू तो आकूरा के होंगे), "छुखै मुसलमान तँ होखर्युक" (अगर हो मुसलमान तो होंगे हाखूरा के), "छुखै सिख् तँ त्रालुक" (अगर हो सिक्ख तो त्राल के हो सकते हो)। इस छोटी-सी लोककथा में जहाँ समाज को कपटी तथा धोखेबाज लोगों से सावधान रहने की नसीहत है वहीं ऐसे ढोंगी व्यक्तियों को सुधारने का सुचिन्तित प्रयास भी है।

मेरा पैतृक गाँव, मेरी जन्मभूमि आकूरा है। परम्परागत रूप से मुझ तक पहुँचा यह मिथक मैं बचपन से पालते हुए अगली पीढ़ी को यहाँ सौंप रहा हूँ कि हमारे गाँव का प्राचीन नाम आखुरथ था जिसका अपभ्रंश आज को ओकुर या आकूरा है। मूषक अर्थ रखने वाला

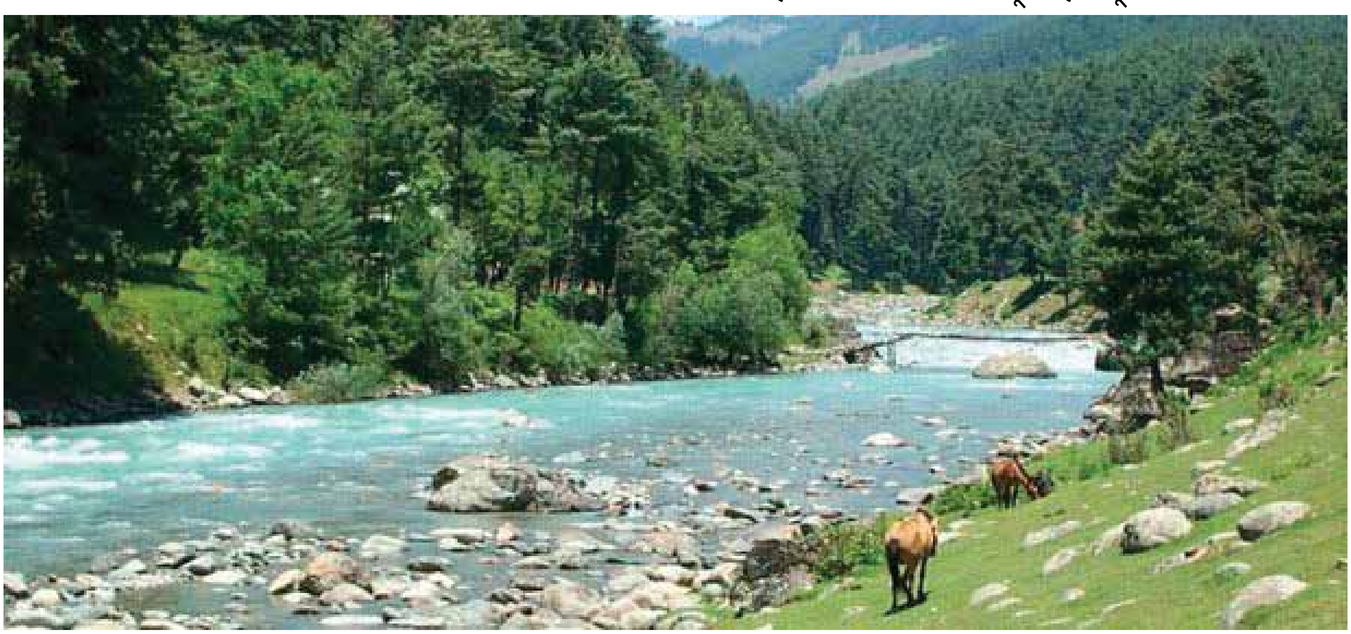

लिद्दर नदी, जम्मू-कश्मीर

'आखुरथ' संस्कृत भाषा का शब्द है। माता पार्वती को अमर कथा सुनाने के लिए भगवान् शंकर जब अमरनाथ की ओर जा रहे थे तो गणेश जी को अपने वाहन मूषक को यहीं पर छोड़ने का आदेश दिया। विचारणीय है कि गांव के कुछ परिवार ऐसे भी हैं जिनके नाम के साथ 'गगर' (कश्मीरी में मूषक) चिढ़ के रूप में जुड़ा हुआ है। कश्मीरी हिन्दुओं द्वारा मान्य लौगाक्ष ऋषि की पूजा पद्धति के अनुसार किसी धार्मिक पर्व या उत्सव पर देवी-देवताओं के साथ-साथ 'विनायकाय एकदन्ताय... हेरम्भाय आखुरथाय... उच्चारण करते हुए सर्वप्रथम जब आखुरथ (मूषक) वाहन वाले गणेश जी को भोग अर्पण किया जाता तो गाँव में स्थित श्रीगणेश जी की अति प्राचीन जगह पर ज्यों ही रखा जाता तो न जाने अनेक मूषक कहाँ से आकर उस भोग का एकदम चट कर जाते। यह तो हुई आस्था की बात।

मुगल इतिहास के अनुसार सन् 1587 ईस्वी में सम्राट अकबर ने कश्मीर की राजस्व व्यवस्था को टोडरमल के द्वारा सुनिश्चित कराया था। परन्तु ऐसा माना जाता है कि पट्टन स्थित अपने शिविर के आसपास के गाँव टोडरमल से छूट गए थे। मुझे नहीं मालूम 'चिराग तले अँधेरा' के मुहावरे को चरितार्थ करने वाले राजा टोडरमल की इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में मेरे गाँव का शुमार किस तरह से हुआ है। परन्तु महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों से लेकर मध्यकालीन 'तुजुके-जहाँगीरी' आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों में मार्तण्ड मंदिर का वर्णन है। प्राचीनकाल में यह मन्दिर इस इलाके की पहचान थी। तभी तो इतिहास ने ही नहीं हमारे पूर्वजों ने अपनी लोक संस्कृति में भौगोलिक स्थिति को भी इस तरह से संजो कर रखा है कि वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी दोहराया जाये। लोक संस्कृति के स्रोतों से जन्म कुण्डली भी एक महत्वपूर्ण दस्तावेज माना जा सकता है। इस प्रकार के छोटे-छोटे उल्लेख लोक संस्कृति के अंग होते हैं। इसमें न केवल जातक के जन्मस्थान का अक्षांश तथा रेखांश दर्ज होता है अपितु उस स्थान की मानचित्र में अवस्थिति का भी ठीक प्रकार से निर्धारण किया जा सकता है। जैसे कि मेरी अपनी जन्म कुण्डली में मेरे कुलगुरु द्वारा देशज लिपि 'शारदा' में "काश्मीर मण्डले अनन्तनाग परगने मार्तण्ड पादमूले आकूरा ग्रामे निवासमान.." दर्ज किया है जिससे मेरे जन्मस्थान आकूरा गाँव की भौगोलिक स्थिति आसानी से मालूम हो सकती है।

इसके अतिरिक्त गाँव के पुरखों ने जो लोक इतिहास कल तक हर लेपन के साथ अपने घरों की चारदीवारों पर परत-दर-परत लिखा है वह आतंक के कारण बेशक मौन है पर मूक नहीं है। इस तरह का इतिहास तो लोकमानस में अंकित पड़ा होता है जो भावी पीढ़ी को स्वतः विरसे में मिलता रहता है। यह एक एनसाइक्लोपेडिया से कम महत्व नहीं रखता। लोकचित की स्मृतियों में पड़े हुए प्रसंग जब मुखरित होते हैं तो सारी कपोल कल्पनायें एकदम लुप्त हो जाती हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में कहें तो पेड़ की छाल में असंख्य शताब्दियों के हस्ताक्षर होते हैं।

मेरे गाँव की नदी का उल्लेख वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक कश्मीरी साहित्य तक विस्तृत है। कश्मीर में प्रचलित कृष्ण यजुर्वेद की शाखाओं से संबंधित 'मार्तण्ड ब्राह्मण' में लिद्दर नदी का वर्णन इस प्रकार मिलता है–

"यावच्चाका वहति च
नदी लेदरी तोय पूर्णा
तावत् स्वर्गे वसति
सततं श्राद्धकृत् सूर्यक्षेत्रे।"

अर्थात् जब तक चाका नदी और लेदर नदी पानी से भरी हुई बहती रहेगी तब तक सूर्यक्षेत्र (मार्तण्ड) में जिसका श्राद्ध किया गया हो, स्वर्ग में निवास करता है। यद्यपि कल्हण पण्डित ने राजतरंगिणी के पहले ही तरंग के छियासीवें श्लोक में लिद्दर नदी का उल्लेख यह कहते किया है कि राजा लव ने लिद्दर नदी के किनारे बसा लेवार (आज का लिवर) नामक गाँव ब्राह्मणों को दान दिया। परन्तु इस नदी का इतिहास कल्हण तथा नीलनाग जैसे इतिहासकारों तथा पुराण लेखकों से पहले का है। आदि मानव के जो चिह्न पुरातत्ववेत्ताओं को मिले हैं वे तो लिद्दर घाटी से ही प्राप्त हुए हैं। तभी तो उन्होंने आदि मानव को 'लिद्दर मैन' की संज्ञा दी है। स्वर्गीय अर्जुनदेव मजबूर जैसे कश्मीरी साहित्यकार भी अपने कश्मीरी महाकाव्य 'पॅद्य समयिक' में इस नदी की प्राचीनता की ओर इस प्रकार संकेत करते हैं–

"प्योव ल्यदॅर बठिस
प्यठ थनह आदम।"

अर्थात् कश्मीर की उपत्यका में लिद्दर नदी के तट पर ही आदिम मानव ने जन्म लिया। वे लिद्दर नदी को वितस्ता की बहन कहते हैं जो हरनाग (खन्नाबल) के पास मिलती हैं।

"हरनाग नखै समखेयस व्यथ
द्वन बेन्यन पूशिन माय तॅ सथ।"

वे कहते हैं कि लिद्दर नदी शेरनी की तरह पर्वत मालाओं को पीछे छोड़ती हुई, शिलाओं और पत्थरों को तराशती, रास्ते में लोगों को शीतल जल पिलाती, टूटे पत्थरों पर चित्रकारी करती, दहाड़ती हुई बे रोक-टोक अपने उद्गम से आदिम प्रसन्नता के लिए बह चली–

"पॅच्य लेदर बशाशथ अॅजलॅच हाथ
सीमिन्य हिश त्रावान बालन पथ

रॅखह नावान स्वन्दर शेलह तॅ पल
वति चावान लूकन शीतल जल
कन्यि खम्बरन कूरिथ नक्श गरान
बे वायि पकान गगरायि करान।"

सुप्रसिद्ध कश्मीरी साहित्यकार पण्डित दीनानाथ नादिम ने भी अपने वितस्ता नामक ओपेरा में लिद्दर को एक नारी पात्र के रूप में चित्रित किया है।

पूर्व दिशा में भर्गशिखा भगवती का पर्वत और प्राचीन मार्तण्ड जिसका प्रहरी है, दक्षिण में ट्राउट नाले से आवेष्टित मेरे इस द्वीपनुमा गाँव की सीमाएँ लिद्दर नदी ने खींच रखी हैं। जिस प्रकार भूगोलवेत्ता कश्मीर को वितस्ता का उपहार मानते हैं उसी प्रकार मेरा गाँव लिद्दर नदी का उपहार है। यह नदी 73 किलोमीटर लम्बी है। इस नदी के दो उद्‌गम स्रोत हैं। एक स्रोत सोनामर्ग में कोल्हाई हिमखण्ड से निकलकर दक्षिण की ओर लिद्दरवठ तथा आरु नाम उच्च पर्वत शिखरीय हरे घास के मैदानों से होते हुए 30 मील के बाद बर्फानी बाबा अमरनाथ यात्रा के आधार पर शिविर तथा जगप्रसिद्ध पर्यटन स्थल पहलगाँव पहुँच जाता है जहाँ यह दूसरे स्रोत शेषनाग झील से निकलने वाली मुख्य जलधारा से मिलकर पश्चिम की ओर प्रवाहित हो मेरे गाँव ओकुर के बीच से होते हुए नानिल, आंग-मटीपूरा से होते हुए 73 किलोमीटर तक बहते हुए गुर (खन्नाबल) के पास वितस्ता (झेहलम) से मिल जाती है। ओकुर-पुल के थोड़ा-सा नीचे पहुँचने पर यह नदी दो धाराओं में विभक्त हो पास के क्षेत्र को दो भागों में बाँट देती है जिसे 'बोड चकुल' और 'लकुट चकुल' नाम से जाना जाता है। यह नदी जिसका जल आज मेरी शिराओं में संचरन करता है, बचपन से ही गाँव के बच्चों की क्रीड़ास्थली रही है। नदी में देर तक नहाते हुए जब बच्चे ठंड महसूस करते तो किनारे पर बिखरी बालू पर लेट कर धूप सेंकते और फिर डुबकी लगाने तो तत्पर होते। तटों पर तूत के पेड़ों पर चढ़कर तूत खाते और तभी उतरते जब किरमकश (रेशम के कीड़े पालने वाले) आते दिखाई देते।

प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण हमारे गाँव में इस नदी के तट शीतल एवं पावन हैं। मुर्गे की बांग पर जागने वाले प्रातःकालीन लिद्दर नदी के मन्द-मन्द शीतल समीर से जब सहलाए जाते तो न मुल्ला की बाँग से और न मन्दिर में बजने वाली शंख ध्वनि से ही उनकी मीठी नींद टूट जाती। ऐसे में उन्हें झँझोड़ने पर ही जगाया जा सकता। प्रातःकाल होते ही लिद्दर के तट पर गाँव वालों की चहलकदमी आरम्भ हो जाती। साठ के दशक तक यातायात के साधन कम होने के कारण आसपास के गाँव के लोग अनन्तनाग आने-जाने के लिए लिद्दर के किनारे-किनारे पैदल चलते। मैं अभी भी उस व्यक्ति को याद करता हूँ जो प्रायः हर तीसरे चौथे दिन नदी के तट से गुज़रता हुआ बेद के एक पेड़ के नीचे थोड़ी देर विश्राम के लिए ठहरता। बाँस के दस्ते वाली मटमैली छतरी उसकी अभिन्न संगिनी होती। उसके लिए यह छतरी बड़े ही महत्व की थी। मौसम के अनुसार इसका प्रयोग तो सामान्य बात थी परन्तु इस छतरी के अन्दर कमानों से लटकती-झूलती चिलम, पीतल का लोटा (तुम्बह), खोसू, चिमटा, छोटी-छोटी पोटलियों में बँधा लकड़ी का कोयला, कहवा पत्ती, चीनी, सब्ज़ इलायची, बादाम, काली मिर्च आदि हमें चीनी यात्री फाहयान और ह्यूनसांग के धुँधले से व्यक्तित्व का आभास दिलाती। वास्तव में विश्राम करने के दौरान वह एक-आध खोसू कहवा बनाकर नई ऊर्जा के साथ आगे की यात्रा पर निकल पड़ते।

भर्गशिखा पर्वत की ओट से सूर्य भगवान के निकलते ही कोई नदी में स्नान आदि से निवृत्त होकर तर्पण करने बैठता तो कोई नमाज़ अदा करने के लिए अपना आसन लगाता। गाँव का चरवाहा जोर की सीटी बजा कर गायों के रेवड़ को 'बोड चकुल' की ओर हाँकता। कुछ गायें अपने बछड़े से अलग हो जाने के कारण रँभाती हुई रेवड़ से निकल भागने का असफल प्रयत्न करतीं। इन गायों के पीछे-पीछे उपले बनाने हेतु गोबर इकट्ठा करने वाली किशोरियाँ ताज़ा-ताज़ा उत्सर्जित गोबर पर अपना हक जमाते हुए घास के तिनके को या लकड़ी के टुकड़े को उसमें ठोंसते हुए कहती "यथ छुव परीर दस्तगीर" यानि जो कोई मेरे सिवा इस गोबर को उठा लेगा वह दस्तगीर साहब से दण्डित या शापित होगा। प्रायः ऐसे अवसर पर किशोरियाँ आपस में झगड़ पड़तीं, कभी-कभी नौबत यहाँ तक आ जाती कि गोबर से सने हाथों से एक दूसरे का गला भी पकड़ लेतीं। दोपहर होने पर गाँव की औरतें नदी तट पर चर रहे नवजात गाय के बछड़ों को कोमल कूटी हुई घास खिलाने या मिट्टी के नोकदार कुल्हड़ों (तोंत वॅर) से दूध पिलाने आ जातीं। पुरोहिताई करने वाले पण्डित पहलगाँव के जंगलों से लाई धूप की जड़ियों को काफूर, रुई, घी, तिल और लकड़ी के कोयले के साथ एक बड़ी-सी समतल शिला पर कूटते। इस तरह बना हुआ शुद्ध धूप न केवल धार्मिक कार्यों में प्रयुक्त होता बल्कि इसका कुछ भाग अभिमन्त्रित होकर भूत-प्रेत या चुड़ैल-डाकिनी में विश्वास करने वालों के पास भी पहुँच जाता। बेद के पेड़ से टेक गलाए गाँव का ज्योतिषी नवजात यजमान की जन्मकुण्डली बना रहा होता। एशमुकाम से आया हुआ 'ऋषि' घोड़े को पेड़ से बाँध कर सुस्ता लेता और अपने मुरीदों को तावीज भी बाँटता।

नदी किनारे के एक छोर पर कोई अपनी भेड़-बकरियों को गर्मियों में पहलगाँव

मार्तण्ड मन्दिर, जम्मू-कश्मीर

की चराहगाहों में भेजने से पहले ऊन उतार रहा होता। एक ओर गाँव के वयोवृद्ध तकली पर ऊन के धागे को लिपटा रहे होते तो दूसरी ओर अधेड़ उम्र वाले लोई बनाने के लिए लम्बाई के बलताने को फैला (यीं त्राव) रहे होते। कोई मछुवारों को दूर से आता देख घास के जूते (पुलहोर) बनाने बैठ जाता जिन्हें वे मछुवारों को मछली के बदले दे देते। ऐसे जूते मछुवारों के लिए बहुत ही उपयोगी होते। पानी में ये बड़े ही नरम हो जाते हैं और कंकर-पत्थर पर फिसलन से बचाते हैं। बरी दुपहरी में कन्धे पर बन्दूक टिकाये शिकारी के पीछे-पीछे बच्चों की एक टोली वहाँ तक जाती है जहाँ नदी के बीच किसी शिला पर भगत बने बगुले पर उसके निशाना चूकने की संभावना कम होती। निशाना दागते ही पेड़ों पर पक्षी फुर्र से उड़ जातें इस तरह दिन में नदी के किनारे गाँव के सभी छोटे-मोटे गृह उद्योग तथा क्रियाकलाप प्रदर्शित होकर सायंकाल तक समेट लिए जाते। चूल्हा-चौके का काम निपटा कर गाँव की अल्हड़ नारियाँ चाँदनी रात को देर रात तक लोकगीत या रोफ गीत गातीं जिसे लिद्दर किनारे से मन्द-मन्द आती शीतल हवा दूर तक विस्तार देती। कभी-कभी शाम को इस नदी के तट का वह भाग जिसे गाँव के नवयुवकों ने खेल का मैदान बनाया है, वाहथोर या अकिनगाम से आए 'भाण्डों' के लिए रंगमंच बन जाता जहाँ वे कश्मीरी लोकनाटक भाण्डपॉथॅर का मंचन करते। मुझे आज भी उस मसखरे का वह मज़ाक याद है जब उसने 'अकनन्दुन' नामक लोकनाटक के अभिनय के दौरान सिसकियाँ लेते गाँववालों की मनःस्थिति को सँभालने के लिए कहा था, "आप लोगों को मालूम है कि ये वाद्य बजाने वाले अपने वाद्यों के माध्यम से क्या कह रहे हैं? ढोल वाला कहता है–"डोंभ बुज़य तै डोंभ बुज़य (अंतड़ियाँ भूनूंगा, अंतड़ियाँ भूनूंगा)। शहनाई वाला कहता है–"कोमॅन कोमॅन (किनकी, किनकी); दूसरा शहनाई वाला कहता है–"नोमॅन नोमॅन (मसखरा बांस के डंडे से दर्शकों की ओर इशारा करते हुए इनका, इनका)। इस पर सारे दर्शक हँस-हँसकर लोटपोट हो जाते।

एक समय ऐसा भी था जब इस नदी के सुरम्य तथा शान्त तट पर साधक आध्यात्मिक उत्थान के लिए आते थे। बीसवीं सदी के साठ के दशक में जब मैं बालक ही था तो मेरे चाचा जी मुझे इस नदी के तट पर एक छोटे से तम्बू में रहने वाले एक साधक के पास ले जाते थे। उनका नाम स्वामी हीरानन्द था जो अपने चन्द शिष्यों के साथ इस सुरम्य स्थल पर शायद शान्ति लाभ के लिए आए हुए थे।

हमारे गाँव के लिद्दर तट सिने जगत को भी आकर्षित करते हैं। सरगम फिल्म के 'डफली वाले डफली बजा' गाने की या फिर लावारिस फिल्म की शूटिंग को मैं अभी भी नहीं भूलता, जिसको देखने के लिए गाँव के आबाल-वृद्ध सुबह से ही नदी के तट पर एकत्रित हो जाते थे। शूटिंग देख कर देहाती युवक-युवतियाँ अजीब-सी मनोवृत्ति के शिकार हो जाते थे और हीरो या हीरोइन बनने के लिए बम्बई (मुंबई) जाने का सपना पालने लगते थे। कई बार स्वयं लेखक भी ऐसे मनोविकार से उभर चुका है।

अपने गाँव की यह नदी मेरे बचपन का झूलना और यौवन का प्रेमालिंगन रही है जिसको भूलना अपने अस्तित्व को भूलने के समान होगा। जिस गाँव और उसकी नदी को इतिहास, साहित्य, मिथक, लोकसंस्कृति, यहाँ तक कि जनश्रुति ने अपने में सँजो कर रखा हो वह विस्मृत हो तो कैसे।

पता--8, अजीत कॉलोनी, तालाब तिल्लो,
जम्मू-180002 (जम्मू-कश्मीर)

जगदीश चतुर्वेदी का पुण्य स्मरण

डॉ. सुधेश

कवि और आलोचक। अब तक 31 पुस्तकें प्रकाशित। भूतपूर्व प्रोफेसर भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

14 सितम्बर, 2015 को सवेरे हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि और अकविता आन्दोलन के पुरस्कर्ता जगदीश चतुर्वेदी का देहान्त हो गया। वे 83 वर्ष के थे। उनके कृतित्व के आकलन के लिए अलग से कभी स्वतंत्र लेख लिखूंगा। इस लेख में उनसे जुड़े कुछ संस्मरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

उनसे मेरा परिचय पुराना है। 60 के दशक में जब वे 'अकविता' नामक एक पतली-सी पत्रिका के प्रकाशन में व्यस्त थे, तब वे लगभग हर शाम दिल्ली के कनॉट प्लेस में रीगल बिल्डिंग में स्थित कॉफी हाउस में आते थे। जब मैं 1954 में दिल्ली पहुँचा, तब दिल्ली की हर कवि गोष्ठी में जाने लगा। किसी मित्र ने कहा—"चलो कॉफी हाउस चलते हैं"। क्यों चलते हैं? उन्होंने यह नहीं बताया। पर जब मैं यदा-कदा कॉफी हाउस जाने लगा तो एक दिन मैंने एक गोरे-चिट्टे सुन्दर युवक को देखा, जिसकी मेज़ के आसपास की कुर्सियों पर पुरुषों और सुन्दर युवतियों की भीड़ थी। कॉफी पान के साथ कहकहे गूँज रहे थे। मैंने पास बैठे मित्र से पूछा, "यह गोरा युवक कौन है?"

उत्तर मिला, "अरे तुम नहीं जानते! यह जगदीश चतुर्वेदी है। हिन्दी का कवि।"

"पर उसके पास भीड़ क्यों लगी है?"

"यह एक पत्रिका छाप रहा है 'अकविता' नाम की, जिसमें अपनी कविताएँ छपवाने के लिए अनेक नये कवि और कवयित्रियां इसे घेरे रखती हैं। जगदीश बड़ा रंगीन और जिन्दादिल कवि है।"

उस दिन तो मैंने चतुर्वेदी को दूर से देखा था। पर एक दिन मैं कहानीकार मित्रों भीम सेन त्यागी और सुदर्शन चोपड़ा के साथ कॉफी हाउस गया। चोपड़ा ने कहा, "लो सिगरेट पियो।" मैंने कहा, "मैं नहीं पीता।"

"तो क्या खाक कविता लिखोगे? उधर देखो जगदीश चतुर्वेदी सिगरेट पी रहा है।"

उस दिन कॉफी हाउस से बाहर निकलते हुए मैंने चतुर्वेदी को पकड़ा और कहा, "जगदीश जी, मैं हूँ सुधेश।"

"अरे सुधेश जी! आप तो भाषा के पुराने लेखक हैं। 'भाषा' की आदिम सम्पादिका तारा टिक्कू ने आपको छापा था।"

कुछ देर बाद बोले, "अच्छा, 'अकविता' लीजिए और इसके लिए कुछ भेजिये।"

अगली किसी भेंट में उन्होंने इस पत्रिका के पिछले अंक देते हुए कहा, "आप अपनी कविताएँ भेजें या कविता पर कोई लेख।"

तब तक मैं अकविता के स्टन्ट से परिचित हो चुका था। इसलिए मैंने अपनी कविताएं उन्हें नहीं भेजीं, पर उनसे मिलना जारी रहा।

वे 'भाषा' और 'वार्षिकी' में मुझे छापते रहे। बीसियों बार मैं उनके घर और दफ्तर में उनसे मिला। जो केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, रामकृष्ण पुरम् में स्थित है। हर बार वे मुझे चाय पिलाते थे।

एक बार बोले, "हिन्दी निदेशालय की एक योजना है, जिसके अन्तर्गत भारतीय नाटककारों के चयनित नाटकों का एक संकलन छपेगा। आप किसी उर्दू के नाटककार के नाटक का अनुवाद कर दें।

मैंने उर्दू के प्रसिद्ध नाटककार रामशरण शर्मा के एक उर्दू नाटक का अनुवाद करके उन्हें दिया, जो यथासमय पुस्तक में छपा। इस क्रम में मेरी भेंट रामशरण शर्मा से उनके आनन्द निकेतन वाले मकान में हुई। शर्मा जी उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार किशन चन्दर के सम्बन्धी थे। (याद नहीं कि वे साले थे या बहनोई थे पर इनमें से एक थे।)

एक और प्रसंग याद आ रहा है—सन् 1983 में मैंने यूरोप के कुछ देशों की यात्रा की थी। अपने अनुभवों एवं संस्मरणों को एक पुस्तक 'यूरोप के मेरे अनुभव' शीर्षक से तैयार किया। कई वर्षों बाद जगदीश चतुर्वेदी से बत हुई इस पुस्तक के बारे में। तो बोले, "मेरी पुत्री अनुभूति और उसके पति ने एक प्रकाशन खोला है। आप पाण्डुलिपि दे दें। शायद वहाँ से छप जाए।" मैंने पाण्डुलिपि उन्हें दे दी। एक डेढ़ वर्ष

गुज़र गया। मैंने चतुर्वेदी से पूछा, "उस पाण्डुलिपि का क्या बना?"

"क्या करूँ सुधेश जी! लड़की और दामाद को सुझाव दे सकता था। पहले वे तैयार थे। अब उनका विचार प्रकाशक बनने का नहीं है। कुछ पुस्तकें छापकर वे थक गये या असन्तुष्ट हो विरक्त हो गये।"

पाण्डुलिपि मुझे वापस मिल गई। पर मित्र ने तो उसे छपवाने की कोशिश की थी। यह मेरे प्रति उनकी सदाशयता का सूचक है।

वह पुस्तक बाद में 'नई धरती के लोग' शीर्षक से छपी (नमन प्रकाश, दिल्ली)।

सन् संवत् तो याद नहीं, पर एक वर्ष मैं सख्त बीमार हो बिस्तर पर पड़ गया। जगदीश चतुर्वेदी को न जाने कैसे खबर मिल गई। वे अपने सहयोगी वीरेन्द्र सक्सेना को साथ ले जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पूर्वांचल परिसर में मेरे आवास पर पहुँचे। मैं चकित हुआ पर प्रसन्न भी। दोनों मित्रों के आने से मेरा दुःख का अनुभव कुछ तो तिरोहित हुआ। उसी प्रकार एक दिन धर्मेन्द्र गुप्त (कहानीकार व उपन्यासकार) भी मेरा हाल पूछने आये थे।

जगदीश चतुर्वेदी से जुड़े संस्मरण अनेक हैं, जिन्हें मैं स्मृति के आधार पर लिख रहा हूँ। एक दिन चतुर्वेदी ने फोन पर मुझसे कहा, "मॉरीशस के हिन्दी लेखक अभिमन्यु अनत मेरे घर आ रहे हैं। शाम को आप भी आएँ।"

मैंने पहुँच कर देखा कि वहाँ अभिमन्यु अनत, कमल किशोर गोयनका और गंगा प्रसाद विमल पहले से मौजूद थे और जगदीश जी अपने अन्दाज में कुछ कह रहे थे। मुझे देख कर बोले, "इनसे मिलिये। ये हैं कवि मित्र सुधेश जी।" अनत जी ने हाथ मिलाया। गोयनका जी और विमल जी मेरे पूर्व परिचित थे और मित्र हैं।

अनेक बातें हुईं और अनेक विषयों पर हुईं। इतने वर्षों बाद याद नहीं कि क्या कहा-सुना गया। हाँ इतना याद है कि अभिमन्यु अनत जी ने अपने सम्पादन में प्रकाशित पत्रिका 'वसन्त' का उल्लेख किया और सबसे कहा कि उसके लिए अपनी रचनाएँ भेजें।

चाय के कई दौर चले। चतुर्वेदी चाय के शौकीन थे। एक दौर समाप्त हुआ तो वे बोले, "एक दौर सोमरस का भी हो जाए। मेरे पास विदेशी ब्राण्ड भी हैं।"

मैंने कहा, "मैं तो पीता नहीं। आप लोग पियें और मुझे जाने की आज्ञा दें।"

जगदीश ने आग्रह किया, "सुधेश भाई, ऐसी क्या जल्दी है? अपनी कविता सुना डालो।"

मैंने कहा, "अभिमन्यु जी से सुनना चाहिये। जाने वे फिर कब मिलें।"

मेरा अनुमान है कि लगभग डेढ़ दो घंटों बाद महफिल विसर्जित हुई।

इन प्रसंगों में काल का व्यतिक्रम हो सकता है। शायद ये प्रसंग मेरी डायरी में भी अंकित हों। एक और दिन की याद आ रही है। तब मैं रोहिणी में रहने लगा था। चतुर्वेदी जी के घर गया तो वे एक फाइल लिये बैठे थे। मुझे देखकर बोले, "सुधेश जी, अच्छा हुआ आप आ गये। मैं आधुनिक हिन्दी कविता की एक योजना पर काम कर रहा हूँ। इस पर भारत सरकार ने मुझे अनुदान स्वीकृत किया है।"

"योजना क्या है?"

"आधुनिक हिन्दी कवियों की चयनित कविताओं का एक संग्रह तैयार कर रहा हूँ। आप भी अपनी लगभग दस कविताएँ, अपने परिचय और कविता विषयक वक्तव्य के साथ भेज दें।' कवियों का चयन वे उनकी जन्मतिथि के आधार पर कर रहे थे और 1947 तक जिनका जन्म हुआ केवल उन्हीं कवियों को उस योजना में शामिल करने का उनका विचार था।

चाय-पान और गप-शप के दौरान मैंने वादा किया, "अपनी कविताएँ भेज दूँगा।"

बाद में अपनी कविताएँ उन्हें भेज दीं। पर पता नहीं चला कि वह संग्रह छपा या नहीं। हाँ, इतना याद है कि एक भेंट में चतुर्वेदी जी ने बताया था कि पाण्डुलिपि एक प्रकाशक को दे दी है। उसने कम्पोजिंग शुरू कर दी हे। प्रकाशक का नाम उन्होंने बताया, जो अब मुझे याद नहीं है।

एक और संस्मरण सुनिये। जब वे साठ वर्ष के हुए तो उन पर केन्द्रित एक विशाल ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना बनी। चतुर्वेदी जी ने कहा कि मैं उनके पुराने गीतों के संग्रह 'पूर्वराग' की समीक्षा लिख दूँ। उनके मित्रों और प्रशंसकों ने उन पर अनेक संस्मरणात्मक लेख लिखे। उनकी पुस्तकों का मूल्यांकन भी कई मित्रों ने किया। मैंने 'पूर्वराग' की समीक्षा लिख कर भेज दी, जो पुस्तक में संकलित हुई। पुस्तक छपने के बाद उसके लोकार्पण का निश्चय हुआ। त्रिवेणी सभागार में डॉ. नगेन्द्र ने उसका लोकार्पण किया। उस कार्यक्रम के लिए जो वक्ता निश्चित हुए थे, उनमें मेरा भी नाम था। जब निमन्त्रण पत्र छप कर आया तो वक्ताओं की सूची से मेरा नाम गायब था। मैंने कुछ नहीं कहा। लेकिन कार्यक्रम से एक दिन पहले जगदीश जी ने मुझे टेलीफोन किया और कहने लगे, "सुधेश जी, क्षमा कर दीजिए?"

"किस बात के लिए?"

"जब मैंने कार्ड में आपका नाम नहीं देखा तो मैं चौंका। अमुक मित्र की

गलती से आपका नाम नहीं छप सका। तो बन्धु! क्षमा कर दें। लेकिन आप कार्यक्रम में आइये और बोलिये भी।''

ऐसा था चतुर्वेदी जी का मैत्रीभाव। वे सब को साथ लेकर चलते थे।

मैं कार्यक्रम में गया और श्रोताओं में बैठ गया। अनेक वक्ता मंच पर डॉ. नगेन्द्र और चुतर्वेदी जी के अगल-बगल विराजमान थे। मंच संचालन एक मित्र कर रहे थे। श्रोताओं की भारी भीड़ थी, जिनमें दिल्ली के अनेक साहित्यकार, पत्रकार, मीडिया के प्रतिनिधि आदि उपस्थित थे। बोलने वाले जमकर बोले और निश्चित समय के बाद तक बोले। कार्यक्रम लम्बा होता गया। बहुत देर बार श्रोता खिसकने लगे। मैं भी बाहर आ गया और अपने घर चला आया। मुझे पता नहीं कि संचालक ने बोलने के लिए मेरा नाम पुकारा या नहीं।

एक और प्रसंग याद आ रहा है। एक दिन मैंने आकाशवाणी, दिल्ली की हिन्दी वार्ता विभाग की संयोजक श्रीमती अचला शर्मा को सुझाव दिया कि 'हिन्दी कविता पर नगरीकरण का प्रभाव' विषय पर कुछ लेखकों की बातचीत रिकॉर्ड करें, तो श्रोताओं को पसन्द आएगी। उन्हें सुझाव पसन्द आया। कहने लगीं, ''किन-किन को बुलाया जाए? कुछ नाम बताइये।'' मैंने जगदीश चतुर्वेदी और अजित कुमार के नाम बताये। एक दिन निश्चित समय पर मैं, जगदीश चतुर्वेदी, अजित कुमार और महीप सिंह स्टूडियो में पहुँचे। श्रीमती शर्मा से यह तय हुआ था कि मैं बातचीत का माडरेटर रहूँगा। जब रिकॉर्डिंग शुरू हुआ तो श्रीमती अचला शर्मा ने अजित कुमार को माडरेटर की भूमिका सौंप दी। मैं चकित हुआ कुछ स्तंभित भी। कुछ क्षणों तक सोचा कि स्टूडियो से बाहर निकल जाऊँ। फिर बुद्धि ने कहा कि जो कार्यक्रम मेरे सुझाव पर रिकॉर्ड हो रहा हे, उसका बहिष्कार ठीक नहीं होगा। मैं बातचीत में शामिल हुआ, पर बुझा-बुझा-सा रहा।

जगदीश चतुर्वेदी और अजित कुमार दोनों कवि हैं, जम कर बोले। महीप सिंह का कविता से दूर का सम्बन्ध है। लगभग आधा घंटे की बातचीत को ध्वन्यांकन में जगदीश चतुर्वेदी सबसे बढ़िया बोले। अजित कुमार ने पहले भूमिका बनाने में, फिर प्रतिभागियों से प्रश्न पूछने में सबसे अधिक समय लिया। वे प्रश्न पूछने से पहले भी लघु भाषण देने लग। कुल मिलाकर बातचीत रोचक रही और उसके मुख्य आधार जगदीश चतुर्वेदी तथा अजित कुमार रहे।

दिल्ली के कॉफी हाउस में, जो तीन जगहों पर स्थानान्तरित हुआ, मेरी अनेक मुलाकातें वहाँ जगदीश चतुर्वेदी से हुईं। वहाँ नियमित रूप से हाज़िरी देने वालों में विष्णु प्रभाकर, जगदीश चतुर्वेदी और शायद धर्मेन्द्र गुप्त थे। मैं कभी-कभी जाता था। 'अकविता' का हर नया अंक कॉफी हाउस में ही चतुर्वेदी जी के हाथों वितरित होता था। 'अकविता' के पक्ष और विपक्ष में वहाँ खूब चखचख होती थी। सबका निशाना थे जगदीश चतुर्वेदी। वे हर बार हँस-हँस कर झेलते थे। कुछ सोचते समय वे अपना चश्मा पोंछने लगते थे। कह सकता हूँ कि 'अकविता' पत्रिका के वितरण के साथ उस की लोकप्रियता में कॉफी हाउस की भी भूमिका है। किसी दिन कॉफी हाउस के स्टेज के नायक जगदीश चतुर्वेदी होते थे, बाकी खलनायक और दर्शकगण। खलनायिका कोई नहीं थी, बल्कि अनेक तो उपनायक थीं।

समकालीन कविता का परिदृश्य जगदीश चतुर्वेदी के बिना अधूरा है। उनकी अधिक प्रसिद्धि अकविता आन्दोलन के सूत्रधार के रूप में हुई, पर किसी ज़माने में वे जगदीश शलभ के नाम से गीत लिखा करते थे। फिर गीत छोड़कर अतुकान्त कविता पर आ गये। तब उपनाम शलभ छोड़कर चतुर्वेदी लिखने लगे। शायद कम लोगों को मालूम होगा कि उन्होंने कुछ कहानियाँ भी लिखीं। पर उनके कृतित्व पर फिर कभी लिखूँगा।

314, सरल अपार्टमैंट्स, सैक्टर-10,
द्वारका, नई दिल्ली-110075

मुक्तिबोध जन्म शताब्दी
(13 नवम्बर 1917 : 13 नवम्बर 2017)

कबीरी सोच के धनी मुक्तिबोध

आलोचक नामवर सिंह से महावीर अग्रवाल की बातचीत

डॉ. महावीर अग्रवाल

लेखक जाने-माने साहित्यकार एवं 'सापेक्ष' पत्रिका के संपादक हैं।

महावीर अग्रवाल–आपने एक बार कहा था, "सच के साथ खड़े रहने का मूल्य मुक्तिबोध ने जीवन भर चुकाया। गहराई से विचार करने पर समझ में आता है, सच कहने का साहस उनके भीतर अंत तक रहा। कबीर की तरह अदम्य साहस और विलक्षण प्रतिभा के धनी थे मुक्तिबोध।"

नामवर सिंह–केवल सच कहने का साहस ही नहीं, अन्याय और अत्याचार के खिलाफ खड़े रहने का साहस भी था। कबीर की तरह ही जन-जन के, सत्य के पक्षधर रहे मुक्तिबोध। एक ओर जीवन जीने का अंदाज उनका कबीर की तरह था, तो दूसरी ओर उनका फक्कड़पन देखकर 'निराला' की याद आती है। 'जन्मशताब्दी मुक्तिबोध' के अवसर पर आज गजानन माधव मुक्तिबोध को हमारे समय का दूसरा कबीर मानता हूँ मैं।

महावीर अग्रवाल–कबीर एक संज्ञा है, कबीर एक फैंटेसी है, कबीर एक प्रतीक है, कबीर एक नाम ही नहीं एक दहकता हुआ बिम्ब है। मुक्तिबोध के जीवन और रचनात्मक अवदान का मूल्यांकन क्या हम इसी रूप में कर सकते हैं?

नामवर सिंह–निश्चित रूप से तटस्थ होकर मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। मुक्तिबोध के बेबाक कथन 'पार्टनर, तुम्हारी पालिटिक्स क्या है?' का यह

छोटा सा एक टुकड़ा एक बिम्ब की तरह, कलमकारों के बीच एक मशाल की तरह प्रज्ज्वलित है। मुझे लगता है दो टूक कहने का यही साहस मुक्तिबोध को बहुत ऊँचा उठाता है। मुक्तिबोध के समूचे साहित्य की संरचना में उनका कबीरी व्यक्तित्व पूरी तरह घुल-मिल जाता है। आप देखिए, कविता की इन पंक्तियों में मुक्तिबोध की बेचैनी, विचारों की सच्चाई और पारदर्शिता कितनी सहजता के साथ आती है–

"यह भीतर की जिन्दगी
नहाती रहती है
हिय के विक्षोभों के
खूनी फव्वारों में
अंगारों में।
इस दिल के भरे रिवाल्वर में
बेचैनी जोर मारती है,
इसमें क्या शक?"

महावीर अग्रवाल–मुक्तिबोध के भीतर हमेशा धधकता रहा जीवन का सर्वाधिक शक्तिशाली संकल्प। मुक्तिबोध की संवेदना के साथ ज्ञान और उनकी जनपक्षधरता को आपने अपनी पुस्तक 'कविता के नए प्रतिमान' अंधेरे में पुनश्चः पृष्ठ 226 में लिखा है, "जाहिर है कि सामाजिक संघर्ष में भाग लेकर ही इस आत्मसंघर्ष को निर्णायक दिशा की ओर उन्मुख किया जा सकता है। इसीलिए मुक्तिबोध की अधिकांश कविताओं का अंत किसी हड़ताल या जन-आंदोलन अथवा किसी जनक्रांति के आरम्भ से होता है और काव्य नायक कभी तो इस आंदोलन या क्रांति का द्रष्टा मात्र होता है और कभी उसका प्रेरक। इस तरह आत्मसंघर्ष की परिणति अंततः सामाजिक संघर्ष में होती है।"

नामवर सिंह–वैचारिक-संघर्ष के साथ जीवन-संघर्ष की जैसी तथ्यात्मक प्रतीति मुक्तिबोध के यहाँ है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। जीवन-संघर्ष की सूक्ष्म पड़ताल करते हुए मुक्तिबोध को समझा जा सकता है। मुक्तिबोध निम्नवर्गीय जीवन के जटिल अर्थतंत्र को पूरी तरह समझते थे। केवल समझते ही नहीं थे, उन्हें चेतना के बल पर बाहर भी निकालना चाहते थे। गरीब और गरीबी से जुड़ी चिंताओं के बीच, गहन अंधकार के बीच आशा की एक हल्की सी किरण उनके भीतर कैसे आकार लेती थी? इसे मुक्तिबोध के इस कथन द्वारा समझा जा सकता है। निम्न वर्ग में

जन्म लेने वाले नौनिहालों का भविष्य सँवारने के लिए उन्होंने अपनी बात इस तरह सबके सामने रखी, "इनके बच्चे बड़े होंगे। एजुकेशन तो क्या ले सकेंगे, इतना पैसा ही नहीं है, लेकिन हाँ, मैं अपने विचार, मैं अपनी सारी कल्पनाएँ और धारणाएँ उन्हें बता दूँगा। उनका सिस्टेमेटिक अध्ययन करा दूंगा। मैं उन्हें बड़े आदमियों की बैठक से दूर रखूँगा। उनके तौर-तरीकों से वे घृणा करें और वे अपने गरीबों में रहें। नए विचार दें। भविष्य की कल्पना तीव्र कर दें। उनकी जगतवादी चेतना को यथार्थ बना दें। उसी में मरें और उसी में जिएं।" मैं कहना यह चाहता हूँ स्थितियाँ कितनी ही विकट या प्रतिकूल क्यों न रही हों, उनके आंतरिक आत्मसंघर्ष और आत्मबोध ने मुक्तिबोध को भीतर से कभी कमजोर नहीं होने दिया। आंतरिक घुटन व तनाव भोगने की विवशता के बाद भी उनकी कविताओं में आशा और अवसाद का विचित्र गंगा-जमुनी समन्वय दृष्टिगत होता है।

महावीर अग्रवाल–आधुनिक जीवन में परिव्याप्त नैराश्य और कुंठा को, यत्र-तत्र पाए जाने वाले नैतिक मूल्यों के पतन को, कुपित होकर षड्यंत्र न हत्याएँ करने वाले अपराधी को, उसकी मानवीय दुर्बलता और अपूर्णता को वे जीवन के लिए अभिशाप मानते थे। किसी न किसी रूप में अपना प्रतिरोध दर्ज करते रहे मुक्तिबोध।

नामवर सिंह–मुक्तिबोध की कविताओं में यंत्रणा, त्रास, भूख, पीड़न, दरिद्रता और भय के बिम्ब और प्रतीक आते हैं। बार-बार आते हैं, लेकिन जीवन-जगत की सच्चाई को साथ लेकर आते हैं। पूरी तरह कबीरी मुद्रा में–

"विवाद में हिस्सा लेता हुआ मैं
सुनता हूँ ध्यान से
अपने ही शब्दों का नाद,
शब्दों का प्रवाह और
एकाएक भयभीत
पाता हूँ पसीने से सिंचित
अपना यह नग्न-मन।"

महावीर अग्रवाल–'आत्मसंघर्ष के कविः गजानन माधव मुक्तिबोध' लेख (कृतिः अंक 2, नवम्बर, 1958) में आपने लिखा है, "इस परिवर्तन की ऐतिहासिक सार्थकता पर विचार एक दूसरे स्तर पर भी किया जा सकता है। माना कि आत्मबोध और जगतबोध का विचार काफी पुराना है, किंतु हर सामाजिक परिवर्तन के साथ एक नए संदर्भ में बार-बार इस प्रश्न को उठाने की आवश्यकता महसूस होती है।" छह सौ साल बाद कबीर की तरह ही जोखिम उठाते रहे मुक्तिबोध। गहन जीवन-संघर्ष और वैचारिक मंथन के भीतर से निकला है उनका प्रतिरोध। किस तरह अपने विचारों पर अडिग रहे मुक्तिबोध।

नामवर सिंह–मैंने पहले भी कहा है, समय आने पर जो साहित्यकार या विचारक ईमानदारी और आत्म-समीक्षा के इस प्रश्न को उठाता है, वह इतिहास का कार्य करता है। मुक्तिबोध के समग्र लेखन में इस सहज ही निरखा व परखा जा सकता है। उनके पूरे जीवन में भी कबीर जैसी बेबाकी साफ नजर आती है। प्रतिबद्धता और निष्ठा से बनी उनकी एक अलग पहचान। मुक्तिबोध की चार पंक्तियों पर आपसे कई-कई बार चर्चा हो चुकी है। मुक्तिबोध के भीतर दायित्व बोध की अकुलाहट इस तरह बाहर आती है–

"बहुत-बहुत ज्यादा लिया
दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश,
अरे, जीवित रह गये तुम।
x x x
अब तक क्या किया
जीवन क्या जिया?"

महावीर अग्रवाल–इलाहाबाद में आयोजित पहली गोष्ठी में 20 सितम्बर, 1964 को 'एक साहित्यिक की डायरी' पर पहला समीक्षात्क आलेख आपने पढ़ा था। आलेख 'आत्म-साक्षात्कार और मानव-साक्षात्कार का एक असमाप्त संलाप' का समापन, साहित्यिक सच से सुलगती इन पंक्तियों से किया था, "आज के इतिहास के अभूतपूर्व दबाव का अहसास उनमें इतना गहरा था कि उन्हें अंततः साहित्य की भी सीमा का बोध हो गया था। इसीलिए स्वयं एक साहित्यकार होते हुए भी मुक्तिबोध यह कहने का साहस कर सके कि 'साहित्य पर आवश्यकता से अधिक भरोसा करना मूर्खता है।" क्योंकि साहित्य मनुष्य के आंशिक साक्षात्कारों की बिंब-तालिका भर तैयार करता है।" मुक्तिबोध इन पंक्तियों में किस तरह आँखों में आँखें डालकर साहित्य के सच का सामना करते हैं?

नामवर सिंह–मेरे मुँह की बात आपने छीन ली महावीर जी। सच लिखने का, सच कहने का यही साहस मुक्तिबोध को अतुलनीय बनाता है। दूसरों का सच तो हर कोई बखानता है। हाँ, अपना और अपने समाज का सच लिखने के लिए कबीर जैसा ही साहस चाहिए। मुक्तिबोध के भीतर सारी उमर सत्य की यह चिंगारी गुंगुवाती रही।

महावीर अग्रवाल–आपने अपने एक व्याख्यान (14 अक्टूबर, 1993 को जे.एन.यू. दिल्ली) में कहा है, "काव्य की आत्मा ध्वनि है। रस वाच्य नहीं होता है, कथित नहीं होता है, वह केवल व्यंजित ही हो सकता है। इसलिए काव्य की आत्मा रस है जो ध्वनित होती है। जिस काव्य में वह है, वह श्रेष्ठ है।" मुझे लगता है कबीर और मुक्तिबोध दोनों के काव्य में यह ध्वनि निरन्तर निकलती रही है।

नामवर सिंह–संघर्षशीलता और सच्चाई का वैशिष्ट्य जिस काव्य में होता है, उसी में यह ध्वनि निकल सकती है।

कबीर अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ अपने समय में उठ खड़े हुए, और मुक्तिबोध अपने समय में। पिछले छह सौ सालों से कबीर के एक-एक दोहे में निकलती ध्वनि से कौन परिचित नहीं है? उथल-पुथल से भरा समय रहा है मुक्तिबोध का। मुक्तिबोध के अंतस में उमड़ता-घुमड़ता रहा दुख और गुस्सा अपनी व्यंजना में इस तरह उद्घाटित होता है–

"अहं भाव उत्तुंड हुआ है तेरे मन में
जैसे घूरे पर उठा है
धृष्ट कुकुरमुत्ता उन्मत्त।"

कहना न होगा कि जीवन और जगत से इस तरह कबीर और मुक्तिबोध को जोड़ता है संवेदना का गतिशील यथार्थ।

महावीर अग्रवाल – सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक-वैचारिक संघर्ष की मिसाल बने मुक्तिबोध का जीवन, विचार के बल पर कलम से लड़ा गया युद्ध रहा है। वैचारिक संघर्ष के लिए मुक्तिबोध ने क्या नहीं झेला? जीवन भर असफलताओं से जूझते हुए, सक्रिय व सार्थक जीवन जीते हुए 47 साल की उम्र तक (13 नवम्बर 1917-11 सितम्बर 1964) अनूठी रचनात्मकता का इतिहास रचा।

नामवर सिंह–परम्पराओं की परिधि में बँधे रचनाकार को युग के सत्य से सीधे साक्षात्कार करने में बहुत समय लगता है। स्वतंत्र चेता मुक्तिबोध के आचरण ने उनके चिंतन को, उनकी अभिव्यक्ति को अधिक धारदार और सार्थक बनाया। सतत जागृत रहने वाले मुक्तिबोध निरन्तर नई रहा गढ़ते चले गए। शताब्दी वर्ष में उनको एक बार फिर से जानने और समझने की कोशिश होने लगी है। पचास बरस पहले श्रीकांत वर्मा द्वारा दिनांक 02 मार्च, 1964 को लिखा गया पत्र, इस बात का प्रमाण है कि, मुक्तिबोध गरीबी में और निरन्तर अभावों में रहने के बाद भी बेहद स्वाभिमानी थे। महावीर जी, आप ध्यान से देखिए और समझिए, मुक्तिबोध के संवेदनशील मन को किसी तरह ठेस न पहुंचे, इस बात का ध्यान भी पूरी तरह रखा गया है इस पत्र में–

"94-नार्थ एवेन्यू-नई दिल्ली-02
मार्च 64

आदरणीय मुक्तिबोध जी,

आपका पत्र मिला। आपकी तबियत का हाल जानने के लिए सभी दोस्त साहित्यकार बेचैन हैं। लगभग रोज ही नेमि जी, माचवे जी, श्री भारतभूषण अग्रवाल और कई नवयुवक साहित्यिक इस बारे में जिज्ञासाएँ व्यक्त करते हैं।

भारत जी की ओर से एक प्रस्ताव यह भी आया है कि कुछ लोग राजनांदगाँव जाएँ। मगर मैंने और नेमि जी ने मना कर दिया। इससे अधिक अच्छा यह होगा कि स्वस्थ होने पर आप एक-डेढ़ महीने दिल्ली आकर विश्राम करें।

आपकी बीमारी के समाचार से सबको, खासकर जिन्होंने आपको जाना है, गहरा सदमा पहुँचा है।

मध्यप्रदेश सरकार से एक चिट्ठी आई थी कि मध्यप्रदेश शासन ने आपके लिए आर्थिक सहायता और मेडिकल सुविधाएँ मंजूर की हैं। वह अब तक आपको मिली या नहीं। कृपया मुझे अविलम्ब सूचना भिजवाएँ। उक्त पत्र की प्रतिलिपि मैं संलग्न कर रहा हूँ।

आपका श्रीकांत वर्मा"

महावीर अग्रवाल–कितना अकूत प्रेम है, इस पत्र में। नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे और श्रीकांत वर्मा के पत्रों को पढ़कर मैं चकित रह जाता हूँ। सोचता हूँ मुक्तिबोध जीवन भर कितने सच्चे और कितने पारदर्शी रहे। हरिशंकर परसाई और भाऊ समर्थ से के संस्मरण और इन्टरव्यू बताते हैं कितनी चिंता है साहित्य समाज को मुक्तिबोध की?

नामवर सिंह–आज जिस तरह मेनुपुलेशन की प्रवृत्ति कलमकारों के बीच बढ़ी है। मुक्तिबोध का यह चरित्र और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है। व्यापक संदर्भ में पुनराविष्कार की जरूरत है। शोषकों के प्रति अपनी घृणा और नफरत को मुक्तिबोध, समूचे साहस के साथ तरह व्यक्त करते हैं–

"वर्तमान समाज चल नहीं सकता
पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय
बदल नहीं सकता
स्वातंत्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता
मुक्ति के मन को जन को।"

कबीर की तरह ही मुक्तिबोध अपनी बात कितने बेखौफ होकर बिना किसी लाग-लपेट के बेधड़क कहते हैं। जड़ताओं पर प्रहार करने वालों में अनगिनत कलमकारों में मुक्तिबोध अग्रणी रहे। गुरुवर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक बार मुझसे कहा, "कबीर को गहराई से समझने के लिए आवश्यक हो जाता है कि हम भी कबीर बनें, वरना कबीर को समझना कठिन है। कबीर का जीवन-दर्शन इतना स्पष्ट है, कि उनका सत्य सभी को समझ में आता है।" इसी बिंदु पर विचार करते हुए मुझे प्रतीत होता है, विरोध और विद्रोह की उनकी सच्ची सामाजिक चेतना को समझने के लिए हमें भी गजानन माधव मुक्तिबोध बनना होगा।

सम्पादक–'सापेक्ष', ए-14, आदर्शनगर,
दुर्ग-491001 (छत्तीसगढ़)

गुरु गोविन्द सिंह जी की 350वीं जयंती पर विशेष

शस्त्र और शास्त्र के पुजारी : साहिबे कमाल गुरु गोविन्द सिंह जी

दीपक कुमार सिन्हा

लेखक अकाल पुरुष गुरु गोविन्द सिंह जी की जन्म स्थली पटना (बिहार) से हैं। लेखन में रुचि तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन।

मनुष्य के जीवन में नयी आभा जगाने, कायाकल्प करने और तुच्छ से मुक्ति दिलाने की अद्भुत शक्ति जिनमें होती है, वे या तो ईश्वर कहलाते हैं, या फिर महापुरुष। वे न केवल हमारी इन्द्रियों या मन के स्वार्थी तत्वों को तृप्त करते बल्कि आत्मा को स्पर्श कर जीवन को सही दिशा प्रदान करते हैं। ऐसे ही महान संत और समाज सुधारक सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्द सिंह जी हुए, जिन्होंने इस धरा के मानव-मन में जाति-पाति और ऊँच-नीच की भावना समाप्त कर प्रेम और एकता का पाठ पढ़ाया। उन्होंने समाज में भक्ति, कर्मठता एवं नैतिकता की प्रेरणा देकर नयी चेतना उत्पन्न की और सुसुप्त तथा अंधकार में फँसे मानव जाति को भक्ति का प्रकाश दिखाकर उसे कर्मनिष्ठ बनाया।

दशमेश पिता और खालसा पंथ के संस्थापक गुरु गोविन्द सिंह जी ने धर्मगुरु होते हुए भी मानवीयता की रक्षा के लिये सदैव अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार किया था। वे एक कुशल योद्धा होने के साथ ही बहुत ही अच्छे कवि और साहित्यकार भी थे। इस संदर्भ में उन्होंने कहा है कि–

"लै कर दुधार गावै सिखन में वार आसा
पकड़ दुधारा बहै सत्रनू सिर आरा है
कड़छा ले हाथ में वरताव अतुट देग

कठिस कुडंड बाणा वेध केरे पारा है
भक्ति, ज्ञान, प्रेम, वैराग की सुनावै कथा
चढ़ कै तुरंग जग देवै ललकारा है
तत्व ज्ञा, दानी योद्धा ग्रही त्यागी गुरु चेला,
वाहि वाहि धन्न धन्न जनक हमारा"

तात्पर्य यह कि "जब से हमारा ब्रह्माण्ड बुद्धिमंडल में प्रवेश हुआ है, तब से ही यहाँ मानवीयता के रक्षक महापुरुष तथा शूरवीर परोपकारी आदि महापुरुष जन्म लेते रहे हैं, और उन्होंने अपने अद्वितीय चमत्कारों तथा सत्कर्मों से संसार को आश्चर्यचकित कर विदा हो जाते हैं। प्रत्येक महापुरुष के चमत्कारों में अंतर अवश्य होता है, जिसका निर्णय विद्वानों तथा महापुरुषों ने उनके इतिहास लिखते समय कर दिया करते हैं।"

साहिबे कमाल गुरु गोविन्द सिंह जी के जीवन चरित्र की तुलना संसार भर के महापुरुषों के जीवन चरित्र से जब हम करते हैं, तब इनकी प्रतिभा अलग ही दिखलाई पड़ती है। इन्होंने अपने जीवन में कई चमत्कार किये, जिसका साक्षी उनकी जन्मभूमि पटना साहिब के साथ ही पूरा भारतवर्ष है। उन्होंने स्वयं अपनी आत्मकथा 'विचित्र नाटक' में लिखा है कि–

"हम इह काज जगत मो आये,
धरम हेतु गुरदेव पठाये
जहाँ तहाँ तुम धरम बिथारो,
दुसट दोखीअन पकरि पछारो
कही काज धरा हम जनमं,
समझ लेहू साधू सभ मनमं
धरम चलावत संत उबारन,
दूसट सभन को मूल उपारन"

समाज के नवनिर्माण के लिये गुरु गोविन्द सिंह जी ने भारत भूमि पर अनेक क्रान्तिकारी प्रयोग किए जो मानव समाज की समानता के लिये थे। इस माध्यम से उन्होंने अपने अनुयायियों को अत्याचार के विरुद्ध लड़ने के लिये जागृत किया। इस समय इनका नारा था–

"मानस की जात सबै एकै पहिचानबो"

गुरु जी का यह ऐसा सिद्धान्त था, जिसने पीड़ित मानवता में एक नयी शक्ति और ऊर्जा का संचार किया। इस मंत्र ने न केवल समाज को भ्रम जाल और भेद भाव से बचाया बल्कि मजहबी पक्षपात को दूर करने में अमोघ अस्त्र का भी काम किया। उनका मानना था

कि मनुष्य इस धरा पर स्वतंत्र रूप से जन्म लेता है, फिर वह स्वार्थ और पक्षपात के मोहपाश में कैसे जकड़ जाता है? उन्होंने जिस क्रान्ति को जन्म दिया उसे सम्पूर्णता के शिखर पर पहुँचाया। उन्होंने अत्याचारी और शक्तिशाली साम्राज्य को पर्चा-पर्चा उखाड़ फेंकने का संकल्प लेकर 'खालसा पंथ' की स्थापना की थी। इससे गुरु गोविन्द सिंह जी ने सामाजिक समस्याओं को पहचान कर उसमें सुधार किया। इसमें इन्होंने पूर्ण निर्भयता, साहस और हिम्मत हौसले से कदम उठाये और नयी दिशा प्रदान की। उन्होंने बुझ चुकी देशभक्ति की ज्योति को नये सिरे से प्रज्जवलित किया। धर्म शक्ति को अस्त्र बनाकर उन्होंने सुधार की ऐसी बयार बहायी, कि सब कुछ भूलकर लोग एकता के सूत्र में बंध गये और अपनी खोयी हुई ताकत और शक्ति प्राप्त कर अपने अस्तित्व की रक्षा कर सके।

गुरु गोविन्द सिंह जी शहीद पिता के पुत्र और शहीद पुत्रों के पिता थे। वे अकाल पुरुष थे। और निश्चित रूप से विशुद्ध भारतीय देशभक्त थे। उन्होंने ऐसे समय में अपनी तलवार उठायी, जब निर्दोष मारे जा रहे थे। चारों ओर त्राहि-त्राहि मची थी। उनके कुशल दृष्टिकोण के कारण मुगल शासकों द्वारा किये गये धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अत्याचारों की घटनायें उनके समक्ष इस प्रकार गुजर रहीं थीं, जैसे उनके जीवन काल की घटना हों और उसके परिणामों से भली प्रकार वे परिचित हों। उनकी दृष्टि में हिन्दुओं की शताब्दियों से पराधीनता का कारण उन गलत सामाजिक प्रथाओं, रीतियों, गलत धार्मिक परम्पराओं, छुआछूत, भेदभाव और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों को बंट जाना था। इस सब के चलते हिन्दू समाज का अस्तित्व ही विलुप्ति की ओर तीव्रगति से अग्रसर हो गया था। ऐसे में उन्होंने पुरातन हिन्दू सभ्यता को पुनर्जन्म दिया और उनकी धमनियों में नये रक्त का संचार किया। उन्होंने हिन्दुओं की उदासीनता–निर्बलता को दूर करके नया साहस और ऊर्जा प्रदान की जिसके फलस्वरूप आतताईयों से अब वे लोहा लेने लगे और उन्हें भी गलत कर्मों की सजा देने लगे। यह बहुत बड़ी आश्चर्यजनक घटना थी। उन्होंने भक्ति के साथ ही शक्ति का भी पाठ पढ़ाया। इससे अचानक पठानों, अफगानों और मुगलों के आगे सिक्ख छाती तान खड़े हो गये। दुनिया के तमाम धर्म क्रान्तियों में यह एक अद्भुत घटना साबित हुई। शताब्दियों तक जो लोग भारत की इज्ज़त और धन-दौलत लूटने के साथ ही यहाँ की धर्म-संस्कृति को नष्ट कर रहे थे और निर्दोष जनता का कत्ल कर रहे थे, गुरु जी ने उन्हें अपनी संगठित एकता के बल पर भारत आने का रास्ता ही भुला दिया।

गुरु गोविन्द सिंह जी कर्तव्यनिष्ठ राष्ट्र रक्षक तथा धर्म संस्कृति के पुनर्जन्म दाता भी थे। उन्होंने खालसा पंथ के रूप में पूर्ण और शुद्ध आर्य वैदिक धर्म की ज्योति जलायी। बावजूद इसके उन्होंने कभी भी ऐसा दावा नहीं किया, कि वे ईश्वर का अवतार हैं, बल्कि उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया कि "वे इस संसार में नेकी और सच्चाई का संचार करने और इक ओंकार निरंकार के साथ ही मानवता को जोड़ने के लिए भेजे गए हैं फिर भी वे साधारण मनुष्य से अधिक कुछ नहीं हैं।" उन्होंने कहा है कि "मैं भी परमात्मा का दास हूँ और जगत का तमाशा देखने के लिए आया हूँ।" उन्होंने इतनी नम्रता के साथ सच्चाई का मार्ग दिखाया है, कि श्रद्धा से सिर झुकना लाज़मी है। निष्काम पथ प्रदर्शन का इससे बढ़िया उदाहरण और कहीं देखने को नहीं मिलता है। सच्चाई और पवित्रता के सिद्धान्तों पर चलने के लिए गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने सिक्ख-समुदाय को इस प्रकार दृढ़ किया, जिससे वे केवल एक अकाल सच्चिदानंद स्वरूप के समक्ष सदैव नतमस्तक रहते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि सृजनहार को छोड़ कर उसकी किसी भी रचना की पूजा करना उनका अपमान नहीं तो और क्या है। सृष्टि का कर्ता-धर्ता तो ईश्वर है। उनके अलावा किसी की पूजा करना क्या ईश्वर का अपमान नहीं है।

गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने धर्म उपदेशों को प्रचारित करने के लिए मातृभाषा का प्रयोग किया। वे अपने उपदेश को देश की प्रचलित भाषा में न देने को न केवल अनुचित अपितु बहुत हानिकारक और खतरनाक भी समझते थे। इस संदर्भ में हमें प्रथम गुरु गुरु नानक देव जी की यह वाणी स्मरण हो जाती है–

"हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ
मैं आपणा गुरु पूछि देखिआ
अवरु नाहि थाउ
धरती त हीरे लाल जड़ती
पलछिन लाल जड़ाउ
मोहणी मुखि मणी सोहै
करे रंगि पसाउ
मतु देखि भूला बीसरै तेरा
चिति न आवै नाउ।।"

अर्थात् "हरि के बिना यह जीव नष्ट हो जाये। मैंने अपने गुरु से भली-भाँति पूछ कर देख लिया है कि हरि के बिना मेरा और कोई आश्रय नहीं है। पृथ्वी हीरों और लालों से जड़ी हो और पलंग भी लालों से जड़े हुए हों। मन मोहित करने वाली सुन्दर स्त्री हो, जिसके मुख पर मणियाँ सुशोभित हों और आनन्द का प्रसाद कर रहीं हों। हे प्रभु, यह सब देख कर भी मैं भुलावे में न आऊँ, जिससे आपका मेरी आत्मा में प्रवेश ही न हो सके।"

साहिबे कमाल गुरु गोविन्द सिंह जी वीर रस के कवि थे। इस रस में रचना करने के साथ ही उन्होंने इस प्रकार के

काव्यों का संकलन कर उसे लोक भाषा में उसका अनुवाद भी करवाया। इतना ही नहीं, उन्होंने आम जनमानस की प्रवृति तथा रुचि को पहचान कर उनमें उत्सुकता भी जगायी। उनका मानना था कि उत्साह के साथ यदि परिश्रम किया जाये, तो आप जो भी चाहे प्राप्त कर सकते हैं। इनकी रचना जो दसम ग्रंथ के नाम से प्रसिद्ध है, का एक विशेष भाग भगवती दुर्गा और राक्षसों के साथ युद्धों से भरपूर है। इसकी भाषा जोशा भर देने वाली है। शब्दों से तलवार-ढाल की खनक सुनायी पड़ती है।

गुरु गोविन्द सिंह जी का जीवन बहुत ही सरल था। हर किसी से सहर्ष मिलना और फरियाद सुनकर, उसका समाधान करना, उनका प्रमुख कार्य था। सारी मानवता को प्यार के साथ जीने का संदेश ही उनका जीवन था। उनकी सभी रनचायें और जीवन कर्म का प्रमुख तत्व 'प्रेम' ही था, जिसे उन्होंने इन अक्षरों में लिखा भी है–

"साचु कहो सुन लेहु सभै
जिन प्रेम कीयो तिन ही प्रभु पायो"

दशमेश पिता सत्य के प्रेमी, अपने जीवन में उसे सदैव धारण करने वाले, अन्वेषणकर्ता, प्रेरक, उपासक और सत्य के ही पुजारी थे। इसी उद्देश्य से वे सदैव जीते रहे। उनका कहना था कि सर्व लौह की करामात, ऐसी करामात है, कि संसार भर की वस्तुयें इससे प्राप्त हो सकती हैं। जो मांगो वही मिलेगा। जो कही भी न मिलता हो, सर्व लौह की शरण में आकर मिल सकता है। जो इसकी आराधना करते हैं, वह हर दृष्टि से परिपूर्ण हो जाते हैं। उन्होंने सर्व लौह की तुलना शस्त्रों से की थी। जो जाति शस्त्रधारिणी होती है, दुनिया के तमाम अमूल्य वस्तुयें और सौभाग्य उनके चरणों में उपस्थित रहते हैं। उन्होंने अपने जीवन से मनुष्य जाति को आजीवन इसे अपनाने का संदेश भी दिया। उनमें न तो प्रशंसा की चाह थी, न किसी के द्वारा अपमानित किये जाने पर विद्वेश की भावना। वह बड़े शेर दिल इंसान थे। उन्हें पहाड़ी राजाओं ने हमेशा कष्ट दिया, उन पर आक्रमण किये, परन्तु उन्हीं पहाड़ी राजाओं ने गुरु जी से जब सहायता मांगी तो उनके सभी अपराध भुलाकर उनकी हर संभव सहायता की। उनका मानना था कि ईश्वर का कोई अवतार नहीं हो सकता। उन्होंने यह भी कहा है कि–

"जाल बधे सब ही मृत के
कोऊ राम रसूल न बाचन पाये
अंत मरे पलताए पृथ्वी पर
जे जग मैं अवतार कहाए
रे मन इलैल केल ही काल के
लागत काहि न पाइन पाए"

अर्थात् सभी मृत्यु के जाल में बंधे हुए हैं। यह शाश्वत सत्य है। इससे कोई राम रसूल नहीं बच सकता। जिन्होंने अवतार होने का दावा किया वह अंततः पश्चाताप करके मर गये। हे मन! तू अकेला ही अकाल पुरुष के चरण शरण क्यों नहीं जाता? गुरु गोविन्द सिंह जी उसी को ईश्वर मानते थे, जिसका वर्णन वेदों में है। परमात्मा को सदा सच्चिदानंद, अकाल, अजन्मा, अभय, सर्व व्यापक, बेअन्त, अपार, अरूप, असीम, अनन्त, सर्वाधार और न्यायकारी कहा है। उन्होंने जपु जी साहिब के आरम्भ में ईश्वर की आराधना इस प्रकार की है–

"चक्र चिह्न अरु बरन जाति
अरु पाति नहिन जहि
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ
कहि न सकत किह
अचल मूरति अनभउ प्रकाश
अमितोहि कहिजै
कोटि इन्द्र इन्द्राण साहु
साहाणि गणिजै
त्रिभवन महीप सुर नर असुर
नेत बन त्रिण कहत
तब सरब नाम कथे कवन
करम नाम बरनत सुमत"

उन्होंने हमेशा ही कहा है कि वह जो कुछ भी करते हैं, अकाल पुरुष की आज्ञा से करते हैं। उन्होंने कहा भी है कि–

"आगिया भई अकाल की,
तभी चलाइओ पंथ
सब सिखन को हुकम है,
गुरु मानियो ग्रंथ
गुरु ग्रंथ जी मानियो,
प्रगट गुरां की देह
जो प्रभि को मिलबो चहै
खोज शबद में लेह"

पंथ के नाम यह आदेश करके गुरु गोविन्द सिंह जी सचखंड जो पहुँचे। जोत में मिल गयी जोत और हो गये ईश्वर के एक रूप। साहिबे कमाल गुरु गोविन्द सिंह जी ने सन् 1708 ई. में नादेड़ में परलोकगमन किया। इसके साथ ही प्रथम गुरु नानक देव जी के समय से चली आ रही देहधारी गुरु की परम्परा का सदा के लिये समापन हो गया। उन्होंने इसके स्थान पर गुरु ग्रंथ साहिब को सम्पूर्ण गुरु की पदवी प्रदान कर, सिक्खों को यह आदेश दे दिया था, कि अब 'ग्रंथ साहिब' को ही गुरु माना जाये। इस ग्रंथ में ईश्वर और मोक्ष के अलावा जीवन के प्रत्येक पहलू के बारे में मानव मन को मार्गदर्शन मिलता है।

मंसाराम का अखाड़ा, पो.-पटना सिटी,
जिला–पटना-800008 (बिहार)

कहानी

तौल-मौल, भगवान से

बिमल सहगल

पिछले चार दशकों से सृजन में लगे विमल सहगल ललित कलाओं में भी दक्षता रखते हैं। पूर्व राजनयिक रह चुके हैं। एक विदेशी समाचार पत्र के स्तंभकार एवं विदेश मंत्रालय में सलाहकार।

हालांकि उस दिन शनिवार था, सारे सप्ताह की भाग-दौड़ और उनींदी के बाद कुछ पल और सो ले देने की मेरी ढेर मिन्नतों के बावजूद शारीरिक घड़ी की नुकीली सुइयों की चुभन ने मुझे सुबह-सुबह बिस्तर छोड़ देने पर मजबूर कर दिया। भारी कदमों से चल कर मैं रसोई में आ अपने लिए एक प्याला चाय बना बॉलकनी में चला आता हूँ। लगता है दिन की शुरुआत अभी से हो चुकी है। सड़क पर काफी लोग हैं–कुछ अपने कामों पे लपकते हुए, कुछ आराम से टहलते हुए और कुछ थमे हुए-से बाकी दुनिया को गरारियों की रगड़ीली पकड़ से छूट रफ्तार से एक नए दिन की भाग-दौड़ पर निकलते देखते हुए। मेरा ध्यान एक वृद्ध दंपत्ति की तरफ जाता है जो नीचे सड़क पर हाथों में हाथ डाल टहल रहा है। मुझे भी महीनों पहले किया अपना नए साल का संकल्प याद आता है और मैं उस दंपत्ति से प्रोत्साहित हो अपने स्पोर्ट्स शूज़ ढूँढ निकालता हूँ और अपने साल भर के लंबे विश्राम के बाद उन्हें पहन मिनटों में नीचे आ जाता हूँ, फिर से अपनी सुबह की सैर के दौरे पे।

बाहर का वातावरण शांत-सा है– यातायात की घुर्राहट अपने कोष्ठ में बंद अभी जंजीरों की पकड़ से आज़ाद नहीं हुई और न ही लोगों की भीड़ को अभी नेपथ्य से रंग-मंच पर आने का इशारा हुआ है। मेरे कुछ आगे एक बूढ़ी औरत है। पटरी पर चलते-चलते वह हर पेड़ के तने के समक्ष झुक-सी जाती है। न जाने क्या तलाश रही है। कुछ ही देर में जब मैं उसके पास से गुज़रता हूँ तो देखता हूँ कि उसके हाथ में कपड़े की एक पोटली है जिसमें से वह आटा निकाल कर उसकी कुछ चुटकियाँ पेड़ों की जड़ों के पास छिड़कती जाती है। समझ नहीं पाया कि यह उसकी प्राणियों के प्रति पुण्यशीलीता थी या शायद चींटीओं को खाना खिला वह अपने ही अगले जन्म के लिए पुण्य कमा रही थी।

बुढ़िया मुझे अपने पुराने घर के पास के सज्जन भाटिया साहिब की याद दिला जाती है जब सत्तर के दशक में इलैक्शन के दिनों में सत्ताधारी पार्टी को जीपें सप्लाई करने के ठेके में उन्होंने इतना कमाया और उनके ऐसे वारे-न्यारे हुए कि उनका परिवार दिल्ली की किसी अनाधिकृत कॉलोनी से उठ कर हमारे पड़ोस के इलाके में बनी एक नई विशाल कोठी मे आ जमा। उनके बारे में यह अफवाह भी बहुत गरम थी कि वह स्मलिंग का धंधा करते हैं। भाटिया साहिब हर सुबह अपने नौकर के साथ अपनी कार की डिग्गी में डबल रोटियाँ भर के ले आते और पास वाली मार्केट में उन गायों के झुंड को पेट भर खिलाते जिनको उनका मालिक सुबह-सुबह दूध दोह कर सड़कों पर पेट भरने को सारा दिन आवारा छोड़ देता था। पुण्य प्रदान करने वाली गायें अपने आराधक को कृतार्थ करने में कुछ समय लेतीं, तब तक ताजी ब्रैड के टुकड़े कुत्तों और भिखारी बच्चों को एक समान ललचाते रहते। पर जब तक दानवीर भाटिया साहिब और उनका भीमकाय नौकर पुण्य बटोर वहाँ से चले न जाते भूखे भिखारी बच्चे और बेचारे कुत्ते पवित्र-पावन उद्धारक गायों की आराधना में विघ्न डालने का दुस्साहस न कर पाते।

भाटिया-टाइप के कई लोगों को मैंने सेबों और केलों की टोकरियाँ हाथों में लिए महंगी कारों से दिल्ली के रिज एरिया के सुरक्षित वन के पास उतरते देखा है। पास में एकत्रित भिखारियों के जमाव को अनदेखा कर यह अमीर दानवीर सीधा बंदरों की टोलियों की तरफ रुख करते हैं क्योंकि यह बंदर ही उन्हें हनुमान देवता के प्रताप से इस जन्म के सभी पापों से मुक्ति दिला उनके लिए स्वर्ग के द्वार से प्रवेश सुरक्षित करवा सकते हैं।

घंटियों की तेज-तीखी ध्वनि से मेरे विचारों की शृंखला टूटती है। पास में ही एक मंदिर है। वहाँ बहुत से लोगों का जमाव है जो लाइन बनाए हाथों में फूलो, फलों, मिठाई और पैसों भरी प्रसाद की थैलियाँ या टोकरियाँ लिए भगवान के दर्शन के लिए खड़े हैं। मंदिर के साथ लगी दुकान का मालिक

बहुत व्यस्त दिखाई दे रहा है। श्रद्धालु अपनी गर्ज़ बनाम श्रद्धा व जेब की ताकत के अनुसार प्रसाद की टोकरियाँ बनवा रहे हैं। भगवान से जितना बड़ा काम, टोकरियों का फुलाव और भार उसके अनुसार ही बढ़ता जाता है। मैं कुछ देर रुक जाता हूँ और यह सब ध्यान से देखता हूँ। वहाँ की भीड़ में कई चेहरों को मैं पहचान पा रहा हूँ। आश्चर्यचकित हूँ कि उन्हें समाज में अन्यथा दुष्ट क्यों माना जाता है। कुलीनता और पुण्यशीलता का मुखौटा ओढ़े यह सभी लक्ष्मी देवी के कृपाभंडार से धन्य, उदारतापूर्व, बड़ी से बड़ी शानदार थालियों में अपनी मांगे लपेटे रोज सुबह-सुबह पुजारी के सौजन्य से भगवान से उसकी कृपादृष्टि के लिए तौल-मौल और सौदेबाजी करने आ जुटते हैं। हताश, ठगा-सा, कड़वाहट भरा मैं आगे बढ़ जाता हूँ।

दिन भी तेज कदमों से आगे बढ़ने लगा है। मेरे मार्केट की तरफ बढ़ने पर शनि देवता की मार्केटिंग टीम मेरा घेराव कर लेती है। आज शनिवार होने के कारण, स्टील के डोल बाँहों में लटकाए, शनि देवता के दूत उनके नाम पे सरसों का तेल और सिक्के रूपी दान वसूल रहे हैं और बदले में लोगों को शनि के प्रकोप से बचाने की इन्श्योरेंस पॉलिसी बाँट रहे हैं। एक व्यवसाय-घर से अभी थोड़ा दूर हट, मैं देखता हूँ कि भगवान के नाम पर चल रहा यह व्यवसाय भी काफी लाभप्रद है। महंगे सरसों के तेल से भरा डोल शाम को उनके विशेष संग्रह केन्द्र पर इतने पैसों में बदल लिया जाएगा कि उनसे एक और मनुहारी दैविक पेय का वरदान मिल जाए ओर तेल में गिराए सिक्कों के साथ मनभावी खान-पान का भी इंतजाम हो जाए।

मैं अब तक काफी दूर निकल आया हूँ। वापसी के लिए एक भिन्न रास्ता अपनाता हूँ। सामने बरसाती नाले के ऊपर बना एक लंबा पुल है। भारी सामान से लदे एक ठेले को पुल की चढ़ान पर धीरे होते और फिर रुकते देखता हूँ ताकि उसे ठेलने वाला अपनी साँसों को सँभाल सके जब मैं उस ठेले के पास पहुँचता हूँ ठेले वाला नए संकल्प से उसे फिर से ऊँचाई की तरफ ठेलने लग पड़ता है। मैं घिसटते पहियों की चरमराहट के साथ उसके हाँफने की आवाज़ के मिलते सुरों को पहचान पा रहा हूँ। उसकी इस दुर्दशा से द्रवित मैं पीछे से उसके साथ जुट जाता हूँ। पुल की लंबी चढ़ाई तक मैं ठेले को उसके साथ धकेलता हूँ और फिर ढलान पे उसे खुद फिसलने देता हूँ। बेशक हमारे चेहरे एक-दूसरे से छिपे रहते हैं पर हवा में तैरती हमारी मुस्कानें एक-दूसरे का अभिवादन करती हैं।

जैसे मैं आगे बढ़ता हूँ दूर से बच्चों के शरारती शोरगुल की आवाज़ें सुनाई देने लगती हैं। मैं एक नर्सरी स्कूल के पास से गुज़रता हूँ जिसके गेट पर बच्चों के लिए सौदा बेचने वालों की भीड़ लगी है। वहाँ एक आइसक्रमी की रेहड़ी भी है और कुछ बच्चे उन्हें छोड़ने आए माँ-बाप को मना आइसक्रीम लेने में सफल हो चुके हैं। पास में ही सड़क के उस पार एक मजदूर औरत पटरी पर सड़क किनारे लगे पत्थरों को बदलने के काम में लगी है। उसके चार छोटे-छोटे बच्चे इस पार आइसक्रीम की रेहड़ी के नजदीक जमे हैं और बड़ी हसरत से स्कूलों बच्चों को आइसक्रीम के चटकारे लेते हुए देख रहे हैं। जैसे ही कोई बच्चा आइसक्रीम खा कर खाली कप नीचे फैंकता है वो आपस में होड़ लगा उस पर लपकते हैं और उसमें लगी बची-खुची मिठास को चाट लेते हैं। मैं अकस्मात् अपने आप उस रेहड़ी की तरफ बढ़ जाता हूँ और चार बड़े कप ले उनकी तरफ बढ़ाता हूँ। हिचकिचाहट से वो अपनी माँ की तरफ अनुमति के लिए देखते हैं। कुछ देर रुक कर, एक सावधान नज़र से वह उन्हें इशारा कर देती है।

अपनी वापसी की राह पर जल्दी से कदम बढ़ाते हुए मेरे दिमाग में कहीं बजती किसी दिव्य मंदिर की सुखदायक सुरीली घंटियाँ मुझे सुनाई दे रही हैं। शायद उनमें उन मासूम बच्चों की खिलखिलाहट भी शामिल है।

ई-602, पंचशील अपार्टमैंट्स,
प्लॉट नं. 24, सैक्टर-4, द्वारका,
नई दिल्ली-110078

कहानी

बापू का देश

डॉ. अनामिका प्रकाश श्रीवास्तव

लगभग बीस वर्षों से लगातार देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में लेखन। आकाशवाणी झाँसी मथुरा, छतरपुर से कहानियों का प्रसारण भी हुआ है।

...''तुम भी किस जमाने की बात करते हो, सुखी? अरे अब ये सब बातें छोड़ो, ये सत्य, ये अहिंसा, ये सदाचार, ये नैतिकता, ये सब बुजदिलों की बातें हैं। ओ जमाना गुजर गया, जब लोग इनके बल पर ही समाज में अपना ऊँचा स्थान बना लेते थे। आज इनके चक्कर में पड़ोगे तो मि. सुखवीर, खाने को दाने भी नहीं मिलेंगे, नाम बदलना पड़ जायेगा तुझे। सुखवीर से दुखवीर बन जायेगा।'' विकास ने सुखवीर को समझाने का प्रयास किया।

''देख विकास, जैसे तुझे अपने सिद्धान्तों पर विश्वास है न, वैसे ही मुझे अपने गांधी जी के सिद्धान्तों पर पूरा विश्वास है। जब तक दम में दम है मैं इन्हीं सिद्धान्तों पर चलने और चलाने का प्रयास करता रहूंगा।''

दोनों के बीच अपने-अपने मत को लेकर काफी समय तक बहस होती रही। रिजल्ट, वही ढाक के तीन पात, न कोई हारा, न कोई जीता। मुंह से मुंह हारता है कभी।

वक्त भी अजीब खेल खेलता है। इन दोनों की विचारधारा में, क्रियाकलाप में जमीन आसमान की दूरी है। एक आग तो एक पानी। एक राम तो एक रावण। एक यूपी का तो एक गुजरात का। विकास कानपुर तथा सुखवीर अहमदाबाद का निवासी था।...दोनों कालेज की पढ़ाई पूरी करने के लिए इलाहाबाद आए थे। दैवयोग से दोनों एक ही कालेज के छात्र थे। दोनों की दोस्ती भी एक संयोग थी। बी.एस.सी. करने के बाद आजकल दोनों ही इंजीनियरिंग की कोचिंग कर रहे हैं।

''देख सुखवीर, तू स्वयं कुछ भी कर, किसी भी सिद्धान्त पर चल लेकिन किसी और को चलाने का प्रयास मत करना, नहीं तो लोग तुझे खांमखां पागल समझ बैठेंगे, क्योंकि वास्तव में तू पागल तो नहीं ही है ये मुझे विश्वास है। '' विकास ने फिर उसे छेड़ने का प्रयास किया। वैसे ये दोनों एक दूसरे की हंसी उड़ाने से नहीं चूकते। दोनों बड़े खुशमिजाज हैं। एक दूसरे की टांग खींचते तो हैं। पर कभी बुरा नहीं मानते।

''हां ठीक है ठीक है, मुझे तू सचमुच पागल समझ ले और थोड़ी देर के लिए मेरा पीछा छोड़, मुझे जरूरी काम करना है।'' सुखवीर काम में जुट गया।

''अच्छा बाबा अब मैं भी चलता हूं, तू समझता है तेरे पास ही काम है, मैं तो आवारा हूं मुझे भी एक जरूरी काम है।'' विकास बोला।

काम और तुझे? वह भी जरूरी? क्यों हांकता है?...सुखवीर ने प्रश्न किया। ''अरे बहुत ही जरूरी काम है, जिसमें सबसे ज्यादा फायदा तो तेरा ही है, लेकिन तेरे पास सुनने को टाइम ही नहीं है, तो...मैं क्या कर सकता हूं।'' अच्छा मैं चलता हूं, बाय।...

सुखवीर विकास को जाते देखता रहा। ''मेरे फायदे का काम, और इसके पास! ये तो सम्भव ही नहीं है... खांमखां एक तुर्रा छोड़ कर चला गया। जैसे मैं इसकी बेसिर पैर की बातों में विश्वास कर लूंगा। हूं।''

सुखवीर को अपने सर्टीफिकेट किसी गजटेड आफीसर से अटेस्ट करवाने थे। कचहरी उसके क्वार्टर के पास ही थी अतः वह तहसीलदार के आफिस पहुंच गया।

एक बड़े शानदार कमरे के एक हिस्से पर डायस पड़ा हुआ था जिसके ऊपर तहसीलदार साहब की सीट थी। सीट के ठीक ऊपर काफी पुराने जमाने का पंखा मंथर गति से चल रहा था। तहसील के सारे मुकदमे इसी अदालत में सुने जाते। तहसीलदार एक जज की हैसियत से इस आसन पर विराजते तो उनकी शान चौगुनी हो जाती। जज के आसन के ठीक पीछे की दीवाल पर बड़े करीने से लगाकर रखे गए गांधी जी मुसकरा रहे थे। मैं मन ही मन गांधी जी को अभिवादन कर, उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर नतमस्तक हो गया।

अभी जज साहब की कुर्सी खाली थी। मैंने वहां के मुंशी जी से जानना चाहा। ''नमस्ते भाई साहब''। नमस्ते कहिए, क्या काम है?

''मुझे तहसीलदार साहब से मिलना है।'' मैंने उत्तर दिया।

''लेकिन क्यों? आप काम बताइए।... मेरे पास समय कम है, जरा जल्दी बताएँ।''

''जी, ... वो बात है कि, मुझे अपनी कुछ मार्कशीट अटेस्ट करवानी हैं।''

''तो ऐसे बोलिए न, फालतू में परेशान हो रहे हैं। इधर लाइए क्या-क्या हैं?''

सुखवीर ने उन्हें सर्टिफिकेट दिखाते हुए एक-एक करके समझा दिया, "कुल कितनी हैं?" मुंशी जी ने गिनकर देखा।

"कुल पाँच हैं"।

"अच्छा दीजिए।" कहते हुए मुंशी जी ने बायां हाथ आगे बढ़ा दिया।

"जी... जी सर बस इतनी ही हैं।"

"अरे अजीब घनचक्कर हैं आप। क्या पहली बार आये हो? अरे यहाँ फोकट में कुछ नहीं होता। चलिए निकालिये जल्दी से, मेरे पास इतना फालतू का टाइम नहीं है। चलिए जल्दी कीजिए।"

"सर, मैं समझा नहीं।"

"अच्छा, तो आप समझ नहीं पा रहे हैं कि मैं क्या कह रहा हूँ? किस कक्षा तक पढ़े हो? अच्छा बी.एस.सी.... पास हो। लेकिन क्या चोकर दे के पास किया है? अरे यहाँ इस देश में पैसे के बिना कुछ होता है भला। चलो, निकालो, पाँच के हिसाब से पाँच सर्टिफिकेट के हुए पच्चीस। चलो पच्चीस निकालो।"

"क्यों मजाक कर रहे हैं अंकल? भला अटेस्ट कराने के भी पैसे देने पड़ते हैं कहीं। और फिर ये तो घूसखोरी है, आप इस न्यायालय में ही न्याय के खिलाफ कार्य कर रहे हैं।"

"अच्छा, तो बड़े कायदे-कानून मालूम हैं आपको, जेब में टका नहीं और चले हैं अटेस्ट करवाने। हूँ, ये लीजिए अपनी दो कौड़ी के सर्टिफिकेट। और यहाँ से चलते बनिए। जब जेब में कुछ टका हो तब इस दरवाजे के अन्दर आने की हिम्मत करना।" मुंशी फिर अपने काम में लग गया। सुखवीर कुछ देर तक उसे घूरता रहा, सरेआम इस तरह लूट-खसोट को देखकर उसका मन बहुत बेचैन होने लगा। उसे लगा यहाँ तक आया हूँ तो थोड़ी और ट्राई करता हूँ, शायद बात बन जाए। वह मुस्कराते हुए फिर मुंशी जी के पास पहुँच गया। मुस्कराकर बड़े प्यार से बोला।

"अंकल, आप कितने अच्छे हैं। चूँकि अभी मेरे पास पैसे नहीं हैं, और शायद ऐसे काम उधार भी नहीं किए जाते, उधार नहीं करेंगे न आप।"

"बिल्कुल नहीं।" मुंशी सख्त होकर बोला।

"कोई बात नहीं अंकल, मैं कल पैसा लेकर आऊँगा। अब अंकल आप तो जानते ही हैं, बिना आप लोगों के सहयोग के हम लोग कुछ कर ही नहीं सकते। जाति, आय, निवास आदि के प्रमाण पत्र तो आप लोग ही बनवाते हैं, अतः आप लोगों से सम्बन्ध बनाके रखने में ही भलाई है।"...

"अरे चाय वाले। जरा इधर तो आना।" चाय वाला पास आ गया।

"जी साहब"।

"देखो ऐसा करो 100 ग्राम गरमा गरम भजिया और तीन चार कप स्पेशल कड़क चाय लेकर आओ।"

"जी साहब, अभी लाया।" चाय वाला चला गया।

चाय, पकौड़ी का असर मुंशी साहब को होने लगा था, मुस्कराते हुए बोले--"बेटे नाम क्या तुम्हारा?...."

"जी, मेरा नाम सुखवीर।"...

"हाँ, तो बेटा सुखवीर। अब तुम इस जमाने के हिसाब से ढलने की तरफ कदम बढ़ा रहे हो, अब सफलता तुम्हारे चरणों में होगी।"

"लेकिन अंकल, एक बात मेरी समझ में नहीं आयी। इजाजत हो तो पूछूँ।"

"बिल्कुल निसंकोच पूछो बेटे। पूछो क्या पूछना चाहते हो?"

चाय वाला भजिया और चार कप चाय ले आया। दो पास पास ही काम कर रहे दो अन्य सज्जनों की मेज तक पहुँचा दिया। सुखवीर और मुंशी महोदय चाय पीने लगे।

"हाँ, तो तुम कुछ जानना चाहते थे। बोलो संकोच मत करो। पूछो-पूछो।"

"अंकल ये किसकी तस्वीर है?" सुखवीर ने गाँधी जी की तरफ इशारा किया।

"अरे कमाल है, आप इनको नहीं जानते! भई कमाल है, पता नहीं लोग कैसे पढ़ाते हैं? सारी पढ़ाई चौपट है। मेरा भी एक नाती है, थर्ड में पढ़ता है। एक पब्लिक स्कूल में। एक दिन मैंने उससे पूछ लिया, बेटे एक और एक कितने होते हैं? वह बोला, 'दो'। मैंने कहा धत्त तेरे की, दुनिया जाने कब की एक और एक ग्यारह में पहुँच गयी और तू अभी एक और एक दो में ही अटका हुआ है।"

"अरे भाई ये अपने गाँधी बाबा हैं, हाँ, मोहनदास करमचन्द गाँधी। ये हमारे राष्ट्रपिता हैं, इन्होंने हमें आजादी दिलायी थी। बेटे, वाह क्या इन्सान थे वो। कितना जोश था उनमें? अरे इन्होंने अपनी सत्य और अहिंसा के बल पर अंग्रेजों के होश उड़ा दिए। वास्तव में ऐसा जीवट वाला इन्सान कभी-कभी ही धरती पर जन्म लेता है। अरे बेटे, गाँधी जी तो एक अवतारी पुरुष थे।"

"अच्छा अंकल, इतनी खूबी थी इनमें? भई कमाल है, धन्य है यह भारत भूमि जहाँ पर ये पैदा हुए।" सुखवीर ने पहले गाँधी जी को फिर मुंशी जी को झुककर प्रणाम किया।

"अरे... रे... रे... बेटे मुझे क्यों प्रणाम करते हो? प्रणाम योग्य तो गाँधी जी हैं, एक फरिश्ता, एक देवता, अरे मैं तो कहता हूँ, ये तो साक्षात् भगवान थे। तभी तो अकेले, बिना किसी गोली बारुद के अंग्रेजों को देश से बाहर खदेड़ दिया था। अरे! बेटे उनके पास एक लाठी हरदम रहती थी, चाहते तो मार-मार के गोरों की टाँगें तोड़ देते, लेकिन नहीं, उन्होंने कभी किसी पर लाठी नहीं उठायी। अहिंसावादी जो थे।"

"आप धन्य हैं अंकल, गाँधी जी के बारे में आप इतना ढेर सारा जानते हैं। आप कितने महान हैं? और एक मैं, निरा

मूर्ख, अहमदाबाद में गाँधी आश्रम के बिल्कुल बगल का रहने वाला मैं गाँधी जी को नहीं जानता? अंकल मैं वाकई बहुत शर्मिन्दा हूँ।"

"अरे इसमें शरमाने की कौन सी बात है। आप ही अकेले नहीं हैं, ऐसे करोड़ों नौजवान हैं जो गाँधी जी के बारे में ए.बी.सी.डी. तक नहीं जानते। जबकि सरकार ने स्कूल की किताबों में गाँधी जी के बारे में सारी जानकारी छाप रखी है। अब बेटे, जब मास्टर जी पढ़ायेंगे नहीं, बच्चे पढ़ेंगे नहीं तो क्या खाक पता पड़ेगा कि 'गाँधी जी' किस चीज का नाम है। है कि नहीं? अब इसमें भला सरकार का क्या कसूर है?"

"जी अंकल, आप तो गाँधी जी के तगड़े भक्त लगते हैं?"

"हाँ बेटा, जब से मैंने होश सँभाला, गाँधी जी के सिद्धान्तों को कभी नहीं छोड़ा। आज तक मैं उनके बताए रास्ते पर ही चल रहा हूँ। रही बात भक्ति की, तो बेटा, प्रतिदिन उनके समक्ष बैठकर रघुपति राघव राजाराम का पाठ करता हूँ। सुबह शाम दो-दो अगरबत्ती नियम से जलाता हूँ। यहाँ पर भी सुबह-सुबह आफिस की साफ-सफाई हो जाने के बाद बड़ी श्रद्धा से पाँच अगरबत्ती जरूर जलाता हूँ। आखिर उनका कितना ऋण है हम सब पर। उनकी अनेक किताबें भी हैं मेरे पास।"

"भई वाह, अंकल, आप जैसा गाँधी भक्त मैंने जिन्दगी में आज तक कोई दूसरा नहीं देखा। आपके रोम-रोम में गाँधी जी की विचारधारा टपक रही है।" मुंशी जी का सीना गर्व से फूल गया।

"लेकिन अंकल एक बात मेरी समझ में नहीं आयी।... आप घर में तो दो अगरबत्तियाँ लगाते हैं लेकिन यहाँ इस फोटो में पाँच लगाते हैं! भला ऐसा क्यों? इसका क्या राज है?"

"अरे बेटा! गाँधी जी कभी-कभी मौन व्रत भी रखते थे, जैसे गाँधी जी के तीन बन्दर हैं न वह अपने इशारों से कितनी बड़ी शिक्षा दे रहे हैं? वह तो तुम्हें पता ही होगी या वो भी नहीं जानते।"

"नहीं अंकल, आपकी तरह ठीक से नहीं जानता, जरा आप ही ठीक से समझा दीजिए न।"

"अरे बेटे, ये बहुत ही आसान-सी बात है। तीनों बन्दर बुराई के बारे में इशारा करते हैं। पहला बन्दर आँख बन्द करके संदेश देना चाहता है कि बुराई कितनी भी होती रहे उसकी तरफ क्यों देखते हो, ये तो होनी ही है, देखने में समय क्यों बर्बाद करो? बुरा काम करने वाले का साथ दो। दूसरा बन्दर, अपने कान बन्द कर हमें सिखा रहा है कि बुरा काम न करने के लिए कोई कितना भी आपको रोके-टोके, उसकी सुनो ही नहीं, जो मन में आए करते जाओ। और रहा तीसरा बन्दर वह तो बहुत ही सुपर सन्देश देता है बेटे, ...वह समझाना चाहता है कि कितना भी बुरा काम कोई कर रहा हो, उसे करने दो, उससे कुछ नहीं कहो।... देखा मौन भाषा का कमाल। धन्य हैं गाँधी जी आप धन्य हैं कितनी सुपर सोच थी आपकी।"

"लेकिन अंकल आप तो पाँच अगरबत्ती लगाने का रहस्य तो भूल ही गए। बताइए न।"

"बेटे ये भी मौन इशारे वाली बात है। गाँधी जी का चित्र देख रहे हो न, इसमें गाँधी जी ने अपना दाहिना हाथ ऊपर उठा रखा है। यहाँ पर गाँधी जी अपनी पाँचों उँगुलियों के इशारे से यह बताना चाह रहे हैं कि पाँच का अंक बड़ा शुभ है। इसलिए पाँच अगरबत्तियाँ जलाता हूँ।"

"अच्छा तो ये बात है। लेकिन एक बात मुझे बेचैन कर रही है। आप गाँधी जी के चित्र के सामने ही उनके सिद्धान्तों का मखौल उड़ाते हैं। घूस लेकर पब्लिक को चूसते हैं। आप तो गाँधी जी के सच्चे अनुयायी हैं फिर आप ऐसा क्यों करते हैं?"

"बेटे समझो तो सही, गाँधी जी का मौन इशारा। गाँधी जी ने बहुत-सी बातें मौन व्रत के कारण इशारों में कही हैं।"

"वो कैसे? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आया।" नयी बात जानने के लिए सुखवीर उत्सुक हो गया।

"देखो बेटे, गाँधी जी के चित्र को ध्यान से देखो, अपने हाथ को ऊपर उठाकर अपने पंजे से इशारा कर रहे हैं कि हर एक काम के कम से कम पाँच तो लेने ही हैं। ज्यादा कितने भी हो सकते हैं। इस हाथ का साथ ही दूसरा मतलब भी समझाया हुआ है कि जो पाँच भी न दे, उसे चपत मार कर यहाँ से बाहर भगा दो।"

"और अंकल, इनकी लाठी! ये भी कुछ कह रही है शायद! मैं बताऊँ अंकल।..."

"हाँ, हाँ, तुम ही बताओ।"...

"अंकल आज आपकी भाषा में बताऊँ तो शायद ये कह रही है कि जो पाँच भी न दे, थप्पड़ से भी न जाए, उसे लाठी मारकर बाहर खदेड़ दो। है न अंकल।"

"शाबाश बेटे, बिल्कुल ठीक समझे।... और इनकी कमर में जो यह घड़ी लटक रही है न ये भी बड़ा जबर्दस्त संदेश दे रही है कि जो बातें ऊपर बताई गयी हैं, आज के समय की यही माँग है। अगर पूरी तरह गाँधी जी के इशारों पर चलें तो, कैसा भी समय आ जाए, ससुरा तुम्हारी कमर में लटका रहेगा, तुम्हारे अधीन ही रहेगा। एक आखिरी बात और अगर गाँधी जी के इन सिद्धान्तों पर नहीं चले तो तुम भी गाँधी जी की तरह एक फटी-सी लंगोटी लगाए घूमोगे।"

ठीक इसी समय तहसीलदार साहब का प्रवेश हुआ। सब लोग उठ खड़े हुए। "थैंक यू अंकल, आपने गाँधी जी की बहुत ही सारगर्भित विचारधारा बताई। मैं धन्य हो गया।"

सुखवीर की शक्ल देखने लायक थी। गाँधी जी के सिद्धान्तों, उनकी

मर्यादाओं, उनके नैतिक मूल्यों का एक न्यायालय के अन्दर सरेआम ऐसा घिनौना बलात्कार देखकर वो पागल-सा हो गया। उसकी आत्मा धिक्कार उठी, देख तेरे गाँधी जी के सिद्धान्तों की कैसी अर्थी निकाल रहे हैं ये न्यायालय के ठेकेदार। जिन गाँधी के सिद्धान्तों पर चलने के लिए तू हर तूफान से टकराने को तैयार रहता है, आज एक न्यायालय के पिद्दी से मुंशी ने तेरी सारी हवा निकाल दी।

उसे लगा कि सरेआम इस तरह सत्य की हत्या देखकर भी वह चुप रहे ये तो बड़ी ही बुझदिली होगी। मुझे कुछ न कुछ करना होगा। सुखवीर का सिर तनाव से चकरा रहा था। "लेकिन मैं करूँ तो क्या करूँ?... मुझे इसकी शिकायत न्यायाधीश महोदय से करनी चाहिए।"... वह हिम्मत करके तहसीलदार साहब के पास पहुँच गया।

"गुड मार्निंग सर, मैं हूँ सुखवीर। मैं आपसे एक मिनट बात करना चाहता हूँ, सिर्फ एक मिनट।"

"कहिए, क्या बात है मि. सुखवीर?"

"सर, मुझे अपनी मार्कशीट्स अटेस्ट करानी हैं.... सर...।"

जज महोदय बात काटते हुए बोले-- "ठीक है, हो जायेगी, मुंशी जी को दे दीजिए।" जज महोदय ने मुंशीजी की तरफ इशारा किया।

"लेकिन सर, बात ये है न कि मुंशी जी मुझसे कह रहे थे कि मैं उन्हें अटेस्ट करवाने के लिए...।"

"आपने घंटे भर से जाने क्या मैं-मैं लगा रखी है। जाइए, उनसे मिल लीजिए ये काम वहीं करवाएंगे, उन्हीं की जिम्मेदारी में है ये काम।"

"लेकिन सर, बात वो नहीं है, जो आप समझ रहे हैं। बात ये है कि..."

जज महोदय झल्ला पड़े और डाँटते हुए बोले, "देखो मिस्टर, मेरे पास फालतू कामों के लिए समय नहीं है, सरकार मुझे तुम्हारे अटेस्टेशन के लिए पैसा नहीं देती।... फिर भी मैं समझा रहा हूँ कि हो जाएगा, परेशान न हों, लेकिन फिर भी मुझे बार-बार डिस्टर्ब किए जा रहे हो।... जाइए, मुंशी जी से मिलिए, जैसा वो कहें वैसा ही कीजिए, फालतू टेंशन मत लीजिए, काम हो जाएगा।"

तभी एक चपरासी एक रजिस्टर लेकर आया, जिसमें अगले दिन के लिए एक आदेश लिखा था। जज महोदय के इशारे पर मुंशी ने आदेश पढ़ना शुरू किया।

"कल दो अक्टूबर है यानी गाँधी जी का जन्म दिन है, पिछले वर्षों की भाँति इस वर्ष भी हम सभी इसे धूमधाम से मनाना है। कल के इस पुनीत अवसर पर पूज्य गांधी जी की आदमकद अष्टधातु की प्रतिमा का अनावरण सुबह ठीक आठ बजे जिलाधिकारी महोदय करेंगे। सभी की ठीक समय पर उपस्थिति अनिवार्य है। आज से श्रीमान् तहसीलदार।"

फिर चपरासी रजिस्टर में बारी-बारी से सभी के हस्ताक्षर करवाकर बाहर चला गया। सुखवीर सोचने लगा, गाँधी जी के देश में गाँधी जी का कितना मान-सम्मान है? उनका कद कितना ऊँचा है? लोग किस तरह से उनकी मर्यादाओं का पालन कर रहे हैं? ये सब देख-समझ कर सुखवीर के कदम अधिक देर तक वहाँ नहीं ठहर सके। एक हारे हुए घायल सिपाही की तरह वह कोर्ट से बाहर निकला था। उसे लगने लगा वह अब सुखवीर नहीं रहा। दुःख और दर्द के कारण अब वह शायद दुखवीर हो गया हो।

वह लुटा-पिटा सा चेहरा लिए कमरे में पहुँचा। विकास कब से उसका इन्तजार कर रहा था। वह बोला, "अरे यार सुखी... आज तू इतना दुःखी क्यों लग रहा है? तू तो वीर था आज ये पीर-सा क्यों दिख रहा है? सब खैरियत तो है!... बता तो सही क्या हुआ?"

सुखवीर सोच रहा था इसे बताऊँ या नहीं बताऊँ! अगर बताऊँ तो कैसे बताऊँ? और क्यूँ बताऊँ? ये क्या करेगा? इसके बस में क्या है? सुनकर हँसी ही उड़ाएगा मेरी...!

"क्या सोच रहा है?" विकास ने पूछा।

"कुछ नहीं यार, कल गाँधी जयन्ती है न, उसी के बारे में सोच रहा था।..."

"अरे उनके बारे में क्या सोच रहा था? क्या वो अब जीवित हैं जो उनके बारे में सोच रहा था?"

"हाँ यार विकास! तभी तो सोच रहा हूँ कि आज हमारे गाँधी क्या प्रासंगिक रहे गये हैं? उनके सिद्धान्त, उनकी अहिंसा, उनका सत्य, उनकी नैतिकता क्या किसी काम की रह भी गयी है या नहीं? अगर है तो फिर उनके नाम पर अपने-अपने हिसाब से अर्थ निकाल कर लोग रोटियाँ क्यों सेंक रहे हैं? और अगर नहीं तो फिर गाँधी जयन्ती मनाने की क्या आवश्यकता है?... यार विकास आज मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। अब मैं सोने जा रहा हूँ। कृपया मुझे डिस्टर्ब मत करना।"

सुखवीर चार पाँच घंटे से लेटा सोने का प्रयास कर रहा है। लेकिन नींद उसकी आँखों से कोसों दूर चली गयी है। उसकी नींद क्यों उड़ी हुई है। उसे समझ में नहीं आता। सारा देश तो चादर तान के सो रहा है। फिर तू ही क्यों परेशान हो रहा है? क्यों...? आखिर किसलिए, किसके लिए? उसका दर्द आँखों की कोर से छलकने ही वाला है, वह रोक नहीं पा रहा है।... क्यों?

जी-9, सूर्यपुरम्, नन्दनपुरा,
झाँसी-284003 (उत्तर प्रदेश)

अभी भी

चित्रा मुद्गल

हमारे समय की महत्वपूर्ण-चर्चित कथाकार। कई वर्षों से लेखन में सक्रिय हैं। लेखिका की कहानी पहले भी 'गगनांचल' पत्रिका में प्रकाशित हुई हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कहानियां निरंतर प्रकाशित।

"क्या करूँ इसका?" तवे पर पराँठा उलटते-पलटते हुए रोष से भरकर उसने अनिल के बढ़े हुए हाथों पर हिकारत-भरी दृष्टि डाली।

"क्या करना होता है इसका?" अनिल की आवाज में चिढ़ स्पष्ट ही तीखी हो आयी, "मेरे पास तुमसे मुँह लगने को समय नहीं है। सीधे-सीधे चेक पर दस्तखत कर दो।"

"भूल जाओ!" वह भी अप्रत्याशित रूप से दृढ़ हो आयी, "ये पैसे मेरे हैं। इन पर मेरा अधिकार है...बहुत धर्मखाता हो गया! माँ-बेटे ने मिलकर जीना हराम कर रखा है। जोंक की तरह चूसते रहे तुम लोग अब तक!" क्रोध से उसने अनिल के बढ़े हाथ से चेकबुक छीनकर रसोई के प्लेटफार्म पर पटक दी, "बचा ही क्या है इसमें?" फिर चेकबुक उठाकर तमतमायी-सी सीधे अपने शयनकक्ष में ड्रेसिंग टेबल के समक्ष खड़े, बाल सँवारते सुरेश की बगल में जा खड़ी हुई, "इस तमाशे को मैं और बरदाश्त नहीं कर सकती।"

"कौन-सा तमाशा?" झुककर ड्रेसिंग टेबल पर कन्धा रखते हुए सुरेश उसकी ओर मुड़ा। 'चेकबुक' और शिल्पा के ठीक पीछे आ खड़े हुए अनिल पर दृष्टि पड़ते ही वह सारा माजरा भाँप गया। स्वर की क्षण-भर पहले की कोमलता लुप्त हो गयी, "तुम समझती क्यों नहीं! अनिल को सख्त जरूरत है, दुकान की नीलामी के पैसे भरने हैं उसे। दस हजार वह दे चुका है, शेष न भरे तो वह दस हजार भी डूब जायेगा। तभी न पैसे चाहता है—कहीं से ब्याज पर रुपए उधार ले और घर पर पैसे पड़े हुए हों, यह तर्कसंगत हैं?"

"मगर जरूरत का कोई आदि-अन्त तो हो? जरूरत है तो कभी बाहर भी हाथ-पैर मारो, गिद्ध दृष्टि मेरे ही पैसों पर लगी हुई है..." वितृष्णा से भरकर शिल्पा ने चेकबुक बिस्तर पर उछाल दी। मुड़ी और बड़बड़ाती हुई रसोई की ओर बढ़ गयी।

जब भी किसी पर कोई जरूरत टूटती है, उससे जबरन पैसे निकलवा लेते हैं। उसी के पैसों से ननदों की सुख-सुविधाएँ जुटाई गयीं। देवर अनिल के मकान की किस्तें भरी गयीं। डीडीए की दुकानों की नीलामी में से अब वह अपने लिए दुकान खरीदना चाह रहा है। एकमुश्त अस्सी हजार की रकम की जरूरत है उसे। यह रकम आये कहाँ से?उसी के खाते से न! पाँच लाख की रकम टूटते-टूटते अब सवा-डेढ़ लाख बची है। चाहती है कि किशु की पढ़ाई के लिए पचास के लगभग फिक्स डिपॉजिट कर दे, ताकि वह निर्विघ्न पढ़ सके। इनका मोहताज होना पड़ा तो ये तत्काल उसे तम्बुओं वाले स्कूल में डाल देंगे। ए.पी.जे. में जब वह किशु को दाखिले का इण्टरव्यू दिलाने ले गयी थी, बीजी ने कितना बावेला खड़ा किया था—बड़े स्कूल से क्या होता है भला! पढ़ने वाले टाट्-पट्टी के स्कूल में भी पढ़कर एक-से-एक बड़े पद पर पहुँचते हैं। उनके बच्चे कौन-से अंग्रेजी स्कूल में पढ़े थे, पर मुकेश पायलट बना कि नहीं! उसके बेटे में बुद्धि होगी तो क्या तम्बुओं वाला, क्या अंग्रेजी स्कूल, अपने-आप कुछ-न-कुछ बनकर दिखा देगा।

सुरेश ने भी दबी जुबान से माँ का ही समर्थन किया था। यहाँ तक कि देवर अनिल ने ताना कसा था—"बाप की कमाई समझ के मत उड़ाओ, मेरे भाई की खून-पसीने की कमायी है, सोच-समझकर खर्च करो।" सुनकर वह बिलबिला उठी थी। लेकिन अपने निश्चय पर अडिग रही थी कि कुछ भी हो,वह इस मामले में कतई समझौता नहीं करेगी। किशु को बड़े स्कूल में ही पढ़ायेगी। रात उसने सुरेश से विरोध प्रकट किया था कि आखिर उसके मुँह में बोल है भी कि नहीं? ब्याहता ननदें, देवर, सास-सभी जने मिलकर जब-तब उसकी छीछालेदर करते रहते हैं और वह है कि गुटर-गूँ बना उदासीन-सा देखता रहता है। आखिर वह उसका पति है, और पति होने के नाते क्या पत्नी पर होते अत्याचार के प्रति उसका कोई कर्तव्य नहीं?

"अनिल से कौन भिड़े, बचपन से ही वह निहायत उद्दण्ड रहा है। बीजी, बाबजूद

इसके उसे सिर चढ़ाये रहती है, उसकी बीबी से कुछ बोलने की हिम्मत उनकी इसलिए नहीं होती। मैं सब समझता हूँ, मगर बीजी के सामने मुँह खोलना..."

यह कैसा समझना है।

वह करवट भरके, सोते हुए नन्हे किशु को अंक में भींच, न जाने कब तक बहते आँसुओं से मन का गुबार धोती रही थी। तकिये पर जगह-जगह पोखर लबलबा आये थे।

"इसे देख मेरा दिल दहलता है, भाई साहब! आज मैं हूँ तो सारा कुटुम्ब बरगद की छाँव-तले पक्षी-पखेरुओं-सा हिल-हिल सिमटा हुआ है। कल आँख मुँदते कौन किस राह लगे, किसे पता! जीवन न भरोसों से कटता है, न पैसों से... आदमी के बिना सब अकारथ... शिल्पी मेरी बहू नहीं, बेटी है, बेटी! उमर क्या है अभी उसकी, बेटे की शेष यही तो निशानी है, सोचती हूँ! बेटा गया तो गया.. ईश्वर को यही मंजूर था... मगर यह बेटी... इसका जो कुछ उजड़ा है, फिर से बस जाये... आँसू नहीं देखे जाते इसके। यह जीवन से लहलहायेगी तो महसूस होगा–मेरा मुकेश मेरी आँखों के सामने फल-फूल रहा है... सब्र बाँधूँगी।"

बाबू जी की आँखों में विस्मय छलछला आया था–"क्या कह रही हैं, बहन जी?"

"ठीक कह रही हूँ, भाई साहब! बिरादरी की मुझे परवाह नहीं... बच्चों की खुशी मेरे लिए पहले है... सुरेश को मना लिया है मैंने! मान गया है वह अपने बड़े भाई की बेवा से ब्याह को, परिवार का हित इसी में है। समझता है सब..."

बाबू जी ने दबी जुबान से आपत्ति उठायी, "साल भी नहीं बीता है मुकेश को गुजरे..."

"कोख का दुःख न साल बीते कम होगा, न उमर गुजरे। दूसरों का मुँह बन्द करने के लिए दुनिया में कोई सूई-तागा ईजाद नहीं हुआ... कोर्ट मैरिज ठीक रहेगी... मुकेश का जो भी रुपया-पैसा मिलेगा, सब शिल्पा के नाम जमा रहेगा।"

बाबू जी की जुबान कृतज्ञता के बोझ से जड़ हो आयी थी। यह सास नहीं है, असली माँ है शिल्पा की। पूर्वजन्म की। वे कौन होते हैं उसकी चिन्ता करने वाले! साक्षात् दुर्गा ढाल बनी खड़ी हैं उसकी रक्षा को!

अन्तरंग क्षणों में सुरेश ने भी कहा था–"तुम्हारे पैसे तुम्हारे नाम ही रहेंगे। उनसे न मेरा ताल्लुक रहेगा, न परिवार वालों का।"

ब्याह के तुरन्त बाद वह मुकेश के साथ बम्बई चली गयी थी। हफ्ते डेढ़ हफ्ते जितना भी बीजी, देवर और ननदों के सम्पर्क में आयी, सभी उसे आत्मीय और खुशमिजाज लगे थे। बीजी अपने पायलट बेटे पर बलिहारी होती न थकतीं। घर की प्रत्येक देशी-विदेशी सुख-सुविधा की वस्तुओं के चुनाव हेतु मुकेश की प्रशंसा करते न अघातीं। लोगों को जानने की कोई उत्सुकता हो या न हो, वे उन वस्तुओं के प्रति आगन्तुक की दृष्टि का प्रशंसा-भाव ताड़कर बेटे के पायलट होने और वह चीज कहाँ से कैसे खरीदी गयी, यहाँ के बाजारों में ऐसी जरूर बिक रही होगी, किन्तु वे असली के बजाय सिंगापुर और हांगकांग के अनुकरण मात्र हैं... आदि विवरण मिर्च-मसाले के साथ दर्प से आँखें चढ़ाकर बताने से न चूकतीं।

सुनकर वह भी अभिभूत हो उठती। यही महसूस हुआ, घर में सुरेश और अनिल भी हैं, मगर जैसा रुतबा पायलट बेटे मुकेश का है, न जीवन बीमा निगम में साधारण नौकरी करने वाले मँझले सुरेश का है, न इसी वर्ष कॉलेज खत्म कर छोटे-मोटे व्यवसाय की योजना बना रहे छोटे भाई अनिल का। अनिल से तो पूरा घर तब भी आतंकित दिखायी देता था।

उसके ब्याह के ठीक छह महीने बाद अनिल अचानक एक शाम मीरा को घर ले आया था–ढिठाई से इस घोषणा के साथ कि वह उसकी ब्याहता है। उन्होंने मित्रों के साक्ष्य में कोर्ट मैरिज कर ली है। बस, दबी जुबान से बीजी ने इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाना चाहा था, किन्तु मुकेश ने उन्हें पत्र द्वारा यही सलाह दी थी कि जो हो गया, उसे स्वीकार कर लेने में ही समझदारी है। उन्हें धैर्य से काम लेना चाहिए।

उसके मन में यही धारणा पुष्ट हुई थी कि बीजी वास्तव में बड़ी जुझारू और धैर्यवान हैं, वरना नगरपालिका के स्कूल की मामूली अध्यापकी में वे पाँच बच्चों को बढ़िया परवरिश नहीं दे सकती थीं। एक चीज उसने तब भी महसूस की थी कि अपने बच्चे गलत करें या सही, उनका उसूल था कि वे सदैव उन्हें सही मानकर चलती थीं और उन्हें कभी नहीं डाँटतीं। उसे कई दफा यह एहसास हुआ कि उसे बीजा प्यार ही इसलिए करती हैं कि वह अपने बच्चों को अत्यधिक चाहती हैं, लेकिन शनैः-शनैः निर्मित होती यह धारणा उस दुर्घटना के साथ निर्मूल सिद्ध हुई थी, जब नियति के क्रूर उपहास ने उसे मुकेश से सदैव के लिए जुदा कर, जीवन के उस चौराहे पर खड़ा कर दिया, जहाँ से जीने के सारे रास्ते अवरुद्ध होते नजर आये। मुकेश के संग बीते वर्ष, किसी लम्बे मादक सपने की तरंग-से गुजर गये। सपना ही तो था। हफ्तों तक विश्वास से भरी उसकी आँखें बिछली हुई-सी अपने ही कोरों से कहीं बिला गये। उस सपने को चिहुँक-चिहुँक कर तलाशती रही थीं... लोगों की आवाजें उसे झकझोरती रहीं कि उसका रोना बहुत जरूरी है, वरना घनी पीड़ा के दबाव से दिमाग की नसें फट जायेंगी। साहस उसकी छोटी बहन शिवा ने ही दिखाया था। शिवा ब्याह

का अलबम उसकी आँखों के समक्ष उलटती-पलटती रही कि यह देखो, मुकेश जीजा जी घोड़ी पर चढ़ रहे हैं... यह देखो, सेहरा पढ़ा जा रहा है... देखो तुम दोनों मसूरी की वादियों में... यह देखों, यहाँ कैसे तुम्हें बाँहों में समेटे जीजा जी... और वह दरकी चट्टान-सी अरराती ढही थी कि उसके मर्मभेदी रुदन से लोगों के दिल दहल उठे।

महीने-भर बाद हिम्मत कर बाबू जी ने बीजी से प्रार्थना की थी कि शिल्पा को वह कुछ समय के लिए घर ले जाना चाहते हैं, छोटे भाई-बहनों की संग-संगत में दुःख से कुछ उबर सकेगी। उनकी तो राय है कि वह समय काटने के लिए कहीं कोई नौकरी कर ले। व्यस्तता ही आघात के घावों का मरहम साबित हो सकती है। मगर बीजी ने उसके नौकरी करने के प्रस्ताव का विरोध किया था। उल्टा बाबू जी को अचरज में डालते हुए वे उसके और अपने मँझले बेटे सुरेश के ब्याह का प्रस्ताव रख बैठी थीं। उनका तर्क था–"नौकरी पति का विकल्प नहीं हो सकती, रोटी दे सकती है... रोटी की इसे क्या कमी? जाते-जाते भी मेरा बेटा इतना कुछ कर गया कि जीवन-भर भी यह हाथ-पाँव न हिलाये, तब भी बैठकर खा सकती है। सवाल जीवन जीने का है... धीरे-धीरे भाई-बहन अपने ठौर-ठिकाने लग जायेंगे, तब इसे अधिक अकेलापन महसूस होगा... सोच लें, भाई साहब..."

एक राजी नहीं हो रही थी तो शिल्पा स्वयं। उसके परिवार को तो अपनी सहनशीलता, दूरदर्शिता और उदारता के बड़प्पन से बीजी ने इतना मोहाविष्ट कर लिया था कि सुरेश से ब्याह के लिए हामी भर देने को उसके ऊपर चारों ओर से दबाव पड़ने लगा। बीजी की महानता की दुन्दुभी बजने लगी। निरुपाय उसे घुटने टेकने ही पड़े। नम आँखों से उसने स्वीकृति में चेहरे को हल्के-से झुका लिया था। एक दिन कोर्ट मैरिज हो गयी थी–सूखे सपने-सी! पलक खुलने पर अविश्वास की परतों में लिपटी। स्मृति में हल्के-से दर्ज-भर, जिसे न दुबारा आँखें मूँदकर दोहराया जा सकता है न मिटाया। दुःख और अवसाद में डूबे उसके मन को इतनी मोहलत ही नहीं मिली कि वह अपने साथ हुए नियति के क्रूर मजाक से उबरकर वर्तमान और भविष्य की सोच पाती! सोच पाती कि उसके भी मन-मस्तिष्क है! इच्छा-अनिच्छा है! अपने प्रति अपना दायित्व है! निर्भरता सिवाय दासत्व के और कुछ नहीं देती! किन्तु तब वह आकस्मिक आघात से स्तब्ध, लोगों के इशारों की कठपुतली मात्र रह गयी थी। चाय मिल जाती तो चाय पी लेती। इच्छा न होती तब भी जबरन निवाले मुँह में ठूँस लेती। न किसी को सुनना चाहती थी, न देखना, फिर भी वाक्यों के झुण्ड अपने मुखौटों के साथ जबरन उसके हितैषी बने इर्द-गिर्द बिछे रहते।

अपने को लेकर चेती तो स्वयं को एक ऐसे कटघरे में बन्दी पाया जो बड़ी चतुराई से उसे एक नये खूबसूरत घर और नई जिन्दगी की उम्मीद के रूप में दिया गया था। मगर उस कैद में जीवन जीने के नाम पर भी प्रतिपल चौकन्नी निगरानी और संकेतों पर हिलने-डुलने की स्वतन्त्रता। वह फोन पर उँगलियाँ रखती तो बीजी टुप्प से टोक बैठतीं, "किसे कर रही है शिल्पा?' 'किसका फोन था?' 'मिसेज दूबे आजकल बड़े चक्कर लगा रहीं तेरे?' 'उनके घर से पत्रिकाएँ लाने की क्या जरूरत है, लाइब्रेरी से ले आया कर।' 'ऊपरवाली मीना के साथ तेरा उठना-बैठना ठीक नहीं।' उन्हें क्या, पूरे घर को यही लगता कि कहीं ऐसा न हो कि कोई उसे अपने ऊपर हो रहे शोषण के प्रति सचेत कर दे। सुबह से गयी रात तक वह पति, देवर, ननदों की सेवा-टहल में खटती रहती है। कितनी चतुराई से मुकेश के मरणोपरान्त प्राप्त रकम को घर की अन्य जरूरतों के नाम पर उससे निकलवाया जा रहा है।

अब उस पर यह भी दबाव डाला जा रहा है कि बम्बई के उपनगर की सोसाइटी में मुकेश ने उसके नाम से जो घर आरक्षित करवाया था, वह बेच दे। बम्बई में ही ब्याही उसकी मँझली ननद इस कार्य हेतु अपनी मुफ्त की सेवाएँ देने को तत्पर है।

शिल्पा की जिद्द है, उसके पास है ही क्या? यह घर बीजी के नाम है। अनिल ने उसके पैसे ऐंठ-ऐंठकर अपने लिए डी.डी.ए. का फ्लैट खरीद लिया है। दुकान भी लेना चाह रहा है। उसी की खातिर वह उससे और पैसे चाहता है। प्रतिवाद किससे करे? सुरेश उससे एकान्त में जो कुछ कबूलता है, बीजी और अनिल के सामने पड़ते ही मुँह सी लेता है। अगर हिम्मत बाँध कर कुछ कहने की कोशिश भी करता है तो बीजी और अनिल आगे बढ़कर फौरन दबा लेते हैं। यहाँ तक कि बीजी सुरेश के सामने उसकी छवि गिराने के लिए जब-तब ऊटपटाँग आरोप रचती रहती हैं। उसका हृदय खौलता रहता है। क्यों नहीं सुरेश माँ को डपट देता? पति है उसका। ब्याह किया है उसके साथ। उसका दायित्व नहीं उठाना था तो ब्याह के लिए राजी ही क्यों हुआ?

बस, एक ही रट सुरेश दोहराने लगता– "बीजी ने बड़ी तकलीफें उठायी हैं। हमें पालने के लिए जीवन-भर स्वयं मोटा खाया-पहना, किन्तु हमें..."

"इसका मतलब है वे दुर्व्यवहार करती रहें मेरे साथ और तुम..."

"यह दुर्व्यवहार नहीं, पारिवारिक अनुशासन है। घर के प्रत्येक सदस्य का हित-अहित उन्हें सोचना होता है... फिर तुम्हारे साथ उन्होंने जो किया है, कोई सास कर सकती है?"

"नहीं कर सकती–मानती हूँ, लेकिन तुम्हें दिखाई नहीं देता कि अब उनका व्यवहार मेरे प्रति वह नहीं रहा जो पहले था, इसलिए कि तुम उनकी हर गलत बात के सामने सिर नवाये मेरा अपमान बर्दाश्त करते रहते हो! अलग घर ले लो... मुझसे अब बर्दाश्त नहीं होता... अब नहीं होती सबकी चाकरी मुझसे।"

उसे सुरेश बेहद कमजोर, लिजलिजा व्यक्ति लगा था। उसके इस तर्क का उसके पास कोई जवाब नहीं था–"अनिल भी तो तुम्हारा भाई है! उसकी मीना को कुछ कहकर देखें बीजी?"

"मीना को वे ब्याह कर लायी हैं? अधिकार जिस पर होता है, उसी से व्यक्ति अपेक्षा करता है।"

वह निरुत्तर हो जाती।

दूसरी सुबह अनिल ने पैसों के लिए उसे फिर घेरा।

वह किशु को स्कूल के लिए तैयार कर रही थी। अनिल हाथ में चेकबुक लिए उगाहने आये पठान की भाँति ठीक उसकी पीठ-पीछे आ खड़ा हुआ। उसके सारे गहने और सम्पत्ति के कागजात मुकेश के मरणोपरान्त बीजी ने सार-सँभाल के बहाने बड़े प्यार से अपने पास हथिया लिये थे। उसे भी तब उनसे बड़ा शुभचिन्तक अपना कोई अन्य नहीं प्रतीत हुआ था... "एक जवान बेटे से हाथ धोकर कौन-सी माँ अपनी बहू के सुखमय भविष्य की खातिर अपना दूसरा बेटा उसके हवाले कर देगी?" बाबू जी ने उसके विश्वास को और पुख्ता किया था।

"मम्मी, चाचा आपसे बात करने आये हैं..." किशु ने अपनी तुतलाती आवाज में उसे सूचित किया। मगर वह पीछे नहीं मुड़ी। चेहरे पर अनसुना भाव ओढ़े यन्त्रवत् अपने काम में लगी रही। चेकबुक हाथ में लिये अनिल उसके कुछ बोलने की प्रतीक्षा करता रहा। अधिक देर तक वह उसकी उपेक्षा बर्दाश्त नहीं कर पाया।

"आज मुझे दुकान की नीलामी का पैसा भरना है, आखिरी तारीख है!" कल की आदेशात्मक गुर्राहट स्वर से गायब दिखी।

उसने कोई उत्तर नहीं दिया, किंशु का टाइमटेबल लगाने में व्यस्त हो गयी।

"मुझे देर हो रही है! पैसों के लिए बैंक जाना होगा... वहाँ से साढ़े ग्यारह तक डीडीए के दफ्तर पहुँचना है।"

उसने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया।

"तुम बहरी हो?"

"अन्धी भी हूँ... और कुत्तों के मुँह मैं नहीं लगती! अब इन पैसों में से कानी कौड़ी भी तुम्हें नहीं मिलेगी।"

"अपने बाप के घर से लायी थी! देगी कैसे नहीं कुतिया..." क्रोध से काँपते हुए अनिल ने उसे कन्धे से पकड़ कर अपनी ओर खींचा और पूरी शक्ति से दीवार पर पटक दिया। फिर उठाया और फुटबाल की तरह घुटनों पर जोर-जोर से प्रहार करने लगा।

शिल्पा की दर्दनाक चीख कमरे की सीमा फलाँगती पूरे घर और घर के आस-पास के फ्लैटों के भी दरवाजे खटखटा आयी। नादान किंशु इस अप्रत्याशित प्रकरण से सहम, हाथ-पाँव पटक-पटक कर चीखें भरता हुआ रोने लगा। अब तक के नाटक से निरपेक्ष बैठक में बैठी बीजी आँखों के आगे फैलाये अखबार को एक ओर फेंक कर शिल्पा के कमरे की ओर दौड़ीं। भीतर का दृश्य पल-भर को उनके जैसी पत्थर दिल वाली वृद्धा को भी सहमा गया। किन्तु शिल्पा के फूटे माथे से बहती रक्तधारा ने उन्हें जैसे एलार्म सुनाया। वनैले भैंसे-से हाँफते अनिल को उन्होंने पूरी ताकत से बाँह पकड़ कर पीछे घसीटा, फिर दोनों हाथों से उसे धकियाती हुई कमरों के बीचोंबीच स्थित सहन में ले आईं, "बस कर बेहया... बाप तो नौकरी करवाने ले जा रहा था, नौकरी करती तो साल-डेढ़ साल के भीतर ही किसी संगी-साथी से दीदे लड़ा मेरे बेटे की सारी कमाई डकार ले जाती डायन! तुम सबों का ऊँचा-नीचा सोच होशियारी बरती मैंने, घर का पैसा घर की ही चुनाई में लगे, आबरू ऊपर बनी रहे... मगर तू, न सब्र से काम लेना जानता है, न लल्लो-चप्पो से निकलवाना... अभी तक तो चूँ नहीं करती थी, जब से दौ सौ बीस वाली मिसेज दूबे से दोस्ती गाँठी है, बात-बात पर आँखें दिखाने लगी है... ज्यादा छेड़ेगा तो किसी दिन फुर्रर..."

"हुँह, फुर्रर होकर तो देखे। मिट्टी के तेल का पीपा उड़ेल तीली न दिखा दी, साली को तो... दो-चार प्रेमपत्र लिखवा के रखवा दूँगा सिरहाने कि..."

"चौप्प!" कठोर स्वर में बीजी की घुड़कन क्षण-भर पूर्व उनकी घुट्टी पिलाते सतर्क स्वर के साथ शिल्पा की अचेत हो रही चेतना पर प्रेत ठहाकों-सी गूँजने लगी... तो नाटक की सूत्रधार बीजी हैं!

माथे पर चार टाँके आये। दोनों घुटने अपनी जोड़ से हिल-से गये हैं... सोने की कोशिश कर रही है, पर सिर के भीतर जैसे टीसों के गुब्बारे फूट रहे हैं... क्यों पड़ी है यहाँ?

जीवित ही क्यों है?

जीवन जीने के लिए ही होता है। होता रहेगा। जीने के नाम पर जो जीवन उसे सौंपा गया है, पिछले पाँच वर्षों से उसे मँझा-मँझाकर वह रोयाँ-रोयाँ निचुड़ चुकी है... सामाजिक और पारिवारिक सुरक्षा प्रदान करने की आड़ में कितनी पटुता से उसकी भावनाओं और विवेक

को छला गया। वह सोच भी कैसे सकती थी कि अपने दूसरे बेटे से उसके ब्याह का प्रस्ताव उसे एक सुनिश्चित भविष्य देने की दूरदर्शिता नहीं, बल्कि मुकेश के मरणोपरान्त प्राप्त रकम और सम्पत्ति को हथियाने का षड्यन्त्र था! क्यों वह अपनी विवेक-बुद्धि गिरवी रख उनके षड्यन्त्र का हिस्सा बनी? क्यों निरन्तर उनकी ज्यादतियों के समक्ष नैतिकता और मर्यादा की आड़ ओढ़े-बिछाये कठपुतली-सी संकेतों पर ठुमकती रही? वह पढ़ी-लिखी युवती थी, नौकरी कर सकती थी... आत्मनिर्भर बन सकती थी... तब तो किंशु भी नहीं हुआ था। इन लोभी सियारों की माँद में उसके टुकड़ों पर आश्रित होकर अपना आत्मसम्मान बचा सकती है वह? बचा सकती है... अब भी बचा सकती है। बस, नरक को स्वीकार करने का साहस जुटाना होगा उसे! मोह-मुक्त हो बाहर निकलना होगा... सुरेश! सुरेश में अगर हिम्मत होगी तो एक दिन वह भी उसके साथ आ खड़ा होगा। वह दब्बू व्यक्तित्व का, हीनत्वबोध से आक्रान्त व्यक्ति है। नहीं आना चाहे तो उसे शिकायत नहीं होगी।

कोई हौले से आकर सिरहाने बैठ गया है...

"शिल्पा बेटी! बहू..."

यह तो बीजी हैं! वह सप्रयास आँखें खोलती है–उनके पीछे एक परछाई है। शायद सुरेश खड़ा है।

"तुम्हारे बाबू जी पुलिस के साथ आये हैं, किसी पड़ोसी ने उन्हें फोन पर इत्तिला की है कि हमारे घर से तुम्हारे जोर-जोर से रोने-चीखने की आवाजें आ रही थीं... अगर वे पुलिस के साथ तुरन्त न पहुँचें तो शायद अपनी बेटी का मुँह न देख सकेंगे...

"देख बेटी! तू घर की बड़ी बहू है। घर की लक्ष्मी... अनिल नादान बच्चा है... उसे माफ कर दे... अड़ोस-पड़ोस का क्या है, वे तो हमारे घर की सुख-शान्ति के दुश्मन हैं! तमाशा देखने में उन्हें आनन्द आता है। पुलिस पूछेगी तो बहाना बना देना... चक्कर आ गया था..."

बीजी के स्वर में घबराहट स्पष्ट लक्षित हो रही है।

बात पूरी नहीं कर पायी है कि कमरे में एक सबइंस्पेक्टर के संग बाबू जी ने प्रवेश किया। आहट पाकर उसकी आँखें आस से भरी उनकी ओर घूमीं। पता नहीं उसके कण्ठ में कहाँ से इतना जोर पैदा हो गया कि वह पूरी ताकत से चीख पड़ी, "प... पड़ोसियों ने गलत इत्तिला नहीं दी, बाबू जी! मुझे जीवित देखना चाहते हैं तो यहाँ से फौरन निकाल ले चलिये... अभी भी वक्त है... अभी भी..."

बी-105, वर्धमान अपार्टमेंट्स,
मयूर विहार फेज-1, दिल्ली-110091

रचनाकारों से अनुरोध

- कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।
- रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति जांच लें।
- ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।
- रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कपया ddgnk.iccr@nic.in, pohindi.iccr@nic.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।

चार लघु कथाएँ

रामयतन यादव

लेखक पेशे से पत्रकार हैं। पत्रकारीय कर्म पटना में कर रहे हैं। वर्षों से इनकी लघुकथाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

उपाय

कहीं से घूमते हुए गाँव में पधारे महात्मा को अपने घर पर बुलाकर सुस्वादु भोजन कराते हुए एक युवक ने अनुनय किया, "बाबाजी कुछ ऐसा उपाय बताओ कि मैं इस बार इम्तहान में पास कर जाऊँ और जल्दी ही कोई अच्छी नौकरी लग जाए...।"

महात्मा ने आँखें मूँदकर कुछ पल सोचा फिर कहा, "खूब मेहनत से पढ़ो... समय को पहचानो।"

"लो बोलो यह भी कोई बात हुई... बाबाजी यह तो साधारण सी बात है। इतनी जानकारी तो मुझे भी है। आप कोई चमत्कारी बात बताओ...।"

"बेटा वर्षों भटका हूँ तब जाकर इतनी जानकारी प्राप्त किया हूँ। अगर तुम्हें पहले से इतनी जानकारी होती तो आज तुम खाना खा रहे होते और मैं खिला रहा होता।"

ईश्वर सब देखता है

मन्दिर के चबूतरे पर पालथी मारकर पुजारी ने अपना प्रवचन आरम्भ करने से पूर्व भगवान की मूर्ति को देखा और शंख फूँककर वातावरण में भक्ति का भाव भरा।

तत्पश्चात् भक्तगण की ओर मुखातिब होकर कहा, "प्रिय भक्तो! कल मैंने आप सभी को ईश्वर की महिमा के बारे में बताया था, उसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए मैं कहना चाहूँगा कि हम सब अपने जीवन में जो भी कार्य करें, सोच-समझकर करें, क्योंकि हम जो भी अच्छा या बुरा करते हैं, उसे कोई देखे या न देखे, ईश्वर जरूर देखता है... इसलिए हमें ईश्वर से डरना चाहिए...।"

इस तरह लगभग एक घंटे का अपना प्रवचन समाप्त कर पुजारी जी ने भगवान के चरणों में पड़े ढेर सारे सिक्कों और लड्डुओं को एक गठरी में बाँधकर अपने पुत्र के सिर पर रख दिया और घर की दिशा में चल पड़े।

रास्ते में एक बाग था, जिसमें अमरूद के कई पेड़ थे। पेड़ फलों से लदे थे। पके हुए ताजे अमरूदों को देखकर पुजारी के मुँह में पानी भर आया। झट से उसने अपने पुत्र के सिर पर की गठरी को अपने हाथों में ले लिया और इधर-उधर देखकर धीरे से कहा, "बेटा! जरा जल्दी से छड़पकर दो-चार अमरूद तोड़ ले, खाने को जी कर रहा...।"

"म... मगर बापू! किसी ने देख लिया तो" पुत्र ने आशंका व्यक्त की, "चोर नहीं कहेगा क्या...?"

तब पुजारी ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा। कहा, "तू भी क्या बात करता है... कोई देखेगा तब न... यहाँ तो कोई है नहीं।"

"ले... लेकिन बापू तुम्हीं तो प्रवचन में हमेशा कहते हो कि कोई देखे या न देखे, ईश्वर जरूर देखता है...।"

पुत्र के भोलेपन पर पुजारी को हँसी आयी, फिर बोला, "धत् पगले! यह बात मैं अपने लिए थोड़े ही कहता हूँ, यह तो भक्तों को डराने के लिए कहना पड़ता है...।"

एक जहरीला प्रश्न

रोज की तरह आज भी सेठ नागरमल अपने कुत्तों को सुबह का नाश्ता करा रहे थे। कुत्ते उछल-उछल कर सेठ जी के हाथों से बिस्कुट खा रहे थे।

सुबह की गुनगुनी धूप में नरम-नरम घास पर कुत्तों का उछलना और लुचक-लुचक कर उनके हाथ से बिस्कुट लेना उन्हें बहुत अच्छा लग रहा था।

उसी समय उनकी नौकरानी का आठ वर्षीय बेटा भी वहाँ आकर खड़ा हो गया और ललचायी दृष्टि से बिस्कुट खाते कुत्तों को देखने लगा।

सेठ ने उसे वहाँ से टरकाने के ख्याल से कुछ टुकड़े उसकी तरफ उछाल दिये।

वह बिस्कुट के टुकड़ों पर कुत्तों की तरह झपटा और उन्हें मुँह में डालकर पलक झपकते ही निगल गया।

वहाँ से कुछ दूर खड़ी उसकी माँ सेठ की उदारता और अपने बेटे के सौभाग्य पर फूली नहीं समा रही थी। कुछ देर

बाद सेठ से आँखें बचाकर उसने अपने बेटे को पास बुलाया और स्नेह जताते हुए बोली, "बेटा सेठ जी ने आज तुम्हें बिस्कुट खिलाया।"

"हाँ माँ...!" फिर कुछ सोचते हुए वह बोला, "माँ सेठ जी अपने कुत्तों को बहुत दुलारते हैं न माँ?"

"हाँ बेटे बहुत दुलारते हैं... जान से भी ज्यादा।"

"तो... तो मुझे भी उनका कुत्ता बना दो ना माँ।"

बाजार

भारतीय प्रशासनिक सेवा में सफलता हासिल करने की खबर फैलते ही रमेश के घर पर बधाई देने वालों का ताँता लगा था। रमेश के पिता दरवाजे पर खड़े होकर परिचितों-अपरिचितों से बधाई स्वीकार करने में व्यस्त थे। उसी वक्त एक नौजवान किंचित मुस्कान बिखेरते हुए सामने आ खड़ा हुआ और अति विनम्र भाव से बोला, "जी, मैं एक प्रतिष्ठित प्रतियोगी पत्रिका 'सफलता की गारंटी' का संपादक हूँ। रमेश जी से इन्टरव्यू करना चाहता हूँ।

तभी रमेश दरवाजे पर आकर बोला, "क्यों नहीं... यहाँ आइए बरामदे में बैठकर बात की जाये।"

"धन्यवाद..." कुर्सी पर बैठते हुए संपादक ने कहा, "मगर एक शर्त है।"

"वो क्या?" रमेश ने तनिक आश्चर्य से पूछा।

"जी शर्त यह है कि आप इन्टरव्यू में इस बात को स्वीकार करेंगे कि आपने मेरी पत्रिका पढ़कर ही इतनी बड़ी कामयाबी पायी है।"

रमेश ने इस बार घोर आश्चर्य और घबराहट से उसकी तरफ देखा।

"घबराएँ नहीं रमेश बाबू, इसके लिए मेरी पत्रिका की ओर से आपको एक बड़ी रकम...।"

रमेश मुस्कुराया। कतिपय घिसे-पिटे प्रश्नों के साथ इन्टरव्यू चल ही रहा था कि लग्जरी कार से एक अधेड़ उतरा और रमेश के निकट बैठते हुए बोला, "बधाई हो रमेश जी, आपने आई.ए.एस. में कामयाबी हासिल करके इस सूबे का नाम रोशन किया है।"

"वो... वो तो ठीक है लेकिन आपका परिचय...?"

"जी, जी मैं इस शहर के मशहूर कोचिंग संस्थान 'हाई-फाई-सक्सेस' का डायरेक्टर हूँ। यदि आप अपने इन्टरव्यू में, 'हाई-फाई-सक्सेस' कोचिंग को अपनी सफलता का श्रेय देंगे तो..."

"तो आप हमें एक बड़ी रकम देंगे।"

"जी-जी हाँ, आपने सही समझा...।"

रमेश के चेहरे का तनाव बढ़ गया। उसे ऐसा लगा कि शिक्षा के बाजार में वह एक बिकाऊ सामान में तब्दील होता जा रहा है।"

मकसूदपुर, पोस्ट-फतुहा
(पटना)-803201 (बिहार)

दो नवगीत

मदन देवड़ा

लेखक पेशे से अध्यापक रहे हैं। विगत चालीस वर्षों से देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इनकी रचनाएं प्रकाशित। कानपुर की संस्था 'बटोही' द्वारा पुरस्कृत।

(1)

मुट्ठी भर रिश्ते हैं
चुल्लू भर प्यार
जब कुछ था पास
सभी कदमों पर झूमते
व्यर्थ वाहवाही से
पग-पग पर लूटते।
स्वागत में जगह-जगह
थे वंदनवार।
यों तो अब भी है
कुछ कहने के नाम पर,
मात्र औपचारिकता
होठों पर टांग कर।
ढूँढ रहे अवसर पर
करने को वार।
मुट्ठी भर रिश्ते हैं
चुल्लू भर प्यार।

(2)

पोखर में डूब रही
लाजभरी शाम।
झुक आया धरती तक
नीला आकाश
देख-देख हो बैठी
पत्तियाँ उदास।
सूरज ने घोड़ों की
खोल दी लगाम।
दिशियों के पलने में
गंध रही झूल
धरती के छप्पर पर
खिले श्वेत फूल।
सुधियों में बैठ गया
भूला सा नाम।
पोखर में डूब रही
लाजभरी शाम।

मालीखेड़ा मार्ग, ऑफिसर कॉलोनी के निकट,
तराना, उज्जैन-456665 (मध्य प्रदेश)

दो डोगरी कविताएँ

मूलः पद्मा सचदेव
हिन्दी अनुवाद : कृष्ण शर्मा

लेखक मूलतः कहानीकार हैं। देश की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशन। 2005 में कहानी लेखन के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार। जम्मू-कश्मीर साहित्य अकादमी सम्मान। बाल साहित्यकार सम्मान 2013 में, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से 2014 का सौहार्द सम्मान।

(1) उपाय

रंग-बिरंगे फूल गिरे
मेरे आँगन में
गोद हो गई खाली
बहार की
वृक्षों के नंगे शिखरों पर
धूप लू के कुल्हाड़ों से
वार करती रही
घिर आई फिर काली बदली
चूमने लगी वृक्षों के
सूखे पत्ते, टहनियों के मुख
हवा ने खोल दिये बंद द्वार
धूप ने देखा तो जल-भुन गई
सूख चुके मुखड़ों पर
फूटने लगे अंकुर
खिलेंगे फूल भी शीघ्र ही
सुगन्ध होकर सवार
हवाई थपेड़ों पर
गिराएगी फूल फिर
मेरे आँगन में
प्रकृति के हाथ
इस जगत में और कोई
उपाय है भी नहीं!

(2) बेचैन रूह

कल रात सोने से पूर्व
नोटबुक के कोरे कागज
फाड़-फाड़ कर रखे थे सिरहाने,
जितने सपने उस रात देखे
उन सबके टूटने से पहले
एक-एक सुर्ख़ गुलाब
मैंने रखा दबा कर
एक-एक कागज के भीतर
सुबह जगी तो कागज सारे
अपने-आप लिखे हुए मिले
एक भी कागज कोरा न था
सोने की एक बूँद सँभाले रखो, तो
वह पतला वरक बन जाती है....
कौन पिछली रात
चारपाई तक आकर
सारे कागज रंग गया
किसका मन जाते-जाते
कविता के भीतर छूट गया
किसकी बेचैन रूह
भटक रही
लाल-सुर्ख गुलाबों के भीतर!

152/119, पक्की ढक्की, जम्मू-180001
(जम्मू-कश्मीर)

गीत

ओम प्रकाश अडिग

जाने-माने गीतकार। क्वारे गीत (1978), पीढ़ी बोल उठी (1982), युद्ध के बाद (2001), संकुल, कल्पतरु (2013), अश्वत्थ (2016) आदि प्रकाशित।

(1)

सब संकोच घोल दो जल में,
हँसी-खुशी इसकी कल-कल में।
आयेगी जब याद तुम्हारी,
मैं इसका आचमन करूँगा।

फूलों के पाटल पर जैसे,
गीत लिखे मलियानिल कोई।
स्वच्छ बालुका के बिस्तर पर,
गहरी नींद चाँदनी सोयी।

व्यर्थ निमंत्रण शब्दवेध के,
चलना साथ-साथ है नद के।
तुम चलने का वचन भरो तो,
नगर छोड़ वन गमन करूँगा।

रात मिलन के गीत न गाये,
ऐसा कभी नहीं हो सकता।
बिना पढ़े ही लगता जैसे,
मन है जीवन दर्शन पढ़ता।

सब सम्बन्ध यहीं है होना,
हँसना, रोना, जगना, सोना।
तुम निर्माण करो तो माटी की–
प्रतिमा को नमन करूँगा।

दूर्वादल सी हरी हो रही,
जब हो इस धरती की भाषा।
तभी ऋतुओं के मन में भी,
आने की होती अभिलाषा।

भूमा भर जाये अक्षर से,
ऐसे मन्त्र बोलना स्वर से।
तुम ऐसे संकल्प जगाओ,
श्वास-श्वास में हवन करूँगा।

(2)

मन के पास हज़ारों सपने,
तन के पास अकेले तुम हो।

कितने-कितने प्रिय रंगों से,
रंगती हैं अपनी आशायें।
मधु ही नहीं बाँटती अमृत,
मिलकर उनसे मधुशालायें।

है आकाश समय में सब कुछ,
घन के पास अकेले तुम हो।

बिना शब्द वाली भाषा से,
चलने लगती बातचीत है।
वर्तमान वाली सड़कों पर,
दौड़-दौड़ आता अतीत है।

साथ फ़कीरों के दुनिया है,
धन के पास अकेले तुम हो।

इस बस्ती से उस बस्ती तक,
आना-जाना लगा रहेगा।
जब तक नहीं शून्य से मिलना,
जग समझाना लगा रहेगा।

यह अस्सीम जीवनी सपना,
क्षण के पास अकेले तुम हो।

(3)

तिनके-तिनके बिखर गये हम,
शायद यह तो होना ही था।

तट के पास नगर का बसना,
रेत लगे भवनों का धँसना।
कूल और अनुकूल सभी पर,
प्रतिकूलों का खुल कर हँसना।

सभी रास्ते बंद मिले हैं,
सीधे-सीधे जिधर गये हम।

धोखे दर धोखों को खाना,
पाकर लगा नहीं कुछ पाना।
बहरों की बस्ती में जाकर,
सबको अपना दर्द सुनाना।

खुद भी हमको पता नहीं है,
इस दुनिया में किधर गये हम।

तालमेल कैसे हो पाये,
सूखा, कभी बाढ़ भी आये।
सम्बन्धों में नहीं खुलापन,
सुख के घर में दुःख आ जाये।

शिखरों पर बैठे-बैठे ही--
चुप घाटी में उतर गये हम।।

गीतायन, 459, रोशन गंज,
शाहजहाँपुर-242001 (उत्तर प्रदेश)

तीन कविताएँ

डॉ. पूजा खिल्लन

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर लेख, कविता, कहानी, ग़ज़ल, समीक्षा आदि का प्रकाशन। प्रथम काव्य-संग्रह 'हाशिए की आग' पर यशोधरा सम्मान। एक पुस्तक 'समांतर सिनेमा और नसीरूद्दीन शाह' प्रकाशित। दिल्ली विश्वविद्यालय में तदर्थ प्राध्यापिका के तौर पर कार्यानुभव।

(1) नज़र के सामने

तुमसे मिलकर फैलने लगा है मेरी
झुकी नज़र का दायरा,
इस कदर कि डगमगाने लगते हैं,
संभालकर रखती हूँ जब भी कदम
खुल-खुल जाता है बंधन
उड़ जाता है मन पंख फैलाए
छूने दूर किसी क्षितिज को
सच ही कहते हैं लोग
कि जो प्यार करते हैं
उठाते हैं जोखिम
मेरी नज़रें भी रोज़ रोज़ उठाती हैं,
खोजने का जोखिम तुम्हें
और नयी-नवेली सी लगती है दुनिया
हर बार नज़र के सामने।

(2) प्रेम

एहसास चुप रहते हैं मगर
झकझोरते हैं,
हम सिहरते हैं, ठिठकते हैं,
और देर तलक
उनके साथ ही बने रहना चाहते हैं
जैसे कुछ लोग जब लिपटकर अलग
होते हैं
लिपटे रहते हैं देर तक उनसे हम
यह सिहरना, ठिठकना, लिपटना
प्रेम ही है, प्रेम ही जगाता है
प्रेम दूरियों को भी
नजदीकियों में बदल जाता है।

(3) बंधन नहीं खोलूँगी

रोज़ रोज़ ठगी जाती, पर
मानती हार कब यह ज़िन्दगी
मैं एक कली हूँ, खिलूँगी अभी
खिलूँगी मगर अपनी शर्तों पर,
लाख मना करने पर माली के
तब पिरो लूँगी एक लड़ी एहसास की
और फिर बंधन नहीं खोलूँगी

36, जोशन निवास, द्वितीय तल, नजदीक
एम.सी.डी. स्कूल, गुड़मंडी, दिल्ली-110007

पुस्तक-समीक्षा

प्रेमचंद की हिन्दी-उर्दू कहानियाँ

कृष्णवीर सिंह सिकरवार

जाने-माने लेखक। इनकी रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। इससे पूर्व भी इनकी रचनाएं एवं समीक्षाएं 'गगनांचल' में छपी हैं।

"जब नमक का महकमा कायम हुआ और खुदादाद (ईश्वर प्रदत्त) निआमत (वरदान) से फायदा उठाने की आम मुमानियत (मनाही) कर दी गई तो लोग दरवाजा-ए-सदर (मुख्य द्वार) बंद पाकर रोजन व शिगाफ (रंध्र, दरार) की फिक्रें करने लगे। चारों तरफ खयानत (धरोहर का अपहरण) और गबन और तहरीर (लालच) का बाजार गरम था। पटवारगिरी का मुअज्जिज (प्रतिष्ठित) और मुनाफअत (लाभ) औहदा छोड़-छोड़कर सीग-ए-नमक (नमक विभाग) की बर्कदाजी (चपरासगिरी) करते थे और महकमें का दारोगा तो वकीलों के लिए भी रश्क (स्पर्धा) का बाइस था।" यह उर्दू अंश 'हमदर्द', उर्दू मासिक पत्रिका के अक्टूबर, 1913 में प्रकाशित उर्दू कहानी 'नमक का दरोगा' से संकलित है। अब जरा इस अंश के हिन्दी पाठ को देखिए–"जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वरप्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया, तो लोग चोरी-छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल प्रपंच का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ बारह थे। पटवारीगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़-छोड़कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसमें दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था।" यह हिन्दी कहा 'सप्तसरोज' प्रेमचंद के प्रथम हिंदी कहानी संग्रह जून, 1917 में प्रकाशित हुई थी।

इसी प्रकार की चौबीस हिन्दी-उर्दू कहानियों के समान्तर पाठों को अभी हाल ही में प्रभात प्रकाशन, नई दल्ली से प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में देश-विदेश में अपनी पहचान बनाने वाले विद्वान आलोचक डॉ. कमल किशोर गोयनका के कुशल संपादन में 'प्रेमचंद की उर्दू कहानियाँ' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। यह पुस्तक हिन्दी में ऐसा पहला प्रयास है जिसमें प्रेमचंद की उर्दू से हिन्दी तथा हिन्दी से उर्दू में आई कहानियों को देवनागरी लिपि में एक साथ प्रस्तुत किया गया है।

प्रेमचंद आज हिन्दी साहित्य जगत् में पढ़ने वाले सर्वाधिक लोकप्रिय रचनाकार हैं, उनकी प्रसिद्धि का आलम यह है कि उनके साहित्य को लेकर पाठकों में हमेशा से ही उत्सुकता रही है। आज उनका साहित्य पाठकों के लिये जीवन स्रोत बन चुका है। उनकी मृत्यु के लगभग 78 वर्षों के दौरान उनके साहित्य को लेकर काफी कुछ विभिन्न

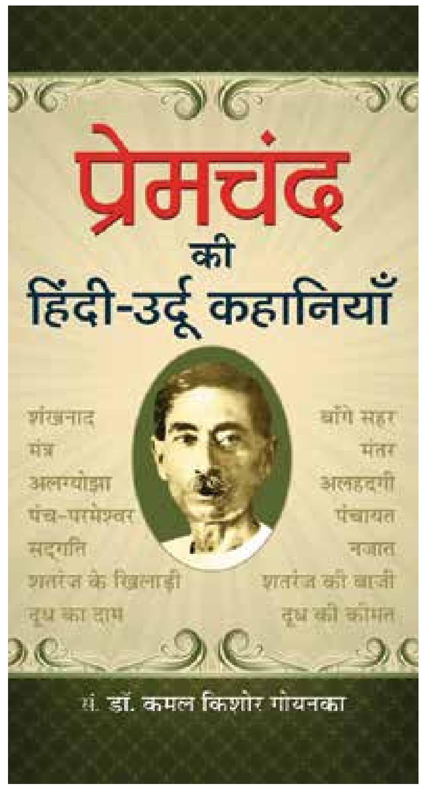

पुस्तक: प्रेमचंद की हिन्दी-उर्दू कहानियाँ

संपादक : डॉ. कमल किशोर गोयनका

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

मूल्य : 800 रुपये (हार्डबाउंड संस्करण)

प्रथम संस्करण : 2017

पृष्ठ 574

विद्वान लेखकों द्वारा लिखा जा चुका है व यह सिलसिला आज भी निरंतर जारी है। उनके साहित्य पर अनेक प्रकार के शोध किये जा चुके हैं। इसी कारण प्रेमचंद के साहित्य में रुचि रखने वाले विभिन्न विशेषज्ञ एवं आलोचक उनके साहित्य को लेकर सजग व संवेदनशील हैं।

इन्हीं लेखकों व आलोचकों में प्रेमचंद साहित्य के खोजी प्रवृत्ति के धनी मनीषी डॉ. कमल किशोर गोयनका का नाम सर्वोपरि है। डॉ. गोयनका ने अपने जीवन के लगभग 40 वर्ष प्रेमचंद साहित्य की खोजबीन में अर्पित कर दिये तथा यह खोज का सिलसिला अभी भी निरंतर जारी है। इसी शृंखला के तहत डॉ. गोयनका अपनी ताजा पुस्तक 'प्रेमचंद की हिन्दी-उर्दू कहानियाँ' लेकर उपस्थित हुए हैं।

प्रस्तुत पुस्तक को दो खण्डों में विभक्त कर प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के प्रथम खण्ड में बारह उर्दू कहानियों को संकलित किया गया है। इस खण्ड में प्रेमचंद की ऐसी बारह कहानियाँ दी गई हैं जो उर्दू से हिन्दी में आई हैं, अर्थात् जो पहले उर्दू में प्रकाशित हुई और बाद में हिन्दी में। इन कहानियों के उर्दू-हिन्दी पाठों को साथ-साथ प्रकाशित किया गया है, अर्थात् बाएँ पृष्ठ पर उर्दू पाठ एवं दाएँ पृष्ठ पर हिन्दी पाठ को प्रारंभ किया गया है, जिससे पाठकों तथा अध्येताओं को एक साथ कहानी के दोनों पाठों को तुलनात्मक अध्ययन करने में सुविधा हो सके। यही स्थिति पुस्तक के द्वितीय खण्ड में हिन्दी से उर्दू में प्रकाशित बारह कहानियों के साथ रही है। समग्रतः यही पद्धति इस पुस्तक में आद्योपांत रही है।

पुस्तक में प्रकाशित चौबीस हिन्दी-उर्दू कहानियों के शीर्षक इस प्रकार हैं–(अ) उर्दू से हिन्दी में–रानी सारंधा, बड़े घर की बेटी, नमक का दरोगा, शिकारी राजकुमार, दो भाई, पंच परमेश्वर, बूढ़ी काकी, दफ्तरी, आत्माराम, ईदगाह, कफन एवं मृतक भोज। (ब) हिन्दी से उर्दू में–सौत, शंखनाद, शतरंज के खिलाड़ी, सवा सेर गेहूँ, मंत्र, अलग्योझा, आहुति, दो बैलों की कथा, सद्‌गति, गुल्ली-डंडा, दूध का दाम एवं बड़े भाईसाहब आदि। यह कहानियाँ हिन्दी-उर्दू में प्रकाशित होने की वजह से इनके शीर्षकों में भी परिवर्तन देखने को मिलता है जिनमें से कुछ का विवरण इस प्रकार है– उर्दू में प्रकाशित कहानी 'शिकारी और राजकुमार' का हिन्दी शीर्षक 'शिकारी राजकुमार' हो गयां उर्दू कहानी 'पंचायत' का नाम हिंदी में 'पंच परमेश्वर' शीर्षक में परिवर्तित हो गया। उर्दू कहानी 'जादेराह' को हिन्दी में 'मृतक भोज' कर दिया गयां इसी तरह हिन्दी में प्रकाशित कहानी 'शंखनाद' का उर्दू नाम 'बाँगे सहर' हो गया। 'शतरंज के खिलाड़ी' का 'शतरंज की बाजी', 'मंत्र' का 'मंतर', 'अलग्योझा' का 'अलहदगी', 'आहुति' का 'जेल', 'दो बैलों की कथा' का 'दो बैल', 'सद्‌गति' का 'नजात', 'गुल्ली-डंडा' का 'गिल्ली-डंडा' एवं 'दूध का दाम' का 'दूध की कीमत' हो गया।

'प्रेमचंद की हिन्दी-उर्दू कहानियाँ' नामक पुस्तक का प्रथम संस्करण वर्ष 1990 में भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से प्रकाशन हुआ था, जिसे आज प्रकाशित हुए तकरीबन 26 वर्ष व्यतीत हो गये थे। इस दौरान इसके प्रथम संस्करण को समाप्त हुए काफी समय हो गया था। शोध की दृष्टि से यह पुस्तक कई मायनों में महत्वपूर्ण थी। शोधार्थियों की परेशानी एवं इस पुस्तक की महत्ता को देखते हुए इसके संपादक डॉ. गोयनका ने इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित करवाया है, जो प्रेमचंद साहित्य के सुधी पाठकों को राहत प्रदान करता है।

'प्रेमचंद की हिन्दी-उर्दू कहानियाँ' पुस्तक के प्रारंभ में द्वितीय संस्करण की भूमिका प्रकाशित की गयी है जिसमें प्रमुखतः वर्ष 2002 में महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) एवं हंस प्रकाशन, इलाहाबाद के संयुक्त तत्वावधान में प्रकाशित पुस्तक 'समक्षः मुंशी प्रेमचंद की बीस हिन्दी-उर्दू कहानियों का समान्तर पाठ' में व्याप्त गलतियों का सप्रमाण खण्डन डॉ. गोयनका ने किया है। इस पुस्तक में 'प्रेमचंद की हिन्दी-उर्दू कहानियाँ' की तरह ही प्रेमचंद की बीस हिन्दी-उर्दू कहानियों का समान्तर पाठ प्रस्तुत किया गया था, किन्तु इस पुस्तक के संपादक मण्डल ने पुस्तक में कहानियों का चयन, कहानियों के प्रथम प्रकाशन एवं उसके उर्दू-हिन्दी पाठों में भयंकर गलतियाँ कर इसका महत्व समाप्त कर दिया।

द्वितीय संस्करण की भूमिका के पश्चात् प्रथम संस्करण की भूमिका संकलित की गई है जो प्रस्तुत पुस्तक में संकलित कहानियों के इतिवृत्त इतिहास व इसके प्रकाशन के महत्व को दर्शाता है। पुस्तक के अंत में परिशिष्ट (अ) के अन्तर्गत संकलित हिन्दी-उर्दू कहानियों की सूची (कहानी का उर्दू शीर्षक, कहानी का उर्दू में प्रथम प्रकाशन, कहानी का हिन्दी शीर्षक, कहानी का हिन्दी में प्रथम प्रकाशन आदि के तहत) कालक्रमानुसार प्रदान की गयी है। परिशिष्ट (ख) के तहत संकलित उर्दू कहानियों के प्रथम प्रकाशन की

संपूर्ण जानकारी कालक्रमानुसार प्रदान की गयी है।

पुस्तक में अगर कोई चीज अखरती है तो वह है पुस्तक में कहानी 'यही मेरा वतन है' का संकलित न हो पाना। क्योंकि पुस्तक के संपादक महोदय डॉ. गोयनका ने पच्चीस कहानियों के प्रकाशित होने की चर्चा अपनी भूमिका एवं परिशिष्ट आदि के तहत दी गयी कहानियों की सूची में की है परन्तु उक्त कहानी कैसे व किसी वजह से पुस्तक में आने से वंचित रह गयी, कहा नहीं जा सकता। फिर भी इस एक गलती से इस ऐतिहासिक पुस्तक का महत्त्व कतई कम नहीं हो सकता है।

अंत में प्रेमचंद साहित्य के सुधी पाठकों के हित की चर्चा करना चाहूँगा। जो भी पाठक इस महत्वपूर्ण पुस्तक को खरीदना चाहता है वह ऑनलाइन वेबस्टोर www.infibeam.com नामक वेबसाइट से ऑनलाइन बुक कर मात्र 500/- रुपये में क्रय कर सकते हैं।

समग्रतः कहा जा सकता है कि जो पाठक प्रेमचंद साहित्य में रुचि रखता हो उसके लिये यह पुस्तक किसी वरदान से कम नहीं है। 574 पृष्ठ की यह ऐतिहासिक पुस्तक प्रेमचंद की उर्दू-हिन्दी कहानियों के समान्तर पाठ की अनवरत यात्रा की झांकी प्रस्तुत करती है। पुस्तक की साज-सज्जा व गेट-अप अति उत्तम है। आवरण पृष्ठ पर प्रेमचंद का फोटो इस पुस्तक की खूबसूरती को और भी आकर्षक बनाता है। छपाई उम्दा व पेपर क्वालिटी भी बहुत बेहतरीन है। मुद्रण की अशुद्धियाँ न होने के कारण पाठक को पुस्तक पढ़ने में कठिनाई उत्पन्न नहीं होती है। ऐसी बेहतरीन पुस्तक का सभी जगह स्वागत होना चाहिये तथा प्रेमचंद साहित्य में जिज्ञासा रखने वाले समस्त पाठकों को एक बार इस ऐतिहासिक पुस्तक को अवश्य देखना चाहिये।

आवास क्रमांक एच-3,
राजीव गाँधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
एयरपोर्ट बायपास रोड,
भोपाल-462033 (मध्य प्रदेश)

पुस्तक-समीक्षा

तेजेन्द्र शर्मा के कहानी संग्रह 'सपने मरते नहीं' की समीक्षा

अर्पण कुमार

'नदी के पार नदी' और 'मैं सड़क हूँ' काव्य संग्रह प्रकाशित और चर्चित। तीसरा काव्य-संग्रह 'पोले झुनझुने' नौटनल पर ई-पुस्तक के रूप में उपलब्ध। पहला उपन्यास 'पच्चीस वर्ग गज़' शीघ्र प्रकाश्य। आकाशवाणी दिल्ली और जयपुर से कविताओं-कहानियों का प्रसारण। महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानियाँ, लघुकथाएँ, समीक्षाएँ, गज़लें, आलेख आदि प्रकाशित। दूरदर्शन के जयपुर केंद्र से कविताओं का प्रसारण। हिंदी अकादमी, दिल्ली से पुरस्कृत। कई पुस्तकों के आवरण पर इनके खींचे छायाचित्रों का प्रयोग।

आसपास के हमारे अपने से दिखते पात्रों के भीतर उठते-गिरते विभिन्न मनोभावों की कहानियाँ कहने वाले तेजेंद्र शर्मा हमारे समय के एक महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। अलग-अलग पृष्ठभूमियों में रचित इन कहानियों में उपलब्ध बारीक डिटेल्स उनकी कहानियों की सघनता को बढ़ाते हैं। उनके पात्रों की जिजीविषा हमें प्रभावित करती है। वे किसी भी सूरत में हार मानना नहीं चाहते और अपनी परिस्थितियों से निकल बाहर आने की कोशिश करते हैं। इस कोशिश के पीछे की निरीहिता कई बार हमें करुणार्द्र करती है तो पाठ के स्तर पर यह कहानी की ताकत बन जाती है। तेजेंद्र की कहानियों का अंतर्पाठ हमें बतलाता है कि वे ग्लोबल स्तर पर मनुष्यों के भीतर बढ़ते अकेलेपन को चित्रित करने वाले हमारे समय के एक आवश्यक कहानीकार हैं। उनके प्रस्तुत कहानी संग्रह 'सपने मरते नहीं' की ये कहानियाँ भी उनके कहानीकार की इन विशेषताओं को अपने तईं रेखांकित करती हैं। इस संग्रह में कुल बारह कहानियाँ शामिल हैं, जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं–'खिड़की', 'ज़मीन भुरभुरी क्यों है', 'कुछ आख़िरी दिन', 'एक पारदर्शी चेहरा', 'प्यार... क्या यही है?', 'मर्द अभी जिंदा है', 'क्या मुझमें कोई कमी है?', 'सीली आंखों में भविष्य', 'एक छोटी कहानी', 'गंदगी का बक्सा', 'हाथ से फिसलती ज़मीन', 'सपने मरते नहीं'। इन कहानियों को पढ़ना और उनसे गुजरना, पाठकों के लिए जितना रोचक है, उतना ही जाने और कुछ अनजाने परिवेशों से दो-चार होना उन्हें एक विशेष रोमांच से भर भी देता है।

शुरूआत पहली कहानी से। 'खिड़की', तेजेंद्र शर्मा की एक सीधी सादी कहानी है। कहानी का नायक लंदन के एक उपनगर में रेलवे में बुकिंग क्लर्क है। अपने अकेलेपन से लड़ता हुआ वह दूसरे ऐसे ही लोगों के अकेलेपन को समझने और उनसे अपना दुख दर्द साझा करने की कोशिश करता है। यह खिड़की एक रेलवे काउंटर है मगर नायक इससे कुछ और काम भी लेता है। अपनी बँधी-बँधाई दुनिया या अपने अकेलेपन के चौखटे में बंद होते मनुष्यों के मनोजगत के भीतर भी यह खिड़की झांकने का काम करती है। तब यह खिड़की रेलवे का टिकट काउंटर न रहकर दो अजनबियों के बीच की आवाजाही का ज़रिया बन जाती है। इस आवाजाही में मनुष्यता के कई रागपरक रंगों से हम रू-ब-रू होते हैं। कहानी का नायक कहता है, 'अब

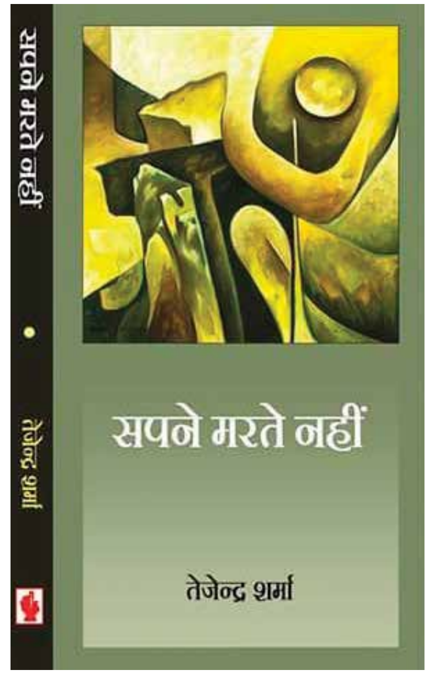

पुस्तक : 'सपने मरते नहीं'

लेखक : तेजेंद्र शर्मा

प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन,
3320-21, जटवाड़ा
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002

पृष्ठ : 160

मूल्य : 300 रुपये

उन्हें टिकट की झूठी इंक्वायरी करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती। वे सीधे जाकर उससे बात करते हैं। वह भी उन महिलाओं को गॉर्जियस ब्यूटीफूल लवली लेडी कहकर संबोधित करता है। पुरुष उसके लिए यंग मैन होते हैं।

दर्द सब का एक ही सा, टीस उठती, हैरानी भी होती कि सबकी समस्या एक ही क्यों है!' यह अकेलापन किसी मजहब, किसी जाति, किसी समुदाय का मोहताज़ नहीं होता। बस किसी को भी अपने शिकंजे में कस लेता है।

'जमीन भुरभुरी क्यों है' शीर्षक कहानी, संग्रह की कुछ बेहतरीन कहानियों में से एक कही जा सकती है। यहाँ पूर्व में घटी घटनाओं और वर्तमान में हो रही घटनाओं को कट-टू-कट सीन की तरह एक के बाद एक दृश्य के रुप में प्रस्तुत किया गया है। पाठकों के समक्ष इससे दोनों घटनाओं के बीच के तनाव को बेहतर रूप में दिखाया जा सका है। यह कहानी जितनी एक अपराध (डाकघर में गबन से संबंधित आरोप के बारे में) के सिलसिले में राजन के जेल जाने की है, उससे अधिक उसकी पत्नी कोकिला बेन के अपने पति की अनुपस्थिति में मजबूत बनने की है। एक दिन जब वह जेल से छूटकर घर आता है तो घर के बाकी सदस्य उसे लेने हवाई अड्डे जाते हैं मगर कोकिला घर पर ही रह जाती है। घर पर उसके स्वागत में वह साज-सज्जा और पकवान से संबंधित कुछ तैयारियाँ कर रही है। इन दो प्रकट घटनाओं के बीच कोकिला के भीतर जितने मनोभाव उठ रहे हैं, कहानीकार ने उन्हें सक्षमतापूर्वक पकड़ने की पूरी कोशिश की है। उसे रह-रहकर अपने पति के आयरिश स्त्री के साथ संबंध के प्रसंग भी कचोटते हैं। राजन के जेल जाने के बाद कोकिला अपने घर और बच्चों को संभालने के लिए दिन रात एक कर देती है। बाह्य स्तर पर आर्थिक तंगी से लड़ते हुए वह अक्सर अपने पति की बेवफाई से अंतः-स्तर पर भी एक लड़ाई लड़ती दिखती है। कुछेक महीनों बाद जेल से जब उसका पति वापस लौटता है तो उसे देख वह बहुत उत्साहित नहीं हो पाती। इस पूरे प्रकरण में कोकिला ही हारती है। मगर इस हार को दिखलाना कहानीकार का उद्देश्य नहीं है। असमय वृद्धावस्था के चिह्न चेहरे और बालों पर आने के बावज़ूद कोकिला अपने हक़ और सम्मान के लिए लड़ने हेतु अपनी कमर कसती है। एक दुर्बल और घरेलू स्त्री से मजबूत और कामकाजी स्त्री बनती कोकिला बेन की यह कहानी इस संग्रह की सफलता है। कोकिला के भीतर के इस अंतर्द्वन्द्व को कहानीकार ने भली-भांति चित्रित किया है। कहानी में इसे बड़ी बारीकी से दिखाया गया है...सफेद बाल, चेहरे पर चिंता की छपी रेखाएं और थकावट। जैसे टूट गई थी वह। उसे लगा कि सामने वह जज खड़ा है जिसने राजन को जेल की सजा सुनाई थी। कोकिला आगे बढ़कर उस जज का गिरेबान पकड़ लेती है, "बहुत न्याय करते हो जज साहब। कैसा फैसला सुनाया आपने ?आपका मुजरिम तो राजन था न? कैसी सजा दी ? आपकी सजा ने राजन को दोबारा नौजवान बना दिया। आज कंप्यूटर का मास्टर बना हुआ है। माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस में पूरा काम करता है। टोकरियाँ बना लेता है। मेरा क्या कसूर था? मुझे क्या मिला? मेरे हिस्से में सिवाय संघर्ष और दुखों के और क्या रहा इन 14 महीनों में। जवाब दीजिए जज साहब! आपका यह फैसला कैसा न्याय है?" (पृष्ठ 35 और 36)। इन 14 महीनों में होता यह है कि कोकिलाबेन अपने व्यक्तित्व को राजन से अलग कर के देखती है और पहली बार उसके अंदर वैयक्तिक चेतना का विकास होता है। यह कहानी राजन के जेल जाने की प्रक्रिया से शुरू होती है और कोकिला के इस विकसन पर्व पर आकर रुक जाती है या यह कहें कि यह कहानी अपने अंत से शुरू होती है। यह कहानी जहाँ समाप्त होती है, कोकिलाबेन के भीतर का व्यक्ति वहाँ से और आगे बढ़ने की चेष्टा करता है और अपने व्यक्तित्व की निजता की तलाश करना शुरू करता है। कहानी का शीर्षक 'जमीन भुरभुरी क्यों है' अपने तईं इसी सच को व्यंजित करता है। कहने की ज़रूरत नहीं कि आर्थिक स्वतंत्रता और आर्थिक सुदृढ़ता के बिना किसी और के सहारे जीते चले जाने की परिस्थितियों में व्यक्ति का अपना वज़ूद कितना हल्का हो जाता है और किसी अप्रिय स्थिति में उसके पांव तले की जमीन कितनी भुरभुरी हो उठती है!

संग्रह की तीसरी कहानी 'कुछ आखिरी दिन' है। समीर और उसकी पत्नी मीरा के बीच के परस्पर संवादों में दोनों पात्रों खासकर समीर के व्यक्तित्व की कई परतें खुलती चली जाती हैं। समीर से जुड़े उसके परिवार और उसके शुरूआती जीवन के संघर्षों के बीच समीर के पैसापरस्त होने के पीछे के मनोविज्ञान को समझने की कोशिश भी यहाँ दिखती है। कहानी में उचित ही टिप्पणी की गई है, "ऐसा भी नहीं है कि समीर कंजूस हो। समीर ने हमेशा पैसे को अपना गुलाम समझा है, मगर यहाँ एक दुष्चक्र सा बन जाता है। पता नहीं चलता कि कब पैसा समीर का भगवान बन जाता है और कब गुलाम।" भौतिकता और भावनारहित जीवन पर तंज़ कसती यह कहानी अंत में कारुणिक हो जाती है। दुनिया में हर संबंध और चीज़ को भौतिकता की तराजू पर तौलने वाले समीर जैसे व्यक्तित्व को लेखक ने भली भाँति रचित और विकसित किया है। समीर के भीतर के अकेलेपन और धन-लिप्सा को एकदम रूढ़ अर्थ में नहीं देखा गया है। वह पारंपरिक अर्थ में कंजूस नहीं है, बल्कि विभिन्न अवसरों पर काफी खर्च किया करता है, मगर उसकी हर गतिविधियों के केंद्र में धन के होने से उसके आसपास के कई लोग उससे कतराने या नाराज़ रहने लगते हैं और अंततः वह अलग-थलग पड़ जाता है। 'प्यार क्या यही है' कहानी का एक अंश देखिए...'जीवन की प्रत्येक घटना यदि तयशुदा नियमों

के आधार पर घटती रहे तो प्रायः कोई भी व्यक्ति चौकन्ना होकर उस की ओर ध्यान नहीं देता। जहाँ किसी ने बने-बनाए ढर्रे को तोड़ने की तनिक सी भी चेष्टा की, वहीं प्रश्नवाचक दृष्टियाँ उसकी ओर उठने लगती हैं। समाज के ठेकेदार अपने-अपने अस्त्र उठाकर वार करने के लिए तैयार हो जाते हैं'। (पृष्ठ 59)। शेखर और पूजा की प्रेम कहानी को इन भाव भूमियों पर लेखक बख़ूबी विकसित करता चलता है। एक जगह लेखक लिखता है, 'हम मनुष्यों के साथ एक कमजोरी है। हम सारी दुनिया को कोसते रहते हैं कि कैसे लोगों ने अपने चेहरे पर कई चेहरे चढ़ा रखे हैं किंतु हम स्वयं ही अपने चेहरों पर कई चेहरे चढ़ाए रखना चाहते हैं। एक ही बात विभिन्न स्थितियों में कैसे सही या गलत हो जाती है' (पृष्ठ 70)। प्यार से अधिक यह प्यार पर संदेह करने की कहानी है। यहाँ स्त्री-मनोविज्ञान को और स्त्री के भीतर बँटी स्त्री की विभिन्न परतों को भली-भाँति चित्रित किया गया है। 'मर्द अभी ज़िंदा है', एक समर्पित और ईमानदार फिल्म समीक्षक की कहानी है। इसमें उसके द्वारा किसी प्रलोभन में न आने और अपने कर्म के प्रति सच्ची निष्ठा रखने की प्रतिबद्धता को प्रदर्शित किया गया है। यहीं पर लेखक ने हिंदी और अंग्रेजी मीडिया के प्रचलित सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक अंतर को भी बड़े क़रीब से उभारा है। लेखक अपने पात्र के लिए लिखता है, 'उसके लिए फिल्म देखना एक काम है। जैसे कि रेल का इंजन चलाना या फिर वकालत करना जब कोई भी व्यवसाय रोजी रोटी का धंधा बन जाता है तो उसका आकर्षण समाप्त हो जाता है। (पृष्ठ 82)।

एक लेखक अपने जीवनानुभवों (जीए और देखे दोनों) को अपने लेखन में दर्ज़ करता चलता है। ऐसा वह परकाया-प्रवेश के माध्यम से करता है और इसमें वह जितना सफल होता है, उतना ही अपने पाठकों के साथ अपनी एकमेवता बना पाता है। निश्चय ही, एक लेखक अपने आसपास को लेकर अपनी कहानियाँ रचता है। कहानी में वही कथा परिवेश कहलाता है। मगर इस प्रत्यक्ष या कहें बाह्य परिवेश से इतर एक अंतः-परिवेश भी होता है, जिसे कहानी में पात्रों की मनोदशा के रूप में व्याख्यायित किया जाता है। तेजेंद्र इसलिए भी एक सफल कहानीकार के रूप में याद किए जा सकते हैं कि इनकी कहानियों में परिवेश अपनी संपूर्णता, सघनता और समसामयिकता के साथ उभरकर सामने आता है। लंदन में अपने हाथों अपना खाना बनाने वाले तेजेंद्र जितना खाने के शौकीन हैं, उतना ही खाना बनाने की विधियों में भी उनकी रुचि है। स्वभावतः उनका यह शौक उनके लेखन में भी दिखता है। अमूमन उनकी हर कहानियों में देशी-विदेशी अलग-अलग व्यंजनों के विवरण हमें पढ़ने/जानने को मिलते है। वे खाने से अपने पात्रों के मनोभाव और उसकी सामयिक मनःस्थितियों को भी दर्शाते चलते हैं। लंबे समय से इंग्लैण्ड में रहते चले आने के कारण यूरोपीय संस्कृति का खुलापन भी उनके वर्णन में मिलता है।

'गंदगी का बक्सा' शीर्षक कहानी में पात्रों के मनोभावों को चित्रित करने के पहले कहानीकार द्वारा चित्रित यह भूमिका देखिए, 'लंदन में हिमपात हुए तो एक अरसा बीत चुका है। लंदनवासी अब बर्फ देखने के लिए स्कॉटलैंड या अन्य उत्तरी शहरों की ओर जाते हैं। सफेद क्रिसमस तो अब किताबों, कार्डों या लोगों की यादों में ही दिखाई देता है, किंतु जया और दिलीप के रिश्तो में जो ठंडापन पैठ गया है, वह जमी हुई बर्फ़ से कहीं अधिक सर्द और भयावह है।' (पृष्ठ 111)। यह मूलतः जया और राज की कहानी है। बीच में जया की बेटी पलक और उसके मुसलमान प्रेमी इमरान के क़िस्से आते हैं मगर वे भी मानो जया और राज को करीब लाने के उपक्रम ही साबित होते हैं। कहानी का अंत इन पंक्तियों से होता है, 'शरीर का सुख क्या होता है, यह जया को जीवन में पहली बार अपने पचासवें जन्मदिन पर महसूस हुआ।' (पृष्ठ 120)। जया की सोच, राज के संसर्ग में उदात्त होती चली जाती है। शुरूआत में वासना को अपनी ज़िंदगी से दूर रखने की वकालत करने वाले जया और राज का संबंध भी आख़िरकार दोनों के शारीरिक संसर्ग पर आकर समाप्त होता है। स्त्री-पुरुष के बीच कहीं-न-कहीं नैसर्गिक आकर्षण और शारीरिक निकटता की अपरिहार्य स्थिति को भी यहाँ लेखक स्पष्ट करना चाहता है। 'हाथ से फिसलती ज़मीन' में नस्लवाद और दलितों के साथ भेदभाव की समस्याओं के बीच जैकी और नरेंद्र का प्रेम प्रसंग, कहानी का सबसे सशक्त और संवेदनशील पक्ष है। जैकी और नरेंद्र के प्रेम-प्रसंगों को लेखक ने बहुत डूब कर दिखाया है। उसमें एक खूबसूरत प्रेम कहानी के सभी तत्व देखने को मिलते हैं। यह कहानी नक्सलवाद, दलित-सवर्ण विभेद, बेरोजगारी, धर्म विवाद जैसे कई विषयों को छूती है, मगर इस कहानी का सबसे मजबूत और संवेदनशील पक्ष जैकी और नरेंद्र का पारस्परिक प्रेम-प्रसंग ही है। मगर यह कहानी प्रेम से आगे गृहस्थी की उलझनों की पड़ताल करती है और इसलिए पाठकों को वास्तविक धरातल पर कुछ अधिक अपील भी करती है। कहानी के पूर्वार्ध में प्रेम और मिलन की सघनता और उसके उत्तरार्ध में परिवार के नाम पर बिखरते रिश्तों और बढ़ते अकेलेपन का मार्मिक चित्रण, यह 'बायनरी अपोजिट' इस कहानी के शिल्प में अंतर्निहित है। कहा जा सकता है कि तेजेंद्र की दूसरी कहानियों में भी संस्कृति, धर्म, जाति, प्रेम, वासना, मूल्य, नस्ल आदि से जुड़े परस्पर विरोधी कई घटकों को समाहित

करते ऐसे कई 'बायनरी अपोजिट्स', उनकी कहानियों के 'सिग्नेचर ट्यून' हैं।

तेजेन्द्र की कहानियों की भाषा सरल और प्रवहमान है। कहानी में जिस 'कैच वर्ड' से एक अनुच्छेद में कोई महत्वपूर्ण बात उठाई जाती है, तो उसी कैच-वर्ड से दूसरे अनुच्छेद में कोई नई बात उठा दी जाती है। इससे कभी कहानी के घटनाक्रम में तो कभी पात्रों के मनोजगत में किसी महत्वपूर्ण परिवर्तन को कुछ नाटकीय रूप में दर्शाना संभव हो पाता है। नाटक के कथोपकथन या फिल्मों के संवादों में प्रयुक्त इस भाषा-तकनीक का तेजेंद्र के कहानीकार ने अपनी कहानियों में खूबसूरत प्रयोग किया है। मसलन संग्रह की शीर्षक कहानी 'सपने मरते नहीं' के इस अंश को देखा जा सकता है–

'नीलेश उसे हमेशा अपना 'शीशम का पेड़' कहता है, 'इंडियन रोजवुड'। नीलेश को उसके नाजुक क्षणों में हिम्मत देने वाली इला आज स्वयं टूट गई थी।' (पृष्ठ 147)।

फिर उस टूटने को आगे बढ़ाते हुए कहानीकार अगले अनुच्छेद में उसे इस प्रकार बढ़ाता है–

'टूटी हुई इला के लिए सोने और जागने में जैसे कोई अंतर ही नहीं रह गया था।' (पृष्ठ 147)।

एक कुशल कहानीकार की तरह तेजेंद्र अपने रूपक और अपनी उपमा को दूर तक ले जाते हैं। अगर इला की तुलना शीशम के पेड़ से की जा रही है तो शीशम का वह पेड़ टूटेगा भी और उसमें दीमक भी लगेंगे। शीशम के उस पेड़ को संभालने की जिम्मेदारी उस व्यक्ति की है जो उस शीशम से प्यार करता है। अपने पहले स्टिल-बॉर्न (मृत) बेटे को जन्म देनेवाली इला के आंतरिक हाहाकार को अभिव्यक्त करती यह कहानी, लेखक की सफलता है। उस मृत बच्चे का नाम भी सोच लिया गया था। प्रतीक। इला और नीलेश की इस कहानी में निलेश निश्चय ही एक पति और प्रेमी की भूमिका में अपने 'इंडियन रोजवुड' को संभालता है। इला की कौंसलिंग करवाता है। उसे भारत ले जाता है और अंततः अपने पहले हनीमून को याद करने के क्रम में कुछ दिनों के लिए शिमला के उसी होटल और उसी कमरे में सपत्नीक ठहरता है, जिसमें अपने हनीमून के दौरान वे दोनों रहे थे। कुछ फ़िल्मी से दिखते इन प्रयासों के बाद इला नॉर्मल होती है और एक बार फिर उम्मीद से होती है। निश्चय ही इस कहानी में एक मृत बच्चे को जन्म देने वाली मां की अंदरुनी पीड़ा को जिस तरह से अभिव्यक्ति मिली है और घर-परिवार की तमाम कोशिशों के बाद जिस तरह वह दोबारा मां बनने की प्रक्रिया में वह आती है, यह कहानी उम्मीद और सपनों को ज़िंदा रखने की कहानी ठहरती है। कहानी का शीर्षक 'सपने मरते नहीं' इस अर्थ में मौजूँ है। संग्रह की कई कहानियाँ ऐसे ही उम्मीदों और सपनों के जिंदा रखने की कहानियाँ हैं क्योंकि ज़िंदगी जीने के लिए इनका होना आवश्यक है। दुख और अवसाद तो खर-पतवार हैं। चाहे अनचाहे वे आएंगे मगर खाद सरीखी भूमिका में दिखती ये आशा और सपने ही हैं जो उन खरपतवारों को नष्ट कर ज़िंदगी के वृक्ष को आगे पनपने का पूरा मौका देते हैं। तेजेंद्र का कहानीकार इस सच को जानता है और उसके पात्र इन समस्याओं से लड़ते हुए आगे बढ़ते हैं। चाहे अकेलेपन के रूप में बढ़ती वृद्धावस्था की समस्याएं हो या अपने अस्तित्व को लेकर जूझती महिलाओं या दलितों की कठिनाईयाँ हों, तेजेंद्र हर जगह उनसे संबोधित होते हैं। उनकी कुछ कहानियों में 'नैदानिक मनोविज्ञान' ('क्लीनिकल साइकोलॉजी') के भी कुछ तत्व हमें देखने को मिलते हैं। यह साहित्य की अपनी ताकत है कि उसमें दूसरी विधाओं के घटक गाहे-ब-गाहे समाहित होते चले जाते हैं। साहित्य एकमात्र ऐसा विषय है जिसमें दुनिया के सभी विषयों के लिए पर्याप्त जगह है, क्योंकि साहित्य सीधे-सीधे अपने पात्रों और उनके परिवेश से जुड़ा हुआ होता है। वे पात्र किसी भी क्षेत्र के हो सकते हैं और कैसी भी समस्या से ग्रस्त हो सकते हैं। तेजेन्द्र के स्त्री पात्र एक तरफ़ बेहद सशक्त दिखते हैं जो किसी भी परिस्थिति से लड़ने में सक्षम हैं तो दूसरी ओर वे इतने लचीले भी हैं कि हर नए मोड़ पर बदलती जाती ज़िंदगी में वे स्वयं को सँभाल ले जाती हैं। वे कड़े फैसले लेना भी जानती हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि तेजेंद्र समकालीन वैश्विक दुनिया को अपनी कहानियों में बख़ूबी प्रस्तुत करते हैं और हिंदी साहित्य में उन्हें काफी प्रमाणिक ढंग से लाते हैं। उनकी कहानियों में कई संस्कृतियाँ एक मेल्टिंग पॉट में ढलती/पिघलती नज़र आती हैं। लीलाधर मंडलोई की एक कविता की निम्न पंक्तियाँ हैं–

'जिसे कहना है कविता कहे मैं भाषा में मनुष्य को रच रहा हूँ'

इस तर्ज़ पर कहा जा सकता है कि तेजेंद्र अपने पात्रों को बख़ूबी जीते हैं और अपनी कहानियों में उनकी कमजोरियों/विचलन, उनके सामर्थ्य और सपने के साथ तत्पर खड़े नज़र आते हैं। इसलिए सहज आदिम राग, उनकी कहानियों का सत्व है। तभी तो उनकी कहानियों में विषय सहज ही चले आते हैं। हाँ, विराम-चिहन ('पंक्चुएशन मार्क') कई जगहों पर छूट गए हैं। अगले संस्करण में प्रूफ़ की ग़लतियों को ठीक कर लेना अपेक्षित होगा।

संपर्क : अर्पण कुमार, बी-1/6, एसबीबीजे
अधिकारी आवास, ज्योति नगर, जयपुर,
राजस्थान-302005

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

....

....

....

....

पत्रिका भिजवाने का पता

....

....

....

....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष ₹ 500 (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200 (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10% पुस्तक विक्रेता 25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. .... दिनांक ....

रु./US$ .... बैंक ....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं:
कार्यक्रम अधिकारी (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. - 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप...

नाम...

पद..

दिनांक...

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पांच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक–गगनांचल (हिंदी), दो त्रैमासिक–इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिंद (अरबी) और दो अर्ध-वार्षिक–पेपेलस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑंद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल हैं। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिंदी, अंग्रेजी व अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गए हैं।

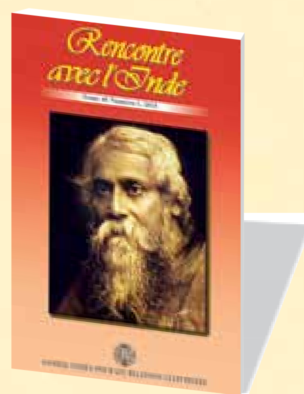

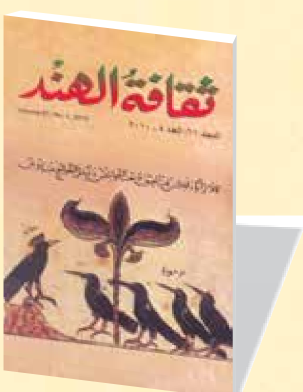

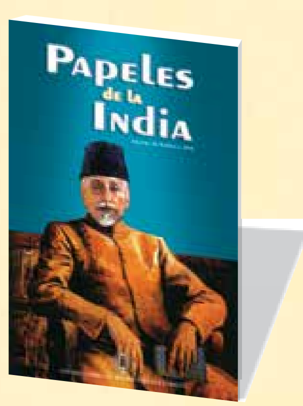

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

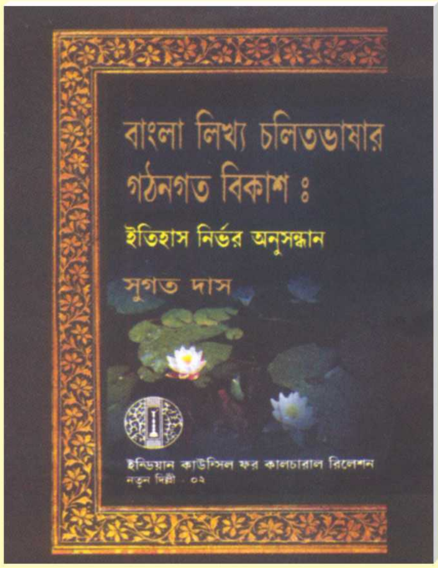

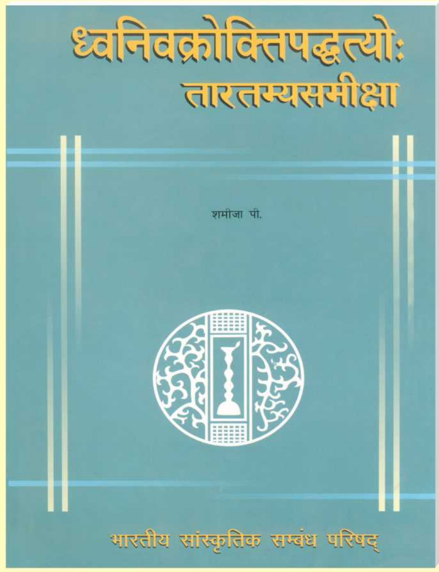

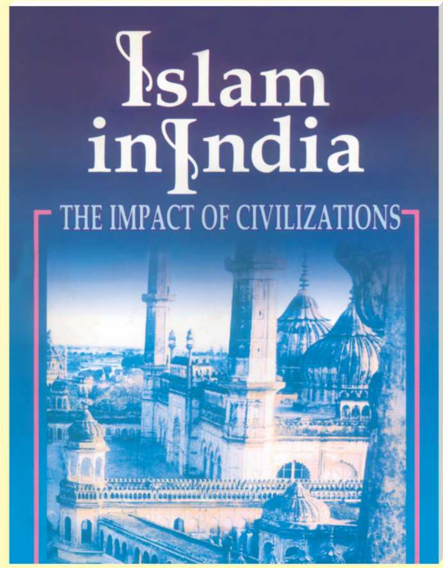

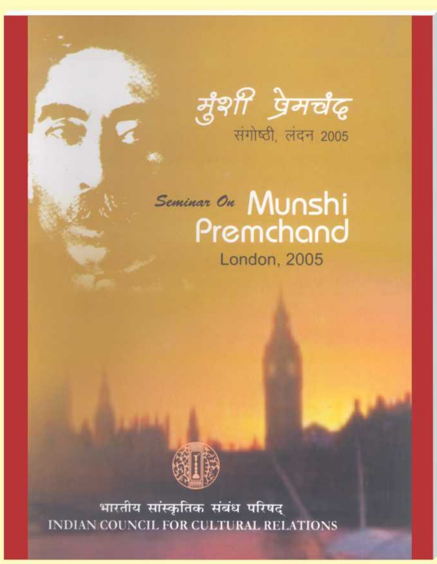

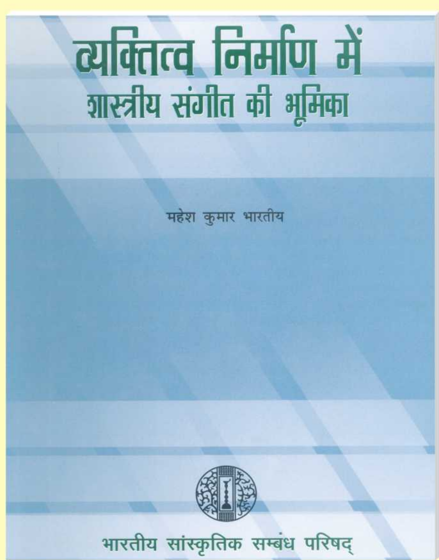

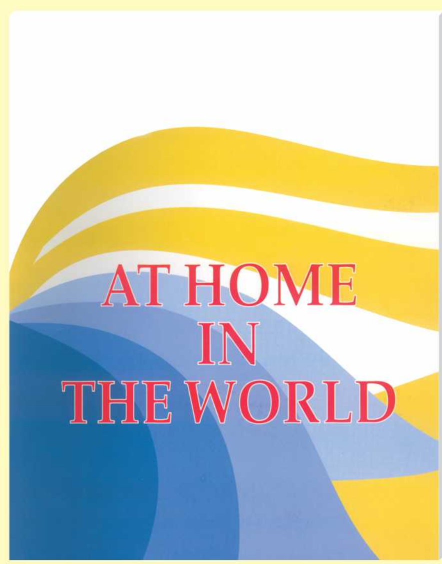

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN - 0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

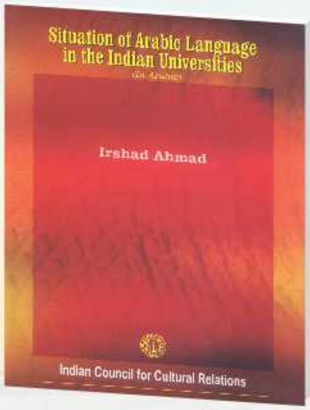

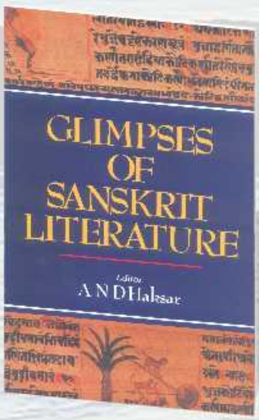

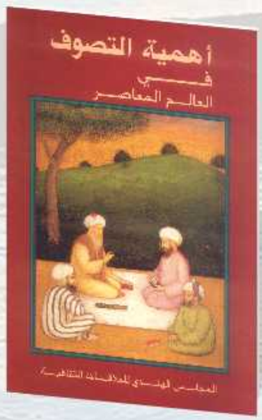

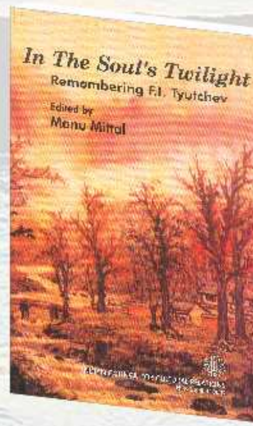

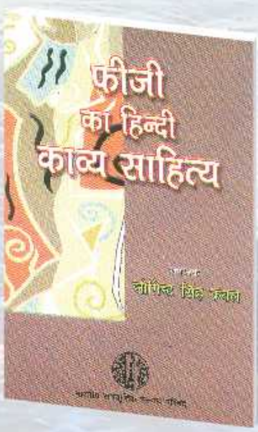

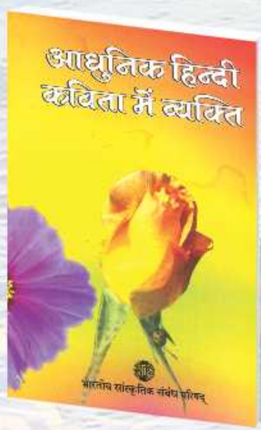

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

फोन: 91-11-23379309, 23379310
फैक्स: 23378639, 23378647, 23378783
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccr.gov.in